अभिशाप

Abhishap

[उपन्यास]

(Novel)

उपन्यासकार

कन्हैया लाल माणिकलाल मुन्शी

K. M. Munshi

अनुवादक

कान्ति लाल जवेरी

प्रकाशक

कमल प्रकाशन, दिल्ली ।

प्रकाशक
कमल प्रकाशन
दिल्ली।

मूल्य
५ रुपये पचास नये पैसे

Rs 5.50

मुद्रक
हरिहर प्रेस,
चावड़ी बाजार, देहली।

बीती बात

प्रातःकाल के समय संसार आनन्द में हिलोरें ले रहा था। सूर्योदय के पूर्व का मन्द शीतल पवन सृष्टि की उत्पत्ति के समय के अनास्वादित आह्लाद के बचे-खुचे रस का अनुभव प्राणी मात्र को कराने लगा। समस्त रात्रि निराशा, दुःख अथवा सुख में भी जिनकी आँखें पल भर के लिए भी नहीं झपी थीं उन स्त्री-पुरुषों को निद्रावश करने में सफल हुआ। पवन अपनी लहरियों में प्रणयी के प्रथम चुम्बन का रोमांच लज्जा, धृष्टता और आह्लाद का समिश्रण कर लोगों को आनन्द के नशे में सुला रहा था।

शीतल समीर की कृपा एक आठ वर्ष की बालिका पर पड़ी : वह एक छोटे किन्तु साफ-सुथरे घर में सोई हुई थी। उसके निकट ही उसके माँ-बाप की चारपाइयाँ थीं। परन्तु वे खाली थीं।

इस कन्या का जन्म कहाँ हुआ? और कहाँ माता-पिता के लाड़- प्यार में बड़ी हुई? यह बताने की आवश्यकता नहीं है।

पिता सरकारी नौकर था, और माँ उसकी सेवा करती हुई आनन्दपूर्वक अपना जीवन चला रही थी। बालक का अभाव ही उन्हें केवल खल रहा था। फिर उसका जन्म हुआ। मानो उनके लिए पृथ्वी पर ही स्वर्ग की सृष्टि हो गई।

वह उनकी आँख का तारा थी। उसे हँसती-खेलती देखने में ही उनका जीवन सफल था। आठ वर्ष की आयु में ही उस कन्या का विवाह हुआ। गणपति की पूजा हुई, देवी-देवताओं और ऋषियों का आवाहन हुआ। शुभ मुहूर्त दिखाया गया और कन्या का सौभाग्य अमर रहे, इसके लिए इहलोक एवं परलोक की समस्त शक्तियों की साक्षी हुई। इस प्रयोजन से माँ-बाप की छाती हाथ भर ऊँची हो गई।

बालिका के हृदय में भी कारण समझे बिना ही हर्ष का उद्भव हुआ। रिश्ते-नाते वाले दूर-दूर से आये थे। मंगल गायन-वादन हो रहा था, जिसे

देखकर उसकी सखी-सहेलियाँ जल रही थीं। ब्राह्मणों के मंत्रोच्चार से प्रतिध्वनित धुएँ से भरे हुए आँगन में हवन कुंड के पास एक ग्यारह वर्ष के बालक को उसका हाथ पकड़ा दिया गया। उसका बेड़ा पार हो गया, ऐसा सभी ने अपने मन में समझ लिया। आनन्द की ध्वनि चारों ओर गूँज उठी। बारात बिदा हुई। गाँव में वाहवाही हो गई।

जिस प्रकार अल्पायु बालिकाओं का विवाह होता है, वैसे ही उसका भी हुआ। साथ ही ऐसे विवाह का जैसा परिणाम होता है इसका भी वैसा ही हुआ। जिन माता-पिता ने मोह और धर्म-भीरुतावश इन निर्बोध बालक-बालिका का सम्बन्ध किया उन्हें ज्ञान न रहा; समाज के स्तम्भों को जिन्होंने यह रिश्ता कराकर इसकी शोभा का आनन्द लूटा, ज्ञान नहीं रहा, पैसे के लिए विद्या-विहीन, ब्राह्मणों ने ग्रह-नक्षत्र का योग मिला कर, दैवी कृपा का विश्वास दिला कर मुहुर्त निकाला उन्हें भी कुछ ज्ञान न रहा, और गली-कूचे में नंग-धड़ंग खेलते हुए एक-दूसरे का हाथ पकड़ा उन्हें भी ज्ञान न रहा। किसी ने अपना उत्तरदायित्व नहीं समझा, और न किसी ने इस पर विचार ही किया; यह अज्ञानता का उत्सव योंही सम्पूर्ण हो गया। ऐसे महोत्सव ही हिन्दुओं के सांसारिक जीवन के मुख्य भाग हैं। इस कन्या के भावी जीवन की नींव इसी प्रकार रक्खी गई।

कन्या नींद में समीर-प्रणयी के चुम्बन से हँसी। उसके छोटे गठे हुए मुख पर ऐसा मालूम हुआ मानो बिजली चमकी हो। उसने करवट बदली, हाथों की चूड़ियाँ खनखना उठीं। एक महीने पहले उसका विवाह हुआ था। बुद्धिमान माँ-बाप ने विवाह की धूमधाम में कोई बात उठा नहीं रखी थी। कन्या के कान में अब भी बाजे और शहनाइयों की आवाज गूँज रही थी। उसका आनन्द भी वैसा ही बना हुआ था। कौन जाने उसके नन्हें से मस्तिष्क में विवाह सम्बन्धी कितनी आशायें उमड़ रही थीं जिनकी पूर्ति के लिए स्वप्न में वह आशायें बाँध रही होगी।

महामाया सृष्टि का सौंदर्य बढ़ाने के लिए—जिसमें देव और देवियों की अपूर्व जोड़ी, आनन्द से विचरण करे ऐसे विचार से, प्रायः पुष्प बिखेरती है। इन पुष्पों का कर्तव्य पराग-प्रसरण होता है और इससे भी गुरुत्तर कर्त्तव्य ऐसे

अनेक कुसुमों के बीज उपजाने का होता है। यह कन्या ऐसे ही पुष्प की एक कली प्रतीत होती थी। विकसित होकर इस जगत की किन-किन आशाओं की पूर्ति करेगी यही स्वप्न में सम्भवत: वह देख रही थी।

सहसा पास ही से चीखने की एक आवाज सुनाई दी। किसी के छाती तथा माथा पीटने की एवं किसी पुरुष के धाड़ मार कर रोने की आवाज आई। निर्बोध कन्या का हास्य ज्यों-का-त्यों बना रहा।

एक स्त्री तत्परता से ऊपर आकर कन्या की ओर दौड़ी। क्रूरता से झकझोर कर उसे जगाने लगी और उसके सिर और माथे पर चुंबनों की वर्षा करने लगी। स्त्री की आँखों में से अविरल अश्रुधारा बह रही थी! सर पीटने से हाथ की उँगलियों के चिन्ह माथे पर स्पष्ट पड़े हुए दिखाई दे रहे थे।

कन्या चौंक कर उठ बैठी।

'बेटी! बेटी' माँ के छाती फाड़ने वाले रुदन से कमरा गूंज उठा।

'क्या है माँ? तुम रो क्यों रही हो?' आँख मलते हुये लड़की ने पूछा।

'हाय बेटी! कैसे कहूँ? तेरा और मेरा भाग्य फूट गया!' कहकर उसने फिर अपनी छाती और माथा पीटना आरम्भ कर दिया। फिर पुत्री को खींच छाती से चिपका लिया। वह तो हक्की-बक्की-सी हो गई, बेचारी के विस्मय का ठिकाना नहीं रहा।

'कृष्णा! चल, अब जल्दी कर। इस दुलार से अब क्या होना-जाना है?' एक प्रौढ़ा स्त्री ने आकर स्थिर स्वर में कहा। वह विधवा थी। अनुभवी सेना-पति जिस शान्ति से रण में प्रवेश करता है वैसे ही उसने भी प्रवेश करते हुए कहा—'मणि, तू भी उठ! जल्दी कर।'

'बड़ी मौसी, ओ बड़ी मौसी, क्या बात है?' मणि ने पूछा।

जवाब में मौसी ने नजदीक आकर मणि का हाथ खींच कर उसे खड़ा किया और कहा—'इससे तुझे क्या मतलब? कृष्णा चल, देख लोग अब नीचे एकत्र होने लगे।'

मणि बड़े ही पसोपेश में पड़ गई। ये सब लोग क्या पागल हो गये हैं? इन सब के जबरदस्ती करने पर रोऊँ अथवा इनकी मूर्खता पर हँसूं? इन लोगों में बड़ी मौसी उसे अधिक बुद्धिमान मालूम हुई। वह रोये-धोये बिना कैसा सदैव

के समान ही बोल-चाल रही थी।

तीनों नीचे उतर आईं। मणि ने नीचे दस-बारह स्त्रियों को एकत्र बैठी हुई देखा। वे उसे देखते ही और भी जोर से रोने लगीं। पश्चात् सब खड़ी होकर छाती पीटने लगीं। कभी-कभी जब स्त्रियां अपनी छाती पीटती थीं तब मणि भी झरोखे अथवा दरवाजे पर खड़ी होकर उनका छाती पीटना देखती और उन्हीं की ताल में ताल तथा स्वर में स्वर मिला कर वह खड़ी-खड़ी धीरे-धीरे छाती पीटना सीखने का अभ्यास करती। फलस्वरूप उसे भी इन लोगों का छाती पीटना देख कर आनन्द आ रहा था। लेकिन पहले एक समय जब उसकी माँ ने उसे छाती पीटते हुए देखा था तो बेलनों से खूब पीटा था, अतः उसी डर से उसने माँ की ओर कनखियों से देखा। परन्तु वह तो अपनी छाती पीटने में व्यस्त थी। इससे मणि को भी साहस हुआ। वह भी छाती पीटने लगी। इसमें उसे आनन्द आ रहा था। उसने सबको बारी-बारी से एक दृष्टि से देखा किन्तु जिस छटा से बड़ी मौसी छाती पीट रहीं थीं वह किसी में भी नहीं थी। इतनी अधिक आयु में उनका इस प्रकार छाती पीटना देखते ही बनता था।

फिर स्त्रियां बैठ कर एक राग से रोने लगीं। बड़ी मौसी ने आदेश दिया--'कृष्णा ! गहना-कपड़ा ले आ न।'

मणि उलझन में पड़ गई, ऐसे रोने के समय गहना ! लेकिन कृष्णा तुरन्त गहना-कपड़ा ले आई और सबों ने मिलकर मणि को गहने और बढ़िया कपड़े पहनाये। मणि अपने मन में बहुत प्रसन्न हुई। थोड़े ही दिन पहले उसने विवाह के समय प्रथम बार उन्हें पहना था।

'किन्तु माँ। वह कंगन तो मुझे अच्छा नहीं लगता, दूसरा ला न।' मणि बिना कहे न रह सकी।

'चुप बैठ न रांड !' डपटते हुए बड़ी मौसी ने उसकी कोख में चिकोटी काटी।

मणि बेचारी चुप रह गई।

'देख कृष्णा ! टीका लगाना मत भूलना।' बड़ी मौसी ने कहा।

'अब कौन लगाता है ?' पड़ौस की एक स्त्री ने कहा।

'न लगता हो ! लेकिन मेरे यहाँ तो जैसी पहले से प्रथा चली आई है वैसा

ही होगा।' कहकर बड़ी मौसी ने सिंदूर में उंगली बोर कर मणि के माथे पर टीका लगा दिया। इस प्रकार गहना-कपड़ा आदि से सजा कर दो औरतों ने उसका हाथ पकड़ कर आगे किया और सब रोते कलपते हुए नदी की ओर चलीं। प्रौढ़ नारियों का रुदन ऐसा मालूम हो रहा था मानों वह किसी संगीत-शाला में कठिन अभ्यास से सीखा गया हो। न तो उसमें शोक-संतप्तता थी और न हृदय को विदीर्ण करने वाली करुणा ही। केवल उसकी कला ही कर्णागत हो रही थी।

दोनों हाथ पकड़ कर मणि को नदी में नहला दिया गया तत्पश्चात् उसकी चूड़ियाँ फोड़ डाली गईं।

'बड़ी मौसी ! मौसी !! यह क्या कर रही हो ?' मणि अब गहने को भी जाता हुआ देख कर फुक्का फाड़ कर रो पड़ी और लड़ने की तैयारी कर रही थी कि बड़ी मौसी ने स्त्रियों के रोने का लाभ उठा धीरे से उसके कान में कहा—'राँड ! चुप रह, देख अगर तूने जरा चीं-चपड़ की तो समझ रख। जो मैं कहती हूँ चुपचाप करती जा !'

'लेकिन मेरे गहने क्यों—'

'अभागिन तेरा पति मर गया इस……' धीमी लेकिन भयंकर आवाज में मौसी ने जवाब दिया।

'पति' शब्द को सुन कर मणि की दृष्टि के सामने एक दस-ग्यारह वर्ष का बालक नाच गया जो थोड़े ही दिन पहले जामा-जोड़ा व पगड़ी पहने हुए घोड़े पर सवार हो उसके घर आया था, जिसे उसने होमाग्नि से निकलने वाले धूएँ में, काजल से काले किये हुए नेत्रों से तनिक देखा था। इसके बाद वह उसके साथ पालकी में बैठ कर बाजा-गाजा के साथ गई थी। वह सब उसे स्मरण हो आया।

'किन्तु इसमें मेरा क्या…?' मणि ने पूछा।

पर बड़ी मौसी को जवाब देने का अवकाश नहीं था। मानो बैंड-मास्टर ने अपनी बेंड हिला कर नया गायन प्रारम्भ कर दिया हो उसी प्रकार सभी औरतें गाने लगीं। अच्छी तरह गा न सकने के कारण बहुत-सी विधवाओं के गले में से भाँय-भाँय की भौंडी आवाज निकल रही थी। छाती पर ताल भी एक

साथ पड़ने लगी। मणि अपनी बड़ी मौसी को ही ध्यान से देख रही थी और स्तब्ध होकर उसकी आवाज सुन रही थी। वह भी धीरे-धीरे छाती पर हाथ मारने लगी। भूल में एक बार ताल चूक भी गया। उसे गरबा गाने का बड़ा शौक था।

थक जाने पर सब घर पर आईं। मणि को आनन्द तो खूब आया। अगर दुःख था तो केवल अपने गहने और चूड़ी जाने का!

२

कुछ वर्ष बीतने के पश्चात् वृद्ध पिता ने अपना स्वाभिमान भूल कर विधवा पुत्री को उसके ससुराल पहुँचा दिया।

किन्तु बाघ एवं भालू के भरे हुए भयानक वन में अकेली निराधार बाला को आश्रय मिल गया ऐसे उदाहरण मिलते हैं, परन्तु आश्रय नहीं मिला। क्रूर जानवर में भी दया होती है, पेट भरा होने पर वह अपना घातक स्वभाव भूल जाता है। एक छलाँग में, अधिक विचार किये बिना दुःख का अन्त भी वह शीघ्र ही कर दे तो कोई आश्चर्य की बात भी नहीं होती, किन्तु जिन जानवरों के पिंजड़े में वह बन्द की गई थी, उनमें न दया थी और न भूलने की आदत। इस के विपरीत अच्छी तरह सोच-विचार कर निश्चल घातकपन से रुलाने की उनमें अद्भुत शक्ति थी। शब्दों से मौन होकर, नाक-भौं चढ़ा कर, आँख के संकेत से, हाथ मटका कर अथवा तिरस्कार से, जिस प्रकार भी आघात हो सके, प्राणी सहम उठे, वैसे सभी प्रकार के प्रयोग उस पर होने लगे। ऐसा पिंजड़ा प्रभु ने केवल उसी के लिए नहीं गढ़ा था। हिन्दुओं के घरानों में जहाँ विधवा बहू है उन सभी के लिए ऐसा ही पिंजड़ा है। कोई पिंजड़ा सोने का मढ़ा होता है, किसी के घातक अच्छे होते हैं, जिससे निर्दोष बाला को कुछ विश्राम मिलता है, किन्तु पिंजड़े और पिंजड़े में कोई अन्तर नहीं होता।

इस पर खूबी तो यह है कि घातक समझते हैं कि उनके दुःख का अन्त नहीं है, जिसका कारण वह अभागी है। वे खाते हैं और वह अभागी भूखी रहती है,

वे सब प्रकार के आनन्द लूटते हैं और वह मजदूरी करती है, वे सोते हैं तब वह दाल दलती है, वे एक-दूसरे के प्रेम में पागल हो जाते हैं उस समय वह निराश्रय अकेली बैठी उसाँस भरती है, इस पर भी वे कहते हैं कि वही उनके दुःख का कारण है और समझते हैं कि उसका मुंह देखने से अपशकुन होता है।

मुंह अँधेरे ही उठ कर परिवार भर के लिए गेहूं पीसती, अकेली कुएं पर कपड़ा धोने के लिए जाती। कपड़ा धोकर पानी लाती। दिन निकलते ही गाय की सानी-पानी करती और उसे दुहती। दुह कर रसोई की सामग्री तैयार करने के लिए जाती और भोजन बनाने के बाद गोबर पाथने चली जाती। गोबर पाथ कर दोपहर को भूखी-प्यासी वापस आती। उस समय सब लोगों का जूठन जो थोड़ा-बहुत उसके लिए बचा रहता, उसे जैसे-तैसे खाती।

बर्तन माँजना भी उसी का काम था। इसके बाद पुरुषों के कपड़े धोने का काम पूरा होते-होते सन्ध्या हो जाती थी। उससे अवकाश पाकर दीपक जला कर बिछौना बिछाने ऊपर जाती। घड़ी-आध-घड़ी जरा पैर सीधा करती कि दूसरी स्त्रियों के भोजन कर लेने के पश्चात् स्वयं भोजन कर फिर बर्तन माँजने बैठ जाती।

बर्तन माँज कर, दरवाजा बन्द कर, दीपक बुझा कर, लकड़ी की कोठरी के सामने चटाई बिछा कर सो रहती। इस समय तक आधी रात बीत जाया करती। कभी-कभी तो सवेरा होने की नौबत आ जाती।

बिना किसी परिवर्तन के निरन्तर उसके दिन इसी प्रकार बीतते। दूसरे सब काम करने का ढोंग करते, हँसी-मजाक करते, गप्पें लड़ाते किन्तु एक दूसरे से कहते कि वह अपना समय आलस्य में बिताती है। वह चौका-बर्तन करने वाली मजदूरिन, ग्वालिन एवं मिसरानी तीनों का काम करती। घर की कुतिया के समान भोजन करती, फटा-पुराना कपड़ा पहनती इस पर भी वह आलसी है, वह है कर्कशा, निम्न श्रेणी के माँ-बाप से उत्पन्न है, नीच के कुल की है, ऐसे-ऐसे कटु वचन वह हँसते हुए सुना करती। एक पैसा किसी को उस पर व्यय नहीं करना पड़ता। इस पर भी सास को संसार में यश मिलता था कि वह एक निराधार विधवा बहू का पालन-पोषण कर रही है।

३

अत्यन्त रूपवती किन्तु म्लान मुख और निस्तेज मुख की एक युवती काला कपड़ा पहने हुए अकेली बैठी है। उसके अंग पर एक भी गहना नहीं है। मुहल्ले में सन्नाटा छाया हुआ है। विवाहोपलक्ष्य में होने वाली दावत में सब लोग जीमने चले गये थे। मुहल्ले भर में केवल वही एक युवती ऐसी थी जो जाने योग्य न समझी गई। उसका रूप, उसकी मोहक आँखें, उसके ललित एवं भरे हुए अङ्ग से मालूम होता था कि वह पूर्ण युवती है।

हथेली पर सर रखे हुए वह रो रही थी। आँसू की बूंदें झर रही थीं। क्या कोई उनको पोंछने वाला नहीं था? कहाँ से हो? प्रकृति ने उसे आनन्द-भवन के योग्य रचा था किन्तु मनुष्यों ने उसे नरक की अधिकारिणी बना दिया। इस का कारण बनाने वाले भी शायद उसके ही अपने सगे थे।

वह रोती रही। इतने में दूर किसी के पैर की आवाज सुनाई दी। एक पुरुष आया और युवती को रोती देख कर खड़ा हो गया।

'मणि! तू रो क्यों रही है?'

युवती चौंकी, उसने सिर उठा कर ऊपर देखा, आँसू पोंछने लगी।

'कुछ नहीं भाई।'

'सब लोग दावत में गये हैं। मैं भी पारिजात की बारात में गया था, अब कपड़ा बदल कर जा रहा हूँ। किन्तु तू रोती क्यों है?' पुरुष की आवाज दया और खिन्नतापूर्ण थी।

मणि ने कुछ उत्तर नहीं दिया।

'दिल में दुःख क्यों न आवे? खैर साहस रख, साहस।'

युवती की आँखों में जहर उतर आया, उसने रोष से अपना सिर ऊँचा किया।

'पर उपदेश कुशल बहुतेरे—दूसरों को उपदेश देना सबको आता है, किन्तु कोई साहस नहीं करता।'

इतना कहते ही उसकी आँखों के सामने अँधेरा छा गया और खम्भे का सहारा लेकर वह बैठ गई। पुरुष नजदीक आया। मणि के बैठने की छटा पर वह विमुग्ध हो उठा।

'क्यों क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं केवल चार दिन के उपवास कर रही हूं।'

'उपवास ! क्यों ?'

'भाई, मेरी पीड़ा तुम क्या समझ सकते हो ? तुम सब लोग विवाह करते हो और हम अबलाएँ भट्टी में जलती हैं। हमारा तो इसलिए जन्म ही हुआ है। हमारा भी क्या हृदय है ? इतना उपवास न करूँ तो संसार से निस्तार कैसे होगा !' रोष आ जाने पर युवती ने कहा।

'जरा धीरे बोल ! कहीं पीछे कोई सुनता न हो !' कहते हुए उसके सुन्दर हाथ की ओर वह पुरुष देखने लगा।

'किसी तरह मर भी तो नहीं पाती कि इस नरक की पीड़ा से छुट्टी मिले।'

'ऐसा क्यों कहती है ? कुछ खा ले, नहीं तो बीमार हो जायेगी। जा उठ ! यदि तेरे घर में कुछ न हो तो अपने यहाँ से ला दूं। बोल जाऊँ ?'

'नहीं जी, नहीं ! जाइये, आपको दावत में जाने को देर होती होगी।'

'कुछ नहीं, तू पहले कुछ खा ले तो जाऊँ' किन्तु मणि की आँखों के आगे फिर अँधेरा छा गया। उसने फिर खम्भे का सहारा लिया और कुछ देर तक वह चुप बैठी रही।

'मणि, कैसी तबियत है ?' कह कर पुरुष ने उसके हाथ पर अपना हाथ रखा।

उसके ह थ के स्पर्श मात्र से युवती चौंक कर खड़ी हो गई। उसके मुँह पर का फीकापन जाता रहा। उसने अपना हाथ खींच लिया।

स्त्री के इस प्रकार चौंकने का कारण पुरुष समझ गया और वह थोड़ा हँसा। उसकी आँखों में एक भिन्न प्रकार का ही नशा था।

'घबड़ा नहीं मणि ! अभी तू बालक है इसलिए ऐसे-ऐसे विचार तेरे मन में उदय होते हैं। आदमी यदि मन में सुख की कल्पना सँजोये रखे तो दुःख कभी उसे सता ही नहीं सकता, समझी !'

होंठ दबाकर, वर्जित विचारों को अपने मन से दूर करने के लिए मणि वहाँ से उठ कर भीतर चली गई।

पुरुष देर तक चुपचाप दरवाजे की ओर देखता खड़ा रहा। उसके मन में न जाने कैसे-कैसे विचार उदय हुए। थोड़ी देर बाद एक ठंडी साँस लेकर वह अपने घर चला गया, किन्तु बहुत समय तक उसके मस्तिष्क से मणि की छबि दूर नहीं हुई।

इन दो हृदयों में सहज आकर्षण हुआ। आकर्षण मैत्री का प्रथम चरण है।

पाप पतन का कारण है। जो मनुष्य निश्चलता से स्वास्थ्य की रक्षा करता है वह योगी है; जिसे स्वास्थ्य-रक्षा में कठिनता पड़े, कुछ गिरे और पीछे पुनः खड़ा हो जाय वह सदाचारी है। यह स्थिति-स्थापकता यदि संचित न रखी जा सके तो अनीति का प्रारम्भ होता है। यह मार्ग बड़ा ढलवाँ होता है। जरा-सा पैर फिसला कि मनुष्य गिरा और अन्त में नीचे पहुँचा। मणि रोई, पुरुष का हृदय दया से भर उठा। दोनों गिरे।

मनुष्य चाहे कितने ही कठोर नियम बनाये किन्तु मनुष्य-स्वभाव की महा-शक्तियों के सामने वह पल भर भी टिक नहीं सकता। हम बाँध को बाँध सकते हैं और ऐसा करके नदी का प्रवाह रोक सकते हैं; किन्तु क्या उसके बीच में तनकर खड़े रह सकते हैं? ऐसा करने पर हम अवश्य फिसल कर गिरेंगे। मनुष्यत्व का प्रवाह हो अथवा नदी का, दोनों का अन्तिम फल समान ही होता है। भगवान महादेव यथासाध्य प्रयत्न करके जटा-विस्तार करके गंगा की प्रबल धारा को धारण कर सके; किन्तु क्या वे उसे अपने मस्तक पर रोक कर रख सके?

इसी शक्ति ने दोनों को गिराया। यहाँ तक कि धरातल पर आकर ही उन्हें शरण मिली। अन्त में पतन पूर्ण होकर ही रहा।

पहला भाग

: १ :

बी० बी० एण्ड सी० आई रेलवे के······ग्राम का स्टेशन अन्य स्टेशनों से छोटा है। इस स्टेशन पर केवल एक झोंपड़ी मात्र है। फ्लैग स्टेशन (Flag Station) होने से केवल स्टेशन मास्टर और चपरासी ही यहां के कर्मचारी हैं। केवल एक गाड़ी आती और एक जाती है। सच तो यह है कि इस स्टेशन का उपयोग रूई की फसल के समय में ही होता है। दूसरे महीनों में शायद ही कोई आता हो।

किन्तु दो गांव के फासले पर मीठाकुआँ नामक गांव का जोरा भगत प्रतिदिन संध्या समय स्टेशन पर आये बिना नहीं रहता था। खेत से लौटते समय अथवा घर से ही अपने पोता-पोती को लेकर आता और रेलगाड़ी के चले जाने के पश्चात् अपनी गाड़ी में बैठा हुआ भजन गाता लौट जाता।

जोरा भगत अपने जमाने का आभूषण था। वह अँग्रेजी शिक्षा का प्रचार होने के पूर्व का भगत था। किसानोद्धारक कानून 'डक्कन एग्रिकल्चरिस्ट रिलीफ एक्ट' पास होने के पहले की नीति की शिक्षा प्राप्त होने से ईमानदार, सच्चा, कर्तव्यपरायण और बात का धनी किसान था। उच्च कुल का, पैसे से सुखी और मन का साफ होने से अमलदारों के त्रास से निडर रहता था। उसकी धाक सब पर जमी हुई थी और गांव के सब लोग उसे पिता-तुल्य मानते भी थे।

अब जमाना नया, सुधार और शिक्षा का था। किसानों के लिए उपरोक्त किसी गुण की आवश्यकता नहीं है। इस समय तो जोरा भगत जैसे रत्न ढूंढने से भी कहीं नहीं मिल सकते।

एक दिन संध्या समय जोरा भगत पांच बालकों को लेकर स्टेशन पर आया। सिगनलर को राम-राम करके गाड़ी की बाट जोहता हुआ खड़ा हो गया। रेलगाड़ी आकर खड़ी हुई। प्रतिदिन की भांति स्टेशन पर जोरा पटेल को देखकर गार्ड ने उसे नमस्कार किया।

जोरा पटेल ने गाड़ी की ओर देखा। उसमें से कोई उतरता हुआ दिखाई नहीं दिया तो गार्ड से कहा—सीटी दीजिये साहब !

'देखो, वह कोई उतर रहा है।' यह कहकर गार्ड ने जनाने डब्बे की ओर हाथ से संकेत किया। दरवाजा खुला और उसमें से एक स्त्री हाँफती हुई-सी नीचे उतरी।

टिकट माँगते हुए गार्ड ने हाथ फैलाया। स्त्री घबराहट और क्षोभ से काँप रही थी। ऐसा मालूम हो रहा था कि अब गिरना ही चाहती है। उसने बड़ी कठिनता व काँपते हुए हाथ से टिकट निकालकर गार्ड के हाथ पर रख दिया।

टिकट देखकर गार्ड चौंक उठा, बोला—'बहन ! यह टिकट तो अहमदाबाद का है और यह तो ···गाँव है।'

'मुझे मालूम है।' स्त्री की आवाज घबड़ाई हुई किन्तु मधुर थी। जोरा पटेल को अचम्भा हुआ। आसपास के गाँवों की प्रायः सभी स्त्रियों को वह जानता था। वह इधर के किसी गाँव की नहीं मालूम पड़ती थी।

गार्ड ने सीटी दी और रेलगाड़ी चल पड़ी।

आगन्तुक स्त्री जल्दी से आगे बढ़ी; पर आह भरकर पास ही में पड़े हुए एक पत्थर पर बैठ गई। उसने अपने मुँह पर से कपड़ा हटा दिया जिससे उसका सुन्दर सफेद चेहरा बाहर निकल आया। उस पर असह्य वेदना के चिह्न दृष्टि-गोचर हो रहे थे। जोरा भगत ने उसके पास आकर धीमे स्वर में पूछा—'बहन ! कौन हो ? कहाँ जाओगी ?'

स्त्री के मुँह से कोई जवाब नहीं निकला। मुँह से झाग से बहने लगे, आँखों की पुतलियाँ घूमने लगीं, वह वेदना से चिल्लाने लगी। बड़े परिश्रम से जी कड़ा करके वह बोली—'मेरे पेट में दर्द हो रहा है।'

भगत ने ध्यानपूर्वक स्त्री को देखा और वह समझ गया कि वह गर्भवती है। उसने पूछा—'जाना किसके यहाँ है ?'

दुःख से आँख फाड़ते हुए स्त्री ने जवाब दिया—'कहीं नहीं।'

पश्चात् अपना एकाकीपन जताने के लिए अपनी एक उँगली को दिखाया, एवं उसका आधार केवल परमेश्वर है यह बताते हुए आकाश की ओर देखा। भगत जी सब समझ गये।

'रावजी पटेल, ओ रावजी पटेल !' भगत जी ने जोर से आवाज दी।

सिगनलर दौड़ा हुआ आया।

'रावजी पटेल ! आप जरा अपनी स्त्री को बुला दीजिये। इस बहन के पूरे दिन.......'

'किन्तु मेरे घर में !'

'भैया ! भगवान का काम है। कल सवेरे मैं इसे अपने यहाँ ले जाऊँगा, आज रात भर की बात है। इसमें कौन-सा हर्ज है ? 'बेटा ! अपने पौत्र को सम्बोधन करके भगत ने कहा—'जा अपनी माँ को बुला ला, गाड़ी जल्दी हाँकना ; कहना एक कोई निराश्रित बहन के लिए कुछ काम है, समझा ?'

बालक समझ गया, वह बोला—'हाँ दादा, अभी आया। यह कहकर वह गाड़ी लेकर गांव की ओर चला।

सिगनलर की पत्नी आई। उसमें पति की अपेक्षा परोपकारवृत्ति अधिक थी। वह उस स्त्री को पकड़कर बड़ी कठिनाई से अपने घर में ले गई और उसकी सेवा-शुश्रूषा में लग गई।

जोरा भगत बाहर बैठे-बैठे माला जपने लगे। थोड़ी ही देर में उनकी पतोहू और पुत्री दो गाड़ियों में बैठकर आ गईं। वे भी अनजान स्त्री की सेवा टहल में जुट गईं।

रावजी ने बाहर चूल्हा जलाकर परांठे बनाए, जोरा भगत का आतिथ्य-सत्कार किया।

रात में दस-ग्यारह बजे के समय भगत जी वृक्ष के नीचे सोने की तैयारी कर रहे थे कि इतने ही में बहू शिष्टाचार के साथ उनके पास आई।

'बाबूजी !'

'क्या है बहू ! उस स्त्री का जी कैसा है ?'

'स्त्री को लड़की हुई—अभी ही—किन्तु—?'

'किन्तु क्या ? दोनों सुखी तो हैं न ?'

'हाँ ! किन्तु इस बला को लेकर हम क्या करेंगे ? यह किसके यहाँ की है ?'

'मुझे क्या खबर बहू ! जितना तू जानती है, उतना ही मैं जानता हूँ। अपने गाँव की तो है नहीं ; किन्तु कोई अच्छे घराने की मालूम होती है। दो-

चार दिन में सब बातें आप ही मालूम हो जायेंगी।'

'किन्तु ?'

'किन्तु क्या ?'

'क्या इन्हें अपने घर ले चलना ठीक होगा ? गाँव में कोलाहल मच जायेगा। इसके बाद जैसी आप आज्ञा दें।'

घर में बड़े बेटे की बहू ही सास की मृत्यु के पश्चात् घर की मालकिन हो गई थी। अत: उसने अपने अधिकार की भगत को सूचना दी।

'क्यों इसमें गाँव वालों का क्या जाता है ?' भगत ने पूछा।

'स्त्री चाल-चलन की अच्छी नहीं मालूम पड़ती।' धीमे स्वर में उसने इस प्रकार कहा मानो बहुत बड़े अपराध की बात कहने से वह काँप रही हो।

'तुमने कैसे जाना ?' अचम्भे से भगत ने पूछा।

'वह विधवा है।'

भगत को कँपकँपी आ गई। दो क्षण उसने राम का नाम लिया। फिर जरा सख्ती से बोला—'बहू ! जो भी हो ; लेकिन विपद का मारा जो कोई भी आवे उसके लिए जोरा भगत का घर खुला हुआ है।'

गंगा बहू ने चकित होकर अपना सिर जरा ऊँचा किया ; किन्तु मर्यादा के कारण कुछ बोल न सकी। दूसरे दिन जोरा भगत जब घर जाने लगे तब रावजी पटेल ने उन्हें रोका।

'भगत ! आपने यह बला अपनी बात रखने के लिए मोल ली है। इसे आप जल्दी ही यहाँ से हटाइयेगा।'

'हाँ भाई, हाँ !' भगत को जरा बुरा लगा। 'मैं इस समय उसी प्रबन्ध के विचार से जा रहा हूँ। मेरा बस चले तो एक क्षण भी उसे यहाँ न रहने दूँ ; किन्तु बेचारी की स्थिति पर तो ज़रा विचार करो !'

'भैया, बुरा मत मानना। आप बड़े आदमी हैं। आप जो कुछ करें आपको कोई उँगली नहीं उठा सकता ; लेकिन हम गरीब को तो लोग कच्चा ही चबा जायँगे !'

'बिल्कुल ठीक !' कहकर भगत जी तेजी से चले। स्टेशन से दो-तीन कोस की दूरी पर एक वैरागी बाबा का मन्दिर था ; जहाँ एक पालकी पड़ी हुई थी।

वह उन्हें याद आ गया। नौ बजते-बजते भगत जी उस पालकी को उठवाकर ले आये और उस नवागता; अनाथ स्त्री को नव-प्रसूता बालिका के साथ अपने घर ले गये। जाते समय रावजी पटेल के हाथ में भगत जी एक रुपया रखने लगे किन्तु सिगनलर ने मनुष्यता की मर्यादा रखने के लिए उसे लेने से स्पष्ट इन्कार कर दिया।

: २ :

जोरा भगत के घर की एक कोठरी में आगन्तुक स्त्री सोई हुई थी। यहाँ आये हुए उसे आज तीन दिन हो गये थे।

इस स्त्रीका स्वरूप एक बार देख लेने के पश्चात् उसे कोई जीवन पर्यन्त नहीं भूल सकता था। उसका शरीर साधारणतः कुछ लम्बा और सुगठित था। उसके मुख पर सौन्दर्य के उपरान्त कुछ अजीब मोहकता थी जो वर्तमान स्थिति के परिणाम स्वरूप अधिक आकर्षक हो गई थी। उसकी आँखें श्रम की बाहुल्यता तथा पीड़ा के कारण आधी मिची हुई थीं, जो इस अवस्था में भी अत्यन्त सुन्दर मालूम पड़ रही थीं। मस्तक पर मानसिक वेदना की छाप मात्र पड़ी हुई थी।

ऐसे देहाती सहवास में उसका रूप विचित्र रूप से खिल रहा था। किसी महल में रहने वाली ऐसी परम रूपवती सुन्दरी को ऐसे पहरावा व वेश में, ऐसी तंग कोठरी में पड़ी हुई देखकर किसी को योगमाया का भ्रम हो सकता था। यह सब कुछ होने पर भी उसके ललाट पर काले दाग पड़ हुए थे। उसके सिर का एक-एक बाल चुन लिया गया था। वह विधवा थी। समाज ने उसके सिर पर अपनी सत्ता की मोहर छाप दी थी।

उसकी गोद में उसका एक बालक—उसकी पुत्री पड़ी हुई आनन्द के अवतार के समान मालूम पड़ रही थी। ऐसा मालूम पड़ रहा था मानो अपनी बड़ी-बड़ी आँखें फाड़कर आनन्दहीन संसार से उसका दुःख पूछ रही हो। माँ गम्भीर, गहरे विचार में पड़ी हुई थी। विचार में लीन होने से आँखों से बहने वाली अश्रुधारा की ओर उसका कुछ भी ध्यान नहीं था। कभी-कभी वह उसासें लेती और बालिका की ओर देखती। बालिका मानो गूँगे मुंह से पूछ रही थी—'यहाँ

आनन्द क्यों नहीं है ?' स्त्री ने सफेद सारस के समान हाथ से आंसू पोंछे। तभी बाहर जोरा भगत अपनी पतोहू के साथ बात करता हुआ सुनाई दिया।

'बहू ! लड़के कहाँ गये ?

'कौन लड़के ?' थोड़ा क्रोधयुक्त स्वर गंगा बहू का सुनाई दिया।

'दूसरे कौन ?' बच्ची, राम और—'

'उन्हें तो कल उनके मामा आकर लिवा ले गये, कहीं दावत में जाना है।'

'और तेरे लड़के ?'

'वे भी मेरे चाचा के एक मित्र हैं, उनके यहाँ गये हैं।

'यह बात है ? बहू ! मेरे ये पैंसठ वर्ष पानी में नहीं बीते हैं। मैं सब समझता हूं।' भगत ने जरा आंतरिक वेदना से कहा।

'यदि आप सब समझते हैं तो ऐसा काम करते क्यों हैं ?' एक नई आवाज स्त्री और भगत के बीच सुनाई दी—'आज तीन दिन से गाँव भर के लोग सब आप ही की चर्चा कर रहे हैं।'

'पंडित जी महाराज !' बोलने वाले को संबोधन करते हुए जोरा भगत ने कहा, 'गाँव के लोग तो सब पागल हो गये हैं। भगवन् ! प्रतिदिन तो माला जपें और एक दिन यदि किसी की सेवा करने का अवसर मिले तो वह भी न करें ? देव और दुखिया एक समान माने जाते हैं।'

'किन्तु भगत, सच्ची बात कहना ! मैंने सुना है कि वह किसी अच्छे घराने की है।'

प्रसूता स्त्री ने अपना होंठ काटा।

'हाँ, भाई ! मालूम तो यही पड़ता है, लेकिन है दुःख की मारी हुई। होगी किसी कलमुंहे की करतूत ! बेचारी बड़ी ही भली मालूम होती है।'

'क्या उम्र होगी ?'

'अट्ठारह-बीस की होगी, ठीक कैसे बताया जाय ?'

'देखना ! बदचलन न हो।'

स्त्री की आँखें क्रोध से लाल हो गईं। बदचलन भाग्य से उसे कोई देखने वाला नहीं था।

'जो कुछ हो, क्या मुझे उसे जन्म भर रखना है ? यह तो मेरी बहू घबराती है और आज तीन ही दिन में न जाने क्या-क्या कर डाला है। लेकिन इस दशा में—मझधार में—उसे कहाँ निकाल दूं ?'

'किन्तु इसका क्या कोई सगा-सम्बन्धी नहीं है ? उसे बुला न लो।'

'पंडितजी ! गंगा बहू ने बहुत पूछा लेकिन वह तो कहती है कि सगे-सम्बन्धी केवल वही परमेश्वर हैं, दूसरा कोई नहीं है। मैंने भी निश्चय किया है कि चालीस दिन उसे यहाँ रखूंगा। इसके पश्चात् जहाँ उसकी इच्छा होगी, चली जायगी।'

'उससे कहो कि किसी बड़े शहर में जाकर रहे, वहाँ न कोई कुछ पूछेगा न जांचेगा।'

'जो उसकी इच्छा में आवेगा, करेगी। लेकिन यह तो बतलाइये आपकी बदली का क्या हुआ ?'

'भाई, मैं बदली न करने के लिए बहुत प्रयत्न कर रहा हूं; किन्तु मामलतदार साहब जी को पड़ गये। देखो उनका भी कोई उपाय खोज निकालूंगा। अच्छा अब चला राम-राम।'

'राम-राम, भाई !

अन्दर लेटी हुई स्त्री ने ये बातें सुनकर जोरा भगत की शुभ कामना के लिए भगवान् से प्रार्थना की। गत आठ वर्षों में यह पहला अवसर था जब कि इस सज्जन पुरुष ने उसे चार दिन के लिए विश्राम-स्थान दिया था। उसने बालिका को फिर छाती से लगा लिया।

लेकिन जोरा भगत की अग्नि परीक्षा हो रही थी ! उसके लड़के और बहू षड्यन्त्र रच कर अतिथि को तरह-तरह के कष्ट देते थे। मुंह लटकाये हुए घूमते थे और अपने लड़के-लड़कियों को उनके ननिहाल में भेज दिया था। गांव में भी बहुत दिनों बाद ऐसी घटना घटी थी, लोगों में खलबली मची हुई थी और जोरा भगत को लोग तिरस्कार की दृष्टि से देखते थे।

इसी प्रकार गांव की स्त्रियों ने भी महाभारत मचा रक्खा था। बहुत-सी स्त्रियां नया-नया बहाना निकाल कर गंगा बहू से मिलने के लिए आतीं और जिस कोठरी में आगन्तुक स्त्री रहती थी उसी के निकट जाकर बैठतीं और उसे लक्ष्य कर अनेक प्रकार की बातें करतीं। निराश्रय स्त्री से सब बातें और प्रभु मृत्यु से की कामना करतीं।

जैसे-जैसे उस स्त्री में शक्ति आती गई वैसे ही वैसे गंगा बहू का अत्याचार

भी बढ़ता गया। उच्च कुल की वधू होने से रीति-रिवाज आदि में वह पारंगत थी और यथाशक्ति मूल्य चुकाने में वह चूकती नहीं थी।

आगन्तुक स्त्री के इस प्रकार बीस-बाईस दिन बीत गये। एक दिन बात बहुत बढ़ गई।

'लो ! धोओ' कहकर गंगा बहू ने कुछ जमीन पर और कुछ स्त्री के हाथ पर पानी डालते हुए कहा—'अब हुआ ?'

'इतना कष्ट मत दो, बहन !' धीमी, भारी आवाज में स्त्री ने कहा, और जरा फीकी हँसी हँस पड़ी। 'मुझसे जहाँ तक जल्दी हो सकेगा यहाँ से चली जाऊँगी। आप लोगों को जरा भी कष्ट नहीं देना चाहती, करूँ क्या ! इस समय लाचारी जो है।'

'बहुत ठीक, तू क्या करेगी ? यह तो भाग्य में जितना बदा है मौज उड़ा ले। मेरे ससुर ही ऐसे हैं जो इतना कर रहे हैं !'

'गंगा बहन ! करके कहना नहीं चाहिए।'

'अरे कहूँ क्या ? यदि मेरी जैसी माँ हो तो जहर खिला दे। क्या इस प्रकार रहने देती ? भगत जी भी मुफ्त का पाप बटोरते फिरते हैं !'

पाठक आपने पहचाना यह नवागन्तुक स्त्री कौन है ? दूसरी कोई नहीं यह अभागिनी मणि ही है। मणि के मुंह पर इस घाव की वेदना स्पष्ट दिखाई दी, उसकी आँखों से फिर आँसू टप-टप गिरने लगे।

'मेरा पाप मेरे सिर है।' उसने अवरुद्ध कंठ से कहा,—'इसमें आपको क्या करना है, जो इस प्रकार कचोट रही हैं ? अपने किये का फल मैं भोगूंगी।'

'तूने क्या भोगा !' क्रोध के आवेश में आकर गंगा बहू ने कहा, 'यदि तेरे समान कोई दूसरी होती तो बावली, कुएँ में जाकर डूब मरती ! क्या इस प्रकार दूसरे के घर में जाकर पड़ी रहती ?' यह कह कर उसने ऐसी बुरी गालियाँ दीं जिन्हें लिखते, पढ़ते और सुनते हुए लज्जा आती है। मणि का कोमल हृदय उत्तरोत्तर खिन्न होता गया। उसने कान में उंगली लगा ली। उसका माथा घूमने लगा।

'गंगा बहन ! क्षमा करो, कहो तो पैर पड़ूं। मुझ मरी हुई को किस लिए मार रही हो ? जैसे तुम्हारे लड़के हैं वैसे ही मेरी भी यह अनाथ लड़की है।

इसी के लिए तो जी रही हूँ।'

यह सुनते ही गंगा बहू के तो तन-बदन में आग लग गई। उसका शब्द-प्रवाह सीमा पार करके बह चला। अपशब्दों की बौछार ने मणि का मुँह बन्द कर दिया। अपना क्रोध दर्शाते हुए वह बोली—'यह तेरी लड़की और मेरे लड़के बराबर हैं ?......खबरदार जो फिर ऐसा कहा, जीभ निकाल लूंगी'—यह कह कर मारने के लिए उसने हाथ उठाया। दुःख और न सह सकने के कारण मणि जमीन पर गिर पड़ी और गंगा के उठाये हुए हाथ को उसके पति ने अचानक पीछे से आकर पकड़ लिया।

शिवा पटेल जोरा भगत का ज्येष्ठ पुत्र था। वह स्वभाव का बड़ा उग्र था। उसका पिता जब मणि को ले आया तब वह बहुत क्रुद्ध हुआ, बड़बड़ाया और भगत जी को भी उसने भला-बुरा कहा। किन्तु ज्यों-ज्यों गाँव के लोगों के मुँह से भगत की बदनामी सुनता गया त्यों-त्यों वह अपने पिता का पक्ष लेने लगा। पक्ष लेते-लेते भगतजी ने ठीक किया होगा ऐसा उसने हृदय से मान लिया। स्त्रियों के मुँह से मणि के रूप की प्रशंसा सुनकर उसको देखना भी चाहता था। आज वह बाहर से आ रहा था कि पत्नी और उसकी आवाज उसे सुनाई दी। पत्नी को गाली देते हुए सुना—मणि की सुशिक्षित आवाज सुनकर कुछ आकर्षण हुआ। उसने भीतर झांककर देखा और प्रार्थना के लिए मणि के दुःखपूर्ण सुन्दर मुख को देखकर उसके हृदय में दया जाग उठी। गंगा का ऊंचा किया हुआ हाथ उसने पकड़ लिया और आँखें लाल-लाल कर पत्नी को घूरने लगा।

'खबरदार कुब्जा ! मुक्का दिखाते हुए उसने कहा—'आज तूने कहा तो कहा; फिर यदि तूने कुछ कहा तो समझ लेना। मेरा पिता जिसे घर में रखे उसे तू गाली देने वाली कौन है ?'

'अरे यह रॉं—'

'क्यों, फिर तू बोली ?" यह कह शिवा पटेल ने एक तमाचा कस कर मुंह पर जड़ दिया; 'ले और बोल !"

'भाई ! यह मत करो, मेरे कारण अपने घर में कलह मत करो।' मणि ने आँसू पोंछते हुए कहा।

'बहन, तू घबड़ा मत ! शांतिपूर्वक जब तक तुम्हें यहाँ रहना हो रहो, देखता हूँ अब तुम्हें बुरे वचन कौन कहता है ?' यह कह कर शिवा पटेल फिरा तो उसकी दृष्टि खटोले पर लेटी हुई बालिका पर पड़ी।

बालिका को देखकर उसका हृदय और भी पिघल गया। नीचे झुक कर उसने सिसकारी दी। बालिका हँसी।

'मुझे दोगी ?'

'प्रसन्नता से !' कहकर मणि ने बालिका को पटेल के हाथ में दे दिया। जमीन पर हाथ बाँधकर बैठी हुई गंगा बहू घुड़कती ही रह गई। पटेल ने ऐसे सुन्दर, ऐसे निर्मल वर्ण का बालक आज ही हाथ में लिया था। उसके हर्ष का पारावार नहीं रहा। उसने दुलार कर बालिका को वापस कर दिया।

'जाता हूँ, देखना जो कभी कुछ कहा तो।' कहकर शिवा पटेल आश्रय-विहीन मणि को सान्त्वना देकर आँखें मलकाता हुआ बाहर चला गया। गंगा तो क्रोध से भीतर ही भीतर जल मरी, किन्तु अपने पति के डर के आगे उसका कुछ वश न चला। 'वंसी बजी है !' कहकर वह वहाँ से उठकर चली गई।

मणि की स्थिति में सुधार हुआ। अब उसे कोई भी कटुवचन कहने का साहस नहीं करता था।

: ३ :

अड़तीस दिन सब कुछ चुपचाप सहन करते हुए मणि पड़ी रही। वह कहाँ जायगी, उसका क्या होगा, वह कौन है आदि प्रश्न भगत और उसके पुत्र की धाक से कोई मुंह पर भी नहीं लाता था; किन्तु मणि दिन-रात इसी पर विचार किया करती थी, वह स्वार्थी थी। वह जानती थी कि संसार मेरे लिए निर्जन अरण्य वन है। इसलिए इस विश्राम-स्थान में रहकर जितनी भी अधिक शक्ति संचित की जा सके उतना ही लाभप्रद होगा। उसका दूसरा स्वार्थ बालिका का था। किसी सुरक्षित स्थान में उसे रखकर, ऐसे स्थान में जहाँ

उसे कोई जानता न हो, उसे अपना नवीन जीवन प्रारम्भ करना था। आठ वर्ष से अकेले दुःख सहन करते हुए उसके मन में हजारों प्रकार के विचार उत्पन्न हुए थे। उन्हीं विचारों के आधार पर अपना जीवन आरम्भ करने का उसने संकल्प किया था। वह गांव की विशुद्ध हवा लेती। पक्षियों का कलरव सुनती। किसी-किसी समय बाहर से आने वाले गाने की तान को सुनती एवं उनसे आनन्द अनुभव करने की इच्छा करती। यह सब होते हुए भी यहाँ अब ठहरना उसे अच्छा नहीं लगता था। वह दरवाजे की ओर देखती हुई बैठी थी, उधर से जोरा भगत को जाते हुए देखकर उन्हें उसने बुलाया।

'भगत काका ! जरा इधर आइयेगा; मुझे आपसे कुछ कहना है। शिवा भाई को भी बुला लेते तो अच्छा होता।'

'क्यों क्या बात है ?' कहते हुए भगतजी भीतर आ गये और इसके बाद ही शिवा पटेल भी आ गया।

'काका ! मेरी विनती है कि आप मुझे जाने की आज्ञा दीजिये। मैंने आप-को बहुत कष्ट दिया।'

'जल्दी क्या है ?' शिवा ने कहा।

'आपको भले ही न हो भाई ! किन्तु मुझे तो है। अभागिनी हूँ, भाग्य बुरा है। गांव भर में मेरी चर्चा होती है। आप लोगों को क्या-क्या सुनना पड़ रहा है, यह सब मैं जानती हूँ।'

'बेटी !' भगत ने कहा—'इसकी चिन्ता तू जरा भी न कर। गांव के बाप का क्या मैंने कुछ लेकर खाया है ?'

मणि ने अपना सिर हिलाकर कहा—'यह आपकी कृपा है, लेकिन इस प्रकार कितने दिन तक चलेगा ? मैं अपने दिन तो किसी प्रकार काट ही लूंगी, लेकिन मुझे आपकी सलाह की आवश्यकता है।'

'क्या ?'

'यही कि अब मुझे कहाँ जाकर रहना चाहिए ? भगत काका, आप लोगों के मन में चाहे जो विचार आये हों किन्तु मैं बिलकुल अधम नहीं हूँ और न कुलटा ही हूँ। भूल किस से नहीं होती ?'

'मैं कहता हूँ ? बेटी भगवान की केवल कृपा चाहिए। किन्तु क्या तेरा

कोई भी सगा-सम्बन्धी नहीं है ? तेरे ससुराल या नैहर में ऐसा कोई नहीं है जो तेरी देख-भाल का भार ले सके ?'

'काका ! ससुराल और नैहर का तो नाम न लो। वहाँ तो केवल परमेश्वर हैं। यह बात तो जाने दो।'

'तब तू कहाँ जाकर रहेगी ?'

'यही तो मैं आपसे पूछ रही हूँ ? मुझे कहीं निश्चिन्त रहकर अपने इस अधम पेट के लिए कुछ करना ही होगा। मैं कुछ पढ़ना-लिखना भी जानती हूँ इससे कोई विशेष कष्ट भी नहीं होगा।'

'बेटी ! भोजन के लिए तो मेरे मोघाराम तलाटी ही हैं। वे कह रहे थे कि उन्हें भोजन बनाने के लिए एक स्त्री की आवश्यकता है।'

'काका ! यह तो ठीक काम नहीं है। इस काम से तो जन्म भर चूल्हा फूंकते ही बीतेगा।'

'तब कहाँ जायगी ? तू हरि का भजन कर जिससे इहलोक और परलोक दोनों सुधरें। एक योगी महाराज हैं, उनके यहाँ जायगी ?'

'वह कैसे हैं ?'

'बड़े हरिभक्त हैं और बहुत से मनुष्य उनकी शरण में जाते हैं। वहाँ तुझे बड़ी शांति मिलेगी।'

'जी हाँ, मैंने भी उनकी ख्याति सुनी है। पास ही के शहर में तो उनका मंदिर है ?'

'हाँ वहाँ यदि तू चली जाय तो बड़ा अच्छा हो।'

'किन्तु यदि वे मुझे शरण न दें तब ?'

'कभी भी नहीं, वे तो महात्मा हैं। हजारों मनुष्य उनका उपदेश सुनने के लिए नित्य जाते हैं।'

'किन्तु मेरी बालिका का क्या होगा ?'

'इसे भी अपने साथ लेती जा, और क्या होगा ?"

'काका ! इसे मैं अपने साथ लिए-लिए कहाँ फिरूंगी ? अपने शत्रु पुरुषों के हाथों न मालूम क्या-क्या दुःख अभी भोगने बाकी हैं। अब तो कहीं मेहनत-मजदूरी करके पेट पालना है। आपने जैसे इतने दिन तक अपने यहाँ रखा वैसे

दूसरा कोई क्या रखेगा ? भगत काका, ऐसी कष्टप्रद अवस्था में अपनी इस कच्ची कली जैसी बालिका को कहाँ रखूंगी ? यह मर भी नहीं जाती कि संताप मिटे !' कह कर बालिका को पिता-पुत्र के सामने लिटा दिया। थोड़ी देर तक सब चुप रहे।

'काका !' मणि ने धीमे स्वर में कहना प्रारम्भ किया—'जहाँ जाऊंगी मेरा पाप मेरे आगे-आगे दौड़ेगा किन्तु इस बालिका ने क्या अपराध किया है ? यह तो ईश्वर की देन है। यह तो कम-से-कम स्वच्छ वायु में पले।'

'तब किया क्या जाय ?' शिवा पटेल ने पूछा।

'यदि आप दोनों स्वीकार करें तो इसे यहीं छोड़ जाऊं, लड़कों के साथ यह भी पल जायगी। ठीक-ठिकाना लग जाने पर मैं तुरन्त ही इसे ले जाऊंगी। इसे छोड़ जाने मात्र से मेरा कलेजा फटा जाता है, किन्तु कोई और चारा भी तो नहीं है।'

'बेटी, मेरी जरा भी अनिच्छा नहीं है; किन्तु इस शिवा की वहू का मिजाज जरा गरम है।'

'अरे पिताजी ! मैं उसकी सब गरमी निकाल दूंगा। मुझे भी इसकी बात ठीक जंचती है। माँ के पाप से पुत्री क्यों कष्ट उठाये ?'

'मेरे लाल, तुम्हारी आयु सौ बरस की हो।'

'गंगा बहू ! ओ गंगा बहू !!' भगतजी ने आवाज दी।

गंगा बहू तुरंत घूंघट काढ़ती हुई आई।

'देखो बहू ! यह मणि बहन जाना चाहती है, इनकी पुत्री को रखोगी ? वह भी अपने घर में रहकर दूसरे बालक-बालिकाओं के साथ पलेगी।'

'यह उठ-बैठ इस उम्र में मुझसे नहीं होगी।'

'घर में दूसरी बहुएँ भी तो हैं न ?'

'वे सब भी क्या खाली बैठी हैं ?' गंगा बहू ने उत्तर दिया।

'कोई खाली नहीं है तो मणि को भी अपने साथ रखो।' शिवा पटेल ने चिल्लाकर कहा। पिता का ख्याल कर उसने इससे अधिक और कुछ कहना उचित नहीं समझा; किंतु उसका क्रोध बढ़ता गया। 'माँ और उसकी पुत्री दोनों अब यहीं रहेंगी, इससे सबको संतोष होगा न ?'

गंगा वहू ने देखा कि यदि बालिका को रखना अस्वीकार करती हूँ तो माँ भी रहेगी। अतः उसने बुद्धिमानी से काम लिया। उससे पूछा, 'मणि, कहाँ जा रही है ?'

'यह तो महायोगी महाराज के मंदिर में जाकर रहेगी; बाद में कोई ठिकाना लग जाने पर पुत्री को आकर ले जायगी।'

'अरे वह अगर यहीं रहे तो कौन-सा अनर्थ हो जायगा ?' शिवा पटेल ने कहा।

'तब जैसी आपकी इच्छा' इतना कहकर गंगा बहू चली गई।

'पिताजी ! ये सब आपसे नहीं मानेंगी, मुझसे ही ठीक रहेंगी।'

'हाँ, तब ऐसा ही करूँगा।'

'बहुत ठीक ! परसों आप अपनी गाड़ी पर मुझे शहर भेज दें।' मणि ने कहा।

'अच्छी बात है, मुझे भी जाना है। तलाटी भी आने वाले हैं, भगत ने कहा।

मणि निश्चिन्त हो गई। उसकी पुत्री अब सुरक्षित स्थान पर रहेगी इससे उसे शान्ति मिली। संसार विशाल है, कहीं किसी एक कोने में पड़ी रहकर अपने दुर्दिन सरलता-पूर्वक काट सकूंगी, ऐसा उसे विश्वास हो चला था।

दो दिन तक उसकी आँख के आँसू नहीं रुके। इन दो दिनों में बालिका को साथ ले जाने के लिए कई बार उसके मन में विचार आये किन्तु वह बड़ी दृढ़-प्रतिज्ञ थी। साथ ही उसे यह भी विचार आया कि जब तक मेरा कुछ प्रबन्ध न हो जाय तब तक बालिका को यहाँ छोड़ जाने में ही लाभ है। अतः उसने पुत्री को वहीं छोड़ जाने का निर्णय किया।

जाने के एक दिन पूर्व उसने भगत जी को बुलाया। उसके पास एक कंगन और गले का हार था। बालिका के पालन-पोषण के लिए ले लेने का मणि ने बहुत आग्रह किया किन्तु भगतजी ने उसे किसी भी तरह लेना स्वीकार न किया।

प्रातःकाल पाँच बजे सब लोग सोकर उठ गये। मणि ने अपनी पुत्री को अन्तिम बार चूमा। गंगा बहू से क्षमा माँगी और बालिका के प्रति दया रखने की याचना की। गंगा बहू ने बालिका को पालने का वचन दिया। रोने से

लाल हुई आंखों से अश्रुधारा बहाती हुई हतभागिनी स्त्री जिस बालिका के लिए घर-द्वार छोड़कर भटकती फिरी उसे दूसरे को सौंपकर भगतजी और मोघाराम तलाटी के साथ शहर चली।

'गंगा बहन!' चलते-चलते उसने कहा—'मेरे जीवन-धन की रक्षा करना और यदि मैं न आऊँ या किसी को न भेजूं तो भी चौदह वर्ष की अवस्था के पूर्व इस बालिका को व्याहना मत, समझीं बहन।'

'बहुत ठीक, बिल्कुल निश्चिन्त रहो।' शिवा पटेल ने उत्तर दिया।

'और इसका नाम सुरेखा रखना।'

'अच्छा!'

घुंघरू की आवाज के साथ बैल चल पड़े। माँ और पुत्री के बीच धीरे-धीरे अन्तर बढ़ता गया।

: ४ :

शहर के आरम्भ में ही एक पुरानी किन्तु बड़ी हवेली में महायोगी महाराज का मन्दिर था। आज कितने ही वर्षों से यह महात्मा शहर में जमे हुए थे और गाँव के शिष्यों के अतिरिक्त समस्त गुजरात से भक्तजन उनके पदपंकज का स्पर्श करने के लिए आया करते थे। प्रतिदिन हजारों नर-नारी उनके चरण स्पर्श कर अपने को पवित्र मानते थे। हजारों रुपये प्रति दिन उनकी भेंट चढ़ते थे। अनेक मनुष्य शिष्य बनकर उनके उपदेश के अनुसार चलने की प्रतिज्ञा करते थे। बहुत से उनके साथ ही रहकर सेवा-टहल कर अपने मन में सोचते कि महायोगी महाराज अपने साथ उन्हें भी स्वर्ग ले जायँगे।

मन्दिर का आगे का कमरा कथा-वार्ता आदि के उपयोग में आता था। बीस खिड़कियाँ कमरे में वायु और प्रकाश करती थीं। महापुरुषों के चित्र और छत पर नक्काशी के काम कमरे की रमणीयता को बढ़ाते थे और एक तरफ रखा हुआ चन्दन का सिंहासन देव-मन्दिर की भव्यता प्रकट करता था। इस

स्थान पर प्रतिदिन प्रातः लगभग पाँच सौ स्त्री-पुरुष कथोपदेश सुनने के लिए आते थे।

महायोगी महाराज की ख्याति सकारण थी। गुजरात के भोले-भाले निवासियों को वश में करने के लिए उनका डील-डौल और भव्य शरीर ही यथेष्ठ था। उनका शरीर चरबी से मोटा नहीं था; बल्कि सुगठित, सुडौल और सुन्दर था। एक भी नस दिखलाई नहीं देती थी। उनके चेहरे पर तेज था जिसे लोग उनकी सिद्धि का तेज समझते थे। आँखों में से निरन्तर एक शांत, मृदु तेज निकलता रहता था। वे गत दस वर्षों से चालीस वर्ष के ही दिखाई देते थे और जब वे नहा-धोकर शरीर में चन्दन लगाकर, सफेद बहुमूल्य वस्त्र धारण करके, चाँदी के मढ़े हुए खड़ाऊँ पैर में पहन कर, हाथ में भगवद्गीता लेकर, पैर पर पड़ने वाले भक्तजनों के बीच में से होकर निकलते थे तब लोगों में विचित्र शांति छा जाती थी। श्रद्धालु लोगों में अपने आप ही श्रद्धा उत्पन्न हो जाती थी, भक्तजन विमूढ़ होकर इस तेजस्वी मूर्ति को निहारते ही रह जाते थे। जब वे अपने मोती के समान सुन्दर दाँत निकाल कर मुस्कराते तब सब को सच्चिदानन्द का स्वाद आ जाता था।

विद्वता में भी उनकी ख्याति चारों ओर फैली हुई थी। उन्हें क्या नहीं आता था। पाँच वर्ष तक लगातार उनकी सेवा में रहकर भी कोई उनकी भूल नहीं निकाल सकता था। उनके यहाँ एक-दो शास्त्री और एक-दो ग्रेजुयेट चटाई बिछाकर पड़े रहते थे; किन्तु वे महाराज को पढ़ाते थे या महाराज उन्हें सिखाते थे यह कोई भी बता नहीं सकता। किन्तु उनके प्रवचन से विद्या अथाह प्रतीत पड़ती थी।

जोरा भगत, मोघाराम और लज्जा से मुँह ढाँके हुई मणि ये तीनों आकर एक किनारे खड़े हो गये। अभी साढ़े सात बजने में कुछ विलम्ब था। महायोगी महाराज एक क्षण भी अपने कार्यक्रम में फेरफार नहीं करते थे। घड़ी भले ही आगे-पीछे हो जाय किन्तु महाराज सदैव ठीक समय पर कार्य प्रारम्भ करते थे। साढ़े सात बजते ही दरवाजा खुला और तेजस्वी महात्मा ने पदार्पण किया। मणि ने महाराज का बड़ा यशगान सुना था; किन्तु उनकी भव्यता देखकर वे यशगान भी उनके सामने तुच्छ मालूम पड़ने लगे। उसका दुःखी

हृदय कुछ शांत हुआ। इनके चरण का आश्रय ग्रहण कर क्या उसका दुःख दूर होगा ?

महाराज बैठ गये। एक मीठा-रस से भीना कहा जाय तो ठीक होगा—हास्य भक्तजनों की ओर उसी प्रकार फेंका, जैसे कोई धनी भिखारी की ओर पैसा फेंके। दो पार्षद पंखा झलने लगे। एक-दो भक्तों ने आगे बढ़ कर महाराज को चन्दन का टीका लगाया और आरती उतारी। वहां पर उपस्थित सभी लोगों ने आरती ली। ठीक आठ बजे प्रवचन प्रारम्भ हुआ।

मणि चित्रलिखिता-सी देखती रही। महाराज के मुख से मीठा, शांत, मोहक प्रवाह निकला ; जिसने श्रोताजन के कोलाहल को दबा दिया। हिन्दी वे शुद्ध, स्पष्ट और सरलतापूर्वक बोलते थे। इनके अलावा संस्कृत, अंग्रेजी आदि दूसरी भाषायें भी जानते थे। थोड़ी-थोड़ी देर में छोटे-छोटे चुटकुले भी छोड़ देते थे जिन्हें सुनकर लोग हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। कोई खेदयुक्त प्रसंग आ जाने पर सबकी आँखें सजल हो जातीं। इस पर भी उनकी आवाज ! मणि को तो उसमें वंशी का माधुर्य मालूम पड़ रहा था। उसके हृदय में विचित्र भाव उदय हो रहे थे।

महाराज की परिमार्जित आवाज नदी के प्रवाह के समान पल में शांत, पल में उछलती हुई और पल में अपनी तरंग में सबको खींचती हुई आगे बढ़ी—

'कुछ लोग—विद्वान् किन्तु क्षुद्र बुद्धि वाले—पाश्चात्य शिक्षा से संस्कार-च्युत होकर कर्म करना चाहते हैं—किन्तु नियत शास्त्र-विहित नहीं। अपने शहर में ही समाजोद्धार का प्रयास कुछ समय से प्रारम्भ हुआ है। संसार सुधारना है किन्तु उसके लिये शास्त्र की सहायता की आवश्यकता नहीं है ! घर बनाना है किंतु नींव के नियमों को बिना स्वीकार किये हुए ! समुद्र को पार करना है किंतु नाव का त्याग करके। इस बालू के बंगले की नींव स्त्रियों की स्वतंत्रता पर रखना चाहते हैं। कैसी मूर्खता है ! किंतु—

न तु प्रतिनिविष्ट मूर्खजनचित्तमाराधयेत्

प्रचंड तरंगों से भयंकर बनी हुई नदी पार की जा सकती है। फुन्कार मारने वाले सर्प को भी सर पर रखा जा सकता है, किन्तु भर्तृहरि महाराज कहते हैं कि 'न तु प्रतिनिविष्ट मूर्खजनचित्तमाराधयेत्।'

स्त्री यह संसार-तारिणी है। जगत-उद्धारिणी है। जगदम्बा का अवतार है। उसके आचार-विचार पर ब्रह्माण्ड का आधार है। उसकी स्वतंत्रता से प्रलय काल उत्पन्न होता है। इसीलिए मनु महाराज कह गये हैं—

'न स्त्री स्वातंत्र्यमर्हति'

मणि का हृदय उछलने लगा। उसे ऐसा मालूम होने लगा मानों महाराज उसी को सम्बोधन करके कह रहे हैं। घड़ी भर अपने विचारों को भूल कर महाराज के सूत्रों की सत्यता को आंकती रही।

'किन्तु हमारे स्वतंत्रता-पूजक समाजोद्धारकगण स्त्रियों को स्वतंत्र बनाने में एक मत हो रहे हैं और समझते हैं कि विधवाओं को पुनर्विवाह से ही यह स्वतंत्रता मिल सकती है। किन्तु वे इस बात को भूल जाते हैं कि वैधव्य में सौभाग्य की अपेक्षा कहीं अधिक विमलता है!

शास्त्र में कहा हुआ विधवा-विवाह का निषेध सकारण है। समाज में विधवाओं को रहने दो अन्यथा प्रत्येक घर में कुमारी कन्या रखनी पड़ेगी। जो दशा विलायत की है वही दशा हमारी भी होगी, संसार में तो दुःख है ही किन्तु अधिक दुःख छोड़ कर कम दुःख स्वीकार करने में ही विवेक और बुद्धि का परिचय होता है।

नारी निन्दा मत करो, नारी रत्न की खान।
उनसे उत्पन्न हुए हैं, ध्रुव, प्रह्लाद महान्॥

किन्तु यदि विधवा-विवाह के प्रचलित हो जाने पर समाज अविवाहित कुमारियों से भर जाय तब समाज की क्या दशा होगी? या तो इस खान से रत्न ही न निकलेंगे और निकलेंगे भी तो पत्थर। अर्जुन ने श्री गीता जी में ऐसे ही कहा है।

महाराज की शिक्षा से उस समय मणि के मस्तिष्क पर नया प्रकाश पड़ा। उसे ज्ञान हुआ कि उसने कैसा घोर पातक कर्म किया है। महाराज आगे बढ़े:—

प्राचीन काल में एक त्रिया-राज्य था। वहां कुंआरी कन्यायें ही राज्य करती थीं। वहां की रानी कुमारी थी, वहां की सेना में भी कुंआरी कन्यायें थीं। एक बार उस राज्य में महागुरु मत्स्येन्द्रनाथ पधारे और जिस महान तपस्वी का मन उर्वशी, मेनका आदि को देख कर विचलित नहीं हुआ था, उनका मन कुमारियों में जा फँसा और उन्हें योगभ्रष्ट कर डाला।

इसी कारण से त्रिकालज्ञ महर्षियों ने कन्या को अविवाहित रखने का निषेध किया है। और यदि कन्याओं को अविवाहित रखना आप लोगों को स्वीकार न हो, वर्णाश्रम की पवित्रता का पालन करना हो तो विधवा-विवाह आपको रोकना ही पड़ेगा। इन सब समाजशास्त्र के नियमों से अनभिज्ञ बिचारे समाज-उद्धारकों को शास्त्र-वचन देखने-सुनने का भला कहाँ अवकाश है।

इस पर भी विधवा की स्थिति में जो विमलता है वह भला किसमें मिल सकती है ? निश्चल तप से विभूषित ये मातायें तो अवनि का आधार रूप हैं। वे ही सच्ची पुण्यशाली हैं, सच्ची वेदान्ती हैं। उनके कुटुम्ब क्षेत्र में एक कुटुम्ब नहीं है बल्कि पूरी वसुधा है। उन्हें एक घर का आँसू नहीं पोंछना है बल्कि संसार भर के दुःखों को दूर करना है, एवं उनका सम्बन्ध सिर्फ अपने सगे-सम्बन्धियों से ही नहीं है, बल्कि सम्पूर्ण जगत से है।

महाराज ने एक पद गाकर सुनाया। उनके गाने की कला भी बड़ी अद्भुत थी, जिससे वह पद पूरा करते-करते लोगों में एक विचित्र रोमाँच-सा छा गया।

इसके पश्चात् जैसे ही नौ बजना प्रारम्भ हुआ कि सहसा जैसे पर्वत पर से गिरने वाला जल-प्रवाह भूमि में समा जाय वैसे ही उनका प्रवचन भी समाप्त हो गया। आशीर्वाद देने के लिए हाथ ऊँचा कर महाराज बोले—शांतिः शांतिः शांतिः।'

श्रोताओं ने गहरी निःश्वास ली। शब्द-जाल का जादू समाप्त होते ही मानो उनकी जीवन-डोरी टूट गई हो ऐसा मालूम हुआ। महाराज को फिर सुवासित पुष्प हार पहनाया गया और वे उठ कर अन्दर के कमरे में चले गये।

लोग छटने लगे, कुछ ही लोग रह गये। नौ से दस बजे तक जिस किसी की भी इच्छा हो उससे महाराज एकान्त में मिलते थे और उसके मन का समाधान करते थे। इन रह जाने वालों में मणि, मोघाराम और जोरा भगत भी थे। उनके सद्भाग्य से खास मिलने वालों की संख्या आज बहुत ही कम थी। जो दरवान दरवाजे के बाहर खड़ा था वह जोरा भगत को पहचानता था। इस से मणि का नम्बर जल्दी ही आ गया।

उस पार्षद ने जोरा भगत को आँख से संकेत किया जिसे देख कर उन्होंने मणि को भीतर जाने के लिए कहा। ऐसे तेजस्वी पवित्र महात्मा से भेंट करने

के लिए जाते समय मणि के हृदय में उसके पाप पुनः सजग हो उठे। उसे अपना पतन स्मरणहो आया जाऊँ या न जाऊँ यह शंका मन मे उत्पन्न हुई। किन्तु अब न जाना ठीक न होगा क्योंकि दरबान दरवाजा आधा खोल कर खड़ा था। अतः घबराहट के साथ वह भीतर गई और उसके पीछे दरवाजा बन्द हो गया।

वह दरवाजे के पास स्तब्ध होकर खड़ी रही। सामने पीढ़े पर महायोगी महाराज पद्मासन लगाकर बैठे थे। पद्मासन होने पर भी त्यागी की अपेक्षा श्रीकृष्ण का ज्ञान वे अधिक करा रहे थे। मणि क्षोभ से ठिठक गई। यह देखकर महात्माजी ने अपने तेजस्वी चक्षुओं से उसे पास आने के लिए संकेत किया।

उनकी आँखें गम्भीर, तेजस्वी सत्तात्मक थीं। उनमें मणि को विशेष चमक दिखाई दी और उसे ऐसा मालूम हुआ मानो आत्मविस्मृत होकर उसके प्राण उन दो तारों की ओर ही उड़ते चले जा रहे हैं। आकृष्ट होकर वह उनकी ओर देखती रही। वह कौन थी, क्या थी, उसका हृदय किस भाव से दबा जाता था, यह सब कुछ वह भूल गई। वह आगे बढ़ी; उसके हृदय में एक प्रकार की स्फूर्ति थी।

'बैठ जाओ बेटी ?'

कुछ कहे बिना पैर छूकर मणि बैठ गई।

'क्या दुःख है बेटी ? तुम जैसों को ईश्वर दुःखी रहने के लिए संसार में नहीं भेजता।' मीठे शब्दों में महात्माजी ने कहा। दुःख सम्बन्धी प्रश्न होने पर मणि चौंक कर होश में आई। महात्मा की आँखों द्वारा प्रसारित जादू के जाल से मुक्ति मिली।

'महाराज ! मेरा दुःख अकथनीय है।'

'कहने की आवश्यकता नहीं है।' धीरे से महात्मा ने कहा और अपनी आँखें मणि की आँखों पर जमाकर बोले—'मैं जानता हूँ।'

'हूँ ?' कहकर मणि चौंककर पीछे हट गई।

'घबड़ा मत, संसार में मुझसे कोई बात छिपी नहीं है। तू बाल-विधवा है।'

मणि ने स्वीकृति सूचक सर हिलाकर 'हाँ' कहा।

'सगे-सम्बन्धियों से दुःखी है। पुरुषों की अधमता की भोग्य बन चुकी है।

इस समय निराधार होकर आश्रय ढूंढ़ रही है।' इस प्रकार महाराज बोलने लगे मानो उसकी अन्तरात्मा से एक-एक शब्द खिलकर बाहर निकल रहे है।

मणि विमूढ़-सी सुनती रही।

'क्या सब सच है ?'

'हाँ, प्रभु ! महाराज ! आप सर्वज्ञ हैं।' घबराकर मणि ने कहा। महात्मा जरा हँसे।

'सर्व अन्तर्यामी से अपना भेद क्या छिपाना। अब बतायें मेरे दुःख कब दूर होंगे ? अथवा जीवन भर इसी प्रकार रो-रोकर दिन काटना होगा ?'

'जब पाप कट जायेंगे तब !'

'पाप ! महाराज ! आप भी पाप कहते हैं ?''

: ५ :

'हाँ पाप के बिना दुःख नहीं होता।'

'मैंने कौन-सा पाप किया ?' इसके साथ ही भूला दुःख ज्यों-ज्यों ताजा होने लगा त्यों-त्यों उसे संसार की क्रूरता याद आने लगी। महाराज के व्यक्तित्व का प्रभाव कम हो गया और जो विचार उसके हृदय में मृत पड़े हुए थे वे जाग्रत होकर बाहर आने लगे।

'तू कब विधवा हुई ?'

'महाराज ! विवाह के समय आठ वर्ष की थी और एक महीने बाद ही विधवा हो गई। मेरा बाल-विवाह हुआ; यह क्या मेरा दोष है ? वर कहाँ से आया, पता नहीं ! किसने मेरा उसके साथ गठबन्धन किया, यह भी पता नहीं ! वह कौन था, इसकी भी मुझे खबर नहीं ! इस पर भी दोष मेरा है ? लोग भले ही कहें, वे सब तो पाप के पुतले हैं, किन्तु आप भी ऐसा कहते हैं ?'

महात्मा मणि की बात सुनकर मुस्कराये।

'वैधव्य को दुःख क्यों मानती है ?'

'क्यों मानती हैं ?' आश्चर्य से मणि ने पूछा।

'हाँ बहन ! सौभाग्य की अपेक्षा वैधव्य बहुत विमल है।' मधुर स्वर में महात्मा ने कहा।

'विमलता ! तब तो यदि सभी सौभाग्यवती स्त्रियाँ इस विमलता को ग्रहण कर लें तो बड़ा अच्छा हो। महाराज, मैं अधम हूँ। मुझे क्षमा कीजियेगा। ये सब बातें बड़ी बुद्धिमत्तापूर्ण मालूम पड़ती हैं किन्तु जब किसी पर आ पड़ती हैं तब पता चलता है।'

'दुःख तो संसार की पहली सीढ़ी है।'

'महाराज ! मैं आपकी तरह ज्ञानी नहीं हूँ। कृपया बताइये, मुझे यह दुःख क्यों हुआ ?'

'इस दुःख से पवित्र होकर संसार का उद्धार करने के हेतु।'

'मुझे पवित्र नहीं होना है। मुझे सुख प्राप्त करना है। बड़ी होने पर मेरा रग-रग सौभाग्य के लिए तरसता था। पति के साथ घूमने-फिरने की बोलने-हँसने की, अपना घर बसाकर महल में रहने वाली रानी के समान रहने की, अपने बाल-बच्चों को खिलाने की, नहलाने-धुलाने की, इन सब लालसाओं को भुलाकर दुःख किस लिए स्वीकार करूँ ? कौन-सा अपराध किया है ?'

'विवाह जो किया !' शान्ति से मानो थोड़ा टोह लेते हों, इस प्रकार महात्मा ने कहा।

'विवाह हुआ, पाणिग्रहण करने वाले का मुंह तक नहीं देखा। एक दिन उसका हाथ पकड़ने का अपराध अवश्य किया; किन्तु उसके लिए क्या इतने दिन तक कष्ट उठाना होगा ? यह अपराध तो मेरे माँ-बाप का है; जिन्होंने इतनी छोटी उम्र में मेरी गर्दन में फाँसी लगाई।'

'बेटी ! दुःखी होने का यह प्रथम चरण है। बीती हुई को बिसार देना ही बुद्धिमानी का काम है। इससे व्यर्थ आकुलता बढ़ती है।'

'आकुलता तो बहुत है। और अभी आगे भी इससे निस्तार नहीं है। पहले तो मैं भोली थी। व्रत-उपवास करती थी एवं धर्म प्रचलित नियमों के आधीन थी।'

'बाद में ?'

'बाद में मैंने सब कुछ छोड़ दिया। क्यों किसी के आधीन रहूँ ? मेरे स्वभाव में जब सुख की लालसा है तब दुःख किसलिए सहन करूँ ? मैं भी जीवित प्राणी हूँ। युवावस्था का गर्म रक्त मेरे शरीर में भी दौड़ता है। किसलिए मैं आनन्द न करूँ ? हाँ मुझे कुलटा के समान आचरण नहीं करना है; किन्तु विवाह क्यों न करूँ ?'

'विवाह करने वाला कोई मिला ?'

'महाराज, मैं उसी की खोज में हूँ। एक दुष्ट ने मुझे फँसाकर पथ-भ्रष्ट कर दिया। कोई चिन्ता नहीं, दुनिया बहुत बड़ी है। अब भी कोई मिल जायगा जो मेरी इच्छाओं की पूर्ति करेगा। उसी के लिए तो घर-बार छोड़ कर भटकती फिर रही हूँ मुझे और कुछ नहीं चाहिए—केवल सुख से, नीतिपूर्वक घर बसा लेने दीजिये।'

'बेटी ! यह तेरा भ्रम है। इस संसार में तुझे कोई नहीं मिल सकता।'

'क्यों नहीं मिलेगा ?'

'अपने समाज की रचना विचित्र है। देख ! यदि कुछ समय तक मेरे कथनानुसार चलने का प्रयत्न करे तो तेरी आकुलता दूर हो सकती है।' महात्मा ने कहा।

'किस प्रकार ?'

'सुख-दुःख यह मन की भ्रमणा मात्र है।'

'किन्तु यह मन मारा कैसे जाय ?'

'सदुपदेश से, सत्संग से।'

'दसवर्ष से बहुत कुछ प्रयत्न करने पर भी फल कुछ नहीं हुआ।'

'होगा ! संसार में जब तक मनुष्य रहता है तभी तक वह दुःखी रहता है। संसार के तीर पर जाकर खड़ा हुआ कि वह सब कुछ भूल जाता है।'

'किन्तु यह होगा कैसे ?'

'रास्ता मैं बताऊँगा।'

'आप तो समर्थ हैं; किन्तु मेरा मन संसारी है, लिप्सा वाला है। आपका उपदेश निरर्थक न हो जाय ?'

महाराज जरा हँसे।

'बेटी ! जल्दी करने की जरूरत नहीं है। तू किसके साथ बातें कर रही है, इसका तुझे ज्ञान नहीं है। बाहर से लोग आते हैं, प्रवचन सुनते हैं, और चले जाते है किन्तु मेरे प्रभाव का ज्ञान किसी को नहीं है। तू संसारी है, जल्दबाज है, दुःखी है ! मैं योगी हूँ, आनन्दस्वरूप हूँ। थोड़े ही दिन में तू सुखी और सन्तुष्ट हो जायगी। तुझ में बुद्धि और साहस है तुझ जैसी स्त्रियाँ बहुत कम हैं। तू असाध्य को भी साध्य बना सकेगी।'

महात्मा का वाक्-चातुर्यपूर्ण प्रवचन चलता जाता था। उनकी आवाज कभी गम्भीर और कभी मृदु हो जाती थी। उनकी आँखें पुनः निश्चल हो गईं। मणि पहिले ही की तरह फिर अचेत होने लगी। ऐसा मालूम हुआ वह मूर्च्छित हो जायगी। उसका माथा घूमने लगा।

उसे महात्मा की मूर्त्ति अधिक तेजस्वी और लम्बी-चौड़ी मालूम हुई। उसे उनकी आँखों में अखिल विश्व का तेज समाया हुआ मालूम पड़ने लगा।

मणि से वह तेज असह्य हो गया। उसने अपनी आँखें मींच लीं, वह दो क्षण मूर्च्छित रही। उसके कान में महात्मा का शान्त प्रश्न सुनाई दिया। वह पुनः होश में आ गई।

'तेरे साथ कौन है ?'

मणि ने आँखें खोल कर देखा। महात्मा ज्यों-के-त्यों बैठे हुए थे।

'मीठा कुँआ के पटेल और तलाटी।'

'मोहन !'

'जी हाँ !' कहकर पार्षद ने दरवाजा खोला।

'जोरा भगत तथा उनके साथी को भेजो !'

'जी अच्छा !'

तुरन्त मोघाराम और जोरा भगत ने आकर साष्टांग प्रणाम किया।

'भगत ! इस महिला की व्यथा मैं समझ गया हूँ। इसे यहीं छोड़ जाओ। धीरे-धीरे इसका दुःख दूर हो जायगा। मोहन ! इस महिला को बगल के कमरे में स्थान दो।'

सबने झुककर पदरज ली। महाराज ने आशीर्वाद दिया और सब लोग

बाहर निकल आये। मोहन दूसरे लोगों को प्रवेश कराने के लिए घूमा।

'बेटी!' जोरा भगत ने कहा, 'मैंने क्या कहा था? महाराज तो बड़े पहुँचे हुए हैं। काम पड़ने पर मुझे जरूर बुला लेना। यहाँ किसी बात का अंदेशा तो नहीं है, किन्तु…'

'भगत काका! मैं व्यर्थ आपको क्यों कष्ट दूँ? मेरी सुरेखा का ख्याल रखना और चौदह वर्ष के पहले उसका विवाह मत करना।'

'बहुत अच्छा बेटी! बहुत अच्छा।'

'यदि मेरी आवश्यकता पड़े तो मेरा भैरवफलिया में भी घर है।'

'काका! मेरे भाग्य में अकेले ही रोना बदा है। यदि हो सका तो मिलूंगी नहीं तो राम राम!' मणि की आंखों में आंसू भर आए।

मोहन ने आकर कहा—'चलिये श्रीमती जी।'

'हाँ भाई!' कहकर मणि मुड़ी और बगल के एक कमरे में चली गई।

: ६ :

जीवन के नाटक का मानो दूसरा अंक आरम्भ हुआ हो इस प्रकार मणि इस नवीन घर में आई। उसके मन में अपने पुराने जीवन को भुलाकर नया जीवन प्रारम्भ करने की उत्कृष्ट इच्छा थी, जिससे एक प्रकार से यह प्रबन्ध उसे कुछ जँचा। यदि दो-तीन महीना यहां बिना किसी विघ्न-बाधा के रह सकूं तो अवश्य ही मेरी चिन्ता दूर हो जायगी। ऐसा उसके मन में पूर्ण निश्चय हो गया। महात्मा विद्वान् तेजस्वी पुरुष हैं। क्या उनके पवित्र आश्रम में रहने से सुख नहीं मिलेगा? महात्मा के व्यक्तित्व के जादू ने उस पर अपना ऐसा प्रभाव डाला था, उनकी मूर्ति जबकि उन्होंने अन्तिम बार सम्बोधन किया उस समय ऐसी प्रभावशाली प्रतीत हुई थी कि वह अब भी उसकी आंखों के सामने नाच रही थी। महात्मा को फिर देखने की उसे उत्कण्ठा हो रही थी।

इस कमरे में आकर उसने उसकी बनावट देखी। कमरा सादा किंतु सुन्दर

था और इधर-उधर दो-एक चांदी के पीढ़े पड़े हुए थे। मणि एक पर बैठकर अपने भविष्य पर विचार करने लगी।

थोड़ी देर बाद सिर ऊपर उठा कर उसने इधर-उधर देखा।

सामने एक बड़ा शीशा लगा हुआ था जिसमें अपना चेहरा देखने की उसे इच्छा हुई। अतः उठकर उसके सामने वह जाकर खड़ी हो गई। उसके माथे पर छोटे-छोटे बाल निकल रहे थे। बहुत दिन पश्चात् उसने अपनी आकृति देखी थी। देखकर शर्माती हुई वह कुछ हँसी। उसका सुन्दर मुख कुछ सूख गया था और सिर पर काले घुंघराले बाल अद्भुत शोभा दे रहे थे। उसके गर्व का ठिकाना नहीं रहा। अपना रूप देखकर वह हँसी।

शीशे को देखकर वह घबड़ाई। शीशे की सफेद सतह पर एक काला दाग-सा दिखाई देता था जो कभी-कभी पारदर्शक हो जाता था। कुछ देर तक देखने के पश्चात् मणि की समझ में आ गया। शीशे के पीछे कोई खड़ा था जो पीछे से जहाँ पर कलई छूट गई थी देख रहा था। मणि ने उसे आने का संकेत किया। पीछे से वह व्यक्ति हट गया और कुछ ही क्षण बाद शीशा हटा। वह शीशा दरवाजे पर जड़ा हुआ था जिससे उसके हटते ही दरवाजा खुल गया।

मणि की समझ में नहीं आया कि क्या करे। वह पीछे हटी। दरवाजे में से एक स्त्री निकली। उसके मुख पर रूप, स्वस्थता, यौवन और लावण्य स्पष्ट दिखाई दे रहा था। मणि तो उसे देखकर दंग रह गई। किंतु नवीना स्त्री की आँखों से घबराहट टपकती थी। क्षोभ से चारों ओर उसने आँखें दौड़ाई और दांत पीसकर धीरे से कहा—'यहां से भाग जा!'

मणि स्वभाव से चंचल थी। इसके पूर्व कि नवीन स्त्री की आकृति शीशे के पीछे गायब हो, उसने शीशे को पकड़ कर अपनी ओर खींच लिया। दरवाजा थोड़ा और खुल गया। मणि ने उस रूपवती स्त्री को तेजी से सीधे संकरी गली में वापस भागते हुए देखा। उसके हाथ से दरवाजा छूट गया। दरवाजे में स्प्रिंग लगा हुआ था जिससे वह अपने स्थान पर जाकर बैठ गया।

मणि विचार में मग्न स्वप्नवत् ज्यों-की-त्यों खड़ी रह गई। उस स्त्री की सुन्दरता, उसके शब्द और उसके अन्तर्ध्यान होने के कारण पर विचार करने लगी।

'भाग जा !' तब क्या कुछ छल है ? मणि हँसी। संसार में उसे लज्जा नहीं थी। कोई सगा-सम्बन्धी नहीं था। तब कोई दगा क्यों देगा ? वह बिना किसी प्रकार की घबराहट के खड़ी रही। साथ ही भेद को जानने की उत्कंठा भी हुई।

वह पुनः उस को देखने लगी, किन्तु उसमें से अब आर-पार दिखाई दे रहा था। जिस दरवाजे से वह आई थी वह खुला और महात्मा भीतर आये। उनकी आँखें हँस रही थीं।

'बेटी तेरा नाम क्या है ?'

'मणि।'

महात्मा के कपाल पर जरा सिकुड़न आई जो तुरन्त दूर हो गई।

'ठीक है ! चल, जिस कमरे में तुझे रहना है उसे बता दूं। लेकिन देखो, मेरे यहाँ एक बहुत कड़ा नियम है कि जो कोई विचित्र बातें दिखाई दें उस सम्बन्ध में कभी कुछ पूछताछ मत करना। यहाँ अनेकों रोगों के रोगी रहते हैं।'

'जैसी आपकी आज्ञा !' मणि की आँख के सामने उस स्त्री का चित्र नाच गया। वह महात्मा के पीछे-पीछे भीतर चली।

: ७ :

शहर के मध्य भाग के मुख्य बाजार में लगा हुआ एक बड़ा साइनबोर्ड लोगों के ध्यान को अपनी ओर आकृष्ट कर रहा था।

उस पर सफेद अक्षरों में लिखा हुआ था—मदनलाल मारुति बी० ए०, एल० एल० बी०, एडवोकेट हाईकोर्ट। इस मकान में विद्वान् वकील का आफिस था।

आफिस के कमरे में एक बड़ा टेबुल पड़ा हुआ था। उस पर कागज के पुलिन्दे रखे हुए थे। वकील साहब ने अभी ही नाश्ता किया था; क्योंकि तश्तरी और बिस्कुट का चिकना कागज टेबुल के एक कोने पर पड़ा हुआ था। आज

रविवार था, जिससे इस मन्दिर के देवता टेबुल के पीछे नाक पर चश्मा चढ़ाये हुए, मुंह में सिगरेट दबाए, टेबुल पर दोनों पैर रखकर हाथ में कापी लिए हुए अपनी आमदनी-खर्च का हिसाब देख रहे थे। हिसाब अत्यधिक सन्तोषजनक मालूम पड़ता था, जिससे वकील साहब के मुंह पर मुस्कराहट दिखाई पड़ रही थी। टेबुल पर से पैर उतार कर उस पर हाथ पटकते हुए वह बोल उठे—'खूब ! यदि इसी प्रकार चले तब तो बन्दे का बेड़ा पार हो जाय।'

उनका शरीर ठिगना, स्थूल और काला था। आंखें बड़ी, मुंह जरा चौड़ा भद्दा-सा था। आवाज बुलन्द, नाक घिसते-घिसते बैठी हुई, लम्बी इतनी कि ओंठ को छू रही थी। अपनी बड़ी-बड़ी मूछों को मरोड़-मरोड़ कर कैसर की मूछों के समान बनाने के प्रयत्न में उसका एक कोना ऊपर उठ गया था जबकि दूसरा कोना टस से मस नहीं होता था; जिससे ऐसा मालूम होता था कि नाटक के किसी पात्र ने झूठी मूछें लगा रक्खी हों जिसका एक कोना खिंच जाने से नीचे गिर गया हो।

नवीन शिक्षा एवं नवीन कहे जाने वाले जोश—इन दोनों के ये ठीक-ठीक प्रतिमूर्ति थे। बम्बई के कालेज में जब ये अध्ययन कर रहे थे तभी से अपनी महत्वाकांक्षाओं की पूर्ति के साधन एकत्र करते आ रहे हैं। कभी ये बम्बई के प्रार्थना-समाज में होने वाले भाषणों के नित्य श्रोता थे, एवं रानाडे, तेलंग, चन्दावरकर आदि द्वारा उच्चारित यथेष्ट सुधार सूत्रों को इन्होंने कण्ठस्थ कर लिया था। साथ ही ये यह भी मानते थे कि अपने गिरे हुए सांसारिक-जीवन को भूतकाल के अँग्रेजी लेखकों के परामर्श के अनुसार पाश्चात्य सभ्यता के समान बनाना आवश्यक है। इनकी बातचीत से यह भी तुरन्त ज्ञात हो जाता था कि जीवन-सुधार की अनेक संस्थाओं के मंत्रियों पर अनुग्रह करने की सदिच्छा से बिना वेतन कार्य करने की अभिलाषा भी ये कई बार कर चुके हैं और और परिणाम स्वरूप अपने सहपाठियों के लोक से उठकर नेताओं के स्वर्ग में पहुँच जाने का अधिकार भी इन्होंने प्राप्त कर ही लिया था।

स्वयं पुराने विचारानुसार पारिवारिक जीवन बिताने वाली स्त्री के पति होते हुए भी इनके पास प्रति दिन मुसलमानी डबल रोटी पहुँचती थी। यद्यपि इन्होंने पुराने विचारों की अन्ध श्रद्धा छोड़ दी थी किन्तु नये विचार की उदारता

अथवा निःस्वार्थता ग्रहण नहीं की थी। इनकी पाल रहित जीवन-नौका पवन के झोंके से इधर-उधर डगमगाती फिरती थी।

वकालत पास करने के पश्चात् गरीबी एवं उच्च आकांक्षाओं के बीच में जकड़े जाकर बम्बई हाईकोर्ट के न्यायाधीश पर अपनी बुद्धिमत्ता की छाप बैठा न सकने के कारण यहीं अपने घर पर बड़ा साइनबोर्ड लगा कर रहेमू नामक छोकरे को 'बॉय' बनाकर आपने अपना कार्य प्रारम्भ किया। वकालत चल गई, अतः सरकारी वकील एवं नगर-सुधारक—इन दोनों पदों की प्राप्ति के लिए मारुति साहब गिद्ध दृष्टि लगाये हुए बैठे थे।

मिस्टर मारुति उठकर खिड़की की ओर गये और दो-चार व्यापारियों को मकान की तरफ आते हुए देखकर सोचने लगे कि ये मुकदमेबाज हैं या नहीं किंतु इतने ही में वे लोग इनके मकान के दरवाजे के पास से होकर निकल गये और प्रश्न का निर्णय गहरे निःश्वास के साथ व्यर्थ ही रह गया। इसके पश्चात् एक गृहस्थ को दरवाजे में घुसता हुआ देखकर मिस्टर मारुति चौंक उठे। तुरंत पीछे हटे और बिजली के समान आकर टेबुल के पास कुर्सी पर बैठ गये। दो-चार फाइलों को टेबुल पर फैला लिया और एक लॉ रिपोर्ट उठा कर पन्ना उलटने लगे। सिर पर हाथ रखकर, धप्प से कुर्सी पर बैठ गये और भृकुटी चढ़ाकर इस प्रकार उस पर आँख गड़ा कर पढ़ने लगे, मानो बड़े ध्यान से मनन कर रहे हों. उस मनुष्य ने दरवाजे के पास आकर पूछा—'क्या मैं भीतर आ सकता हूँ?'

मारुति ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वे दिखावटी रीति से उस रिपोर्ट में ही आँख गड़ाये हुए बैठे रहे। आगन्तुकने पुनः अधिक जोर से पूछा।

मारुति मानो इस प्रश्न से चौंक उठे हों इस प्रकार कपाल पर और भी बल डाल कर सिर ऊपर उठाकर बोले—'कौन··· ओहो डाक्टर, आप हैं! धन्य भाग!'

'हा, हा, हा!' करते हुए डाक्टर धनेशचन्द्र सर्पगति से भीतर आये। डाक्टर भी मारुति का समवयस्क किंतु सूखा, चिन्ताग्रस्त, घबराया हुआ, थोड़ी कमाई पर बड़ा आडम्बर करने वाला, कुछ उन्नतिशील एवं जल्दी ही आवेश में आ जाने वाला व्यक्ति था।

'हलो मिस्टर मारुति! तुम्हें तो दिन-रात जब देखो तब काम-ही-काम

रहता है। नौन्सेन्स ! जरा दूसरा काम-काज भी देखना-सुनना चाहिए। आज रविवार के दिन भी यह…'

'क्या करूँ ?' मि० मारुति ने लॉ रिपोर्ट को दूर रखने का आडम्बर रचते हुए कहा, 'मेरा तो तुम्हारी तरह दो-चार पानी की बोतलें भर कर रख लेने से काम चलेगा नहीं ! मेरा काम बड़ी मगजपच्ची का है।'

'बस-बस, रहने दो ! इस समय मैं बहुत ही जरूरी काम से आया हूँ। समस्त प्रजा के लाभ की बात है। अपने शहर में भी तो कुछ करना चाहिए।' डाक्टर धनेशचन्द्र इस प्रकार बोले मानो शब्द स्वयं मुँह से उछल-उछल कर निकले पड़ते हों।

'मेरा भी यही मतलब है। किंतु दोस्त ! करो तो कोई ऐसा काम करो जिससे स्वार्थ और परमार्थ दोनों सधें। केवल परमार्थ में मुझे श्रद्धा नहीं रही।

'जाओ, हटो ! यह क्या बक रहे हो ? कोई सुन ले तो क्या कहेगा ? पहले तुम्हें रुपये कमाने की इच्छा थी वह तो पूरी हो गई। अब तो कुछ परमार्थ करना चाहिए।'

'हा, हा, हा, !' कुर्सी पर उछल कर बैठते हुए मारुति ने कहा, 'डाक्टर ! ये सब भाषण तो प्लेटफार्म के लिए हैं। अब साफ-साफ बात कहो ; नहीं तो रात हो जायगी।'

'बहुत ठीक ! किंतु अगर कोई हमारी बातें सुन लेगा तो सब काम ही बिगड़ जायगा।'

'कौन सुनेगा ? यह बिल्कुल प्राइवेट रूम है। देखो डाक्टर ! अब हमें कोई काम तुरंत ही शुरू कर देना चाहिए।'

'बेशक ! इसी से मैंने विचार किया है कि एक 'जिला एसोसिएशन' कायम किया जाय। आजकल इसकी विशेष आवश्यकता मालूम होती है तरफड़दास से भी कहता आया हूँ।'

'कैसे पागल हो गये हो, डाक्टर ! तुम्हें तो सरकार की परवाह नहीं है किन्तु मुझे तो……'

'तुम्हें भी क्या मुन्सिफ होना है ? भाग लो पॉलिटिक्स में ; कांग्रेस में सम्मिलित हुए बिना नहीं चलने का।'

'क्षमा करो ! छः महीने में सरकारी वकील की जगह खाली होने वाली है। हाँ, इसके अतिरिक्त और दूसरी कोई तरकीब हो तो मैं तैयार हूँ। इसमें तो काम किए बिना ही आँखों में गड़ने लगूँगा ? यदि ऐसा ही है तो एक समाज-उद्धार सभा कायम की जाय। इससे नाम कमाने का अच्छा अवसर हाथ लगेगा।'

'जाओ ! बस ! यह भी कोई बात हुई ? तुम वकीलों को तो केवल बातें करनी आती हैं। वास्तविक काम करना चाहिए।'

'वास्तविक को जाने दो। अभी तो केवल पैसा कमाने में ही समय लगाना चाहिये।' वकील साहब ने उत्तर दिया !

'नहीं, देखो मेरा सुझाव यह है कि एक अनाथाश्रम खोला जाय इसमें हम लोगों को भी सुख होगा और यश भी मिलेगा। क्यों समझे ?' डाक्टर ने कहा।

'जी हाँ ! जिससे चन्दा माँगने के बहाने तुम्हारे रोगियों की संख्या बढ़े।'

'तो क्या समाज-उद्धार सभा बनाकर तुम्हें भाषण करने के लिए स्थान दिया जाय ?'

'अवश्य ! नहीं तो बेकार यह काम कोई क्यों करेगा ?'

'नहीं, यह नहीं हो सकता। ऐसी व्यर्थ की संस्थाओं को तो मैं किसी प्रकार की सहायता नहीं दे सकता।'

'तब कृपानिधान कौन-सा सत्यानाश हो जायगा ?' कहकर मारुति ने अपनी दोनों टाँगें टेबुल पर लम्बी फैला दीं।

'किसका सत्यनाश हो गया ?' कहते हुए एक तीसरे सज्जन आए।

'कौन तरफड़दास ?' दोनों एक साथ बोल उठे।

'जी हाँ ! खाकसार हाजिर है।' सिर झुकाते हुए तरफड़दास ने पूछा, 'क्यों, क्या बातें हो रही हैं ?'

'हमारे बीच में झगड़ा चल रहा है।' डाक्टर ने कहा। 'मैं कहता हूँ कि अनाथाश्रम खोला जाय और यह कह रहे हैं कि समाज-उद्धार सभा की स्थापना की जाय। इसमें समझौता होने की कोई गुंजाइश नहीं है। हमारी सब योजना बेकार हो गई। मिस्टर मारुति दिनों-दिन अधिक लालची होते चले जा रहे हैं।'

'नौन्सेन्स डाक्टर !' मिस्टर तरफड़दास कुर्सी के बदले मेज के एक कोने पर बैठते हुए बोले, 'दुनिया में स्वार्थ जैसा तो पदार्थ ही मेरे देखने में नहीं

आता। मैं भोजन करता हूँ तो वह भी संसार के लाभ के लिए ! किन्तु तुम्हारा झगड़ा क्या है यह तो बताओ।'

'बोलो डाक्टर ! मिस्टर तरफड़दास चौथी राज्यसत्ता के प्रतिनिधि हैं।'

'क्यों भाई, यह क्या ?' तरफड़दास ने पूछा 'मेरा ज्ञान तो अपने कार्यालय के बाहर गया ही नहीं ?'

'आपके ज्ञान के लिए धन्यवाद ! समाचार-पत्र को चौथी राज्य-सत्ता कहते हैं।'

'जी, आगे कहिये।'

'वही जो डाक्टर ने कहा है।'

'उसका मार्ग बताऊँ ?'

'क्या ?' डाक्टर ने पूछा।

'एक समाज-उद्धार-सभा की स्थापना करो जिसके अन्तर्गत एक अनाथाश्रम खोलो, कहो ठीक है ?'

'बहुत ठीक, मेरे मित्र तरफड़ीया !'

'खबरदार मारुति ! बेवक्त का मजाक मुझे अच्छा नहीं लगता।'

'तब यही ठीक रहा ! क्यों मिस्टर धनेशचन्द्र, तुम क्या कहते हो ?'

'बात तो ठीक है, किन्तु वास्तविक काम कौन-सा करोगे ?'

'ओहो ! यह बात है ?' तरफड़दास ने कहा,'समाज-उद्धार-सभा की तरफ से मेरे 'मार्त्तण्ड-प्रकाश' में एक विज्ञापन दो।'

'क्या ?'

'कि एक अच्छे घर की रूपवती विधवा की आवश्यकता है, विधुर एक सम्भ्रान्त कुल के युवक हैं।'

'बाद में यदि कोई आवेदन पत्र भेजे तो ?' डाक्टर ने पूछा।

'अरे, ऐसा निठल्ला कौन बैठा है ? अच्छे कुल की कोई विधवा आवेदन पत्र भेजेगी ही नहीं और यदि कोई भेजे तो वह अच्छे कुल की नहीं ?'

'शाबाश ! शाबाश' मेज पर हाथ पटकते हुए मारुति ने कहा।

'यदि सचमुच कोई आ भी जाय, तो उसके लिए हमारे डाक्टर तैयार हैं।'

'कौन ? मैं !' चिल्लाते हुए डाक्टर धनेशचन्द्रने कहा, 'मैं विधवा के साथ

विवाह करूँगा ?'

'वास्तविक काम डाक्टर !' मारुति ने कहा ।

'चूल्हे में गया तुम्हारा वास्तविक काम ! किन्तु कोई बात नहीं । कोई आ गया तो मण्डली में से किसी को खोज निकालूंगा । तुम अपने नये अंक में निकाल दो ।'

'हां, किन्तु पहले मीटिंग करके 'समाज-उद्धार-सभा' की स्थापना करनी पड़ेगी । सब काम नियमानुसार करना होगा । साथ ही समाचार-पत्र में विज्ञापन के लिए मुझे पैसा भी चाहिये ।

'बिल्कुल ठीक बात है ।' मि० मारुति ने कहा, 'किन्तु देखो भाई, मैं और डाक्टर सहमंत्री रहेंगे ।'

'मैं खजान्ची रहूँगा ।' तरफड़दास ने कहा, 'मार्त्तण्ड-प्रकाश को इस समय रुपये की बहुत आवश्यकता है ।'

'चलो, निश्चित हुआ ।' डाक्टर ने कहा ।

'और सभापति कौन बनेगा ?'

'रायसाहब गम्भीरलाल, क्यों कैसी रही ?' डाक्टर ने पूछा ।

'हां, यह भी ठीक है । इन्होंने मुझे क्लेक्टर साहब के पास ले जाने का वचन दिया है ।'

मारुति ने कहा, 'चलो निश्चय बहुत अच्छा रहा । 'बॉय ! बॉय !'

बड़ी कठिनता से सामने वाले की दूकान पर बैठकर बीड़ी पीता हुआ एक छोकरा, जो मारुति द्वारा 'बॉय' की पदवी धारण करता था बुलाया गया और उसी के द्वारा निकटस्थ होटल वाले को समाज-उद्धारिणी सभा के जन्म-महोत्सव के उपलक्ष्य की आवश्यकीय भोज सामग्री प्रस्तुत करके भेजने का तीनों ने आदेश दिया ।

'इन होटलों से कैसा आराम है !' डाक्टर ने कहा ।

'हां जी ! यदि मेरा वश चले तो अपनी सभा का सभापति रेवाशंकर होटल वाले को बनाऊं । वे बहुत वास्तविक काम करने वाले हैं ।' मारुति ने कहा ।

'खबरदार ! अगर बात का मजाक उड़ाया तो !' डाक्टर ने कहा ।

: ८ :

महायोगी ने मणि को अन्दर ले जाकर एक दरबान को सौंपते हुए कहा, 'रघुनाथ इन महिला को बारह नम्बर का कमरा दिया गया है। इन्हें वहाँ पहुँचा दे।'

'जैसी आज्ञा महाराज की।' कहकर रघुनाथ मणि को ले गया। वह नौकर जरा मसखरा मालूम होता था। महाराज का गुणगान करता हुआ आगे बढ़ा।

मणि को एक बात बहुत विचित्र मालूम हुई। घर की बनावट ऐसी थी कि जिस मार्ग से वह जा रही थी उस ओर किसी कमरे का भी दरवाजा नहीं पड़ता था। बीच में एक सीढ़ी आई जिसे दिखाते हुए रघुनाथ ने कहा—'यहाँ से नीचे जाने पर भक्तों के पढ़ने के लिए एक पुस्तकालय मिलेगा, उसके दूसरी ओर भक्तों का निवास-स्थान है।'

'यहाँ कौन रहता है ?'

'यहाँ तो बहुत भक्त रहते हैं। यह आपका बड़ा भाग्य है जो एकदम से महाराज ने यहाँ ला रखा है। महाराज की कृपा चाहिए।' कह कर वह नौकर हँसने लगा।

'किन्तु यहाँ तो कोई दिखाई नहीं पड़ता ?'

'वह दिखाई कैसे दें ? सभी बड़े सिद्ध और योगी हैं। कोई किसी से मिलता-जुलता नहीं है।'

यह सुनकर मणि को आनन्द हुआ। उसने मन-ही-मन महात्मा का बड़ा उपकार माना। उसे एकान्त में ही रहना पसन्द था। उसकी आँखों के सामने पहले के अनुभव के चित्र आये जिससे उसने एक ठण्डी साँस ली।

जो कमरा मणि को दिया गया था वह छोटा होने पर भी हवादार और सुन्दर था। उसमें सामान कम परन्तु अच्छा था। पास ही में छोटी कोठरी थी। उसमें रसोई बनाने का प्रबन्ध था।

'क्या मुझे यहीं भोजन बनाना होगा ?'

'श्रीमती जी ! महाराज के जो बड़े भक्त होते हैं वे सब इस मकान में

उनके चरणारविन्द के निकट रहते हैं; वे सभी संयमी होते हैं। फलस्वरूप दूसरे के हाथ का बनाया हुआ भोजन करना वह पसन्द नहीं करते। दूसरी ओर सामान्य भक्त जनों के लिए एकत्र भोजन बनाने का भी प्रबन्ध है।'

'ठीक है, मैं निश्चिन्त हूँ। ओहो!' दरवाजा खोलकर मणि बोली, 'इसके पीछे तो एक छोटी-सी अलग बगिया भी है?'

'जी हाँ!' कहकर रघुनाथ वहाँ से चला गया।

'सुख का स्वाद लेने के लिए मणि दरवाजे से पीठ लगा कर बैठ गई। जन्म लेने के पश्चात् आज ही पहले-पहल ऐसा स्वर्गीय आनन्द उसे प्राप्त हुआ था। वह हवा में बैठी रही। साथ ही धीमे स्वर में कुछ गाने भी लगी। सुरेखा की याद आने पर धीरे-धीरे गाना बंद कर वह कुछ सोच में पड़ गई। यदि महाराज आज्ञा दें तो उसे भी मँगवा कर अपने पास रखने का विचार आया। आँखों के सामने महाराज की मूर्त्ति आ खड़ी हुई। वह बड़ी ही आकर्षक लगी। पल भर में उसने उस मूर्त्ति को मन में से निकाल बाहर करने का यत्न किया किन्तु मन मानो किसी की आज्ञा के वशीभूत होकर एक ही प्रवाह में बहता हो। इसी प्रकार उस मूर्त्ति को याद करने में ही ध्यानस्थ रहा। धीरे-धीरे वह स्तब्ध होकर दरवाजे के बाहर देखने लगी। उसे वहाँ पर सदेह महाराज खड़े हों ऐसा दिखाई देने लगा फिर भी यह स्वप्नवत् प्रतीत होता था। आधे घंटे तक मणि की यह स्थिति बनी रही।

इसके पश्चात् ही मन एकदम जैसे स्वतन्त्र हो गया हो ऐसा ज्ञान हुआ मानो स्वप्नावस्था जाती रही। उसने अपने आसपास चारों ओर देखा—वह अकेली थी। उसका मन ऐसा निर्बल हो गया है यह उसे आज पहली बार ज्ञात हुआ। उठकर उसने इधर-उधर कुछ चहलकदमी की। थोड़ी ही देर पश्चात् रघुनाथ भोजन बनाने की सामग्री ले आया।

'रघुनाथ! महाराज का नाम क्या है?'

'श्रीमती जी! उनका असली नाम क्या है यह कौन जाने? बालाराम या ऐसा ही कुछ था। क्या आप पढ़-लिख सकती हैं?'

'हाँ'

'महाराज ने जो पुस्तक आप चाहें लाकर आपको देने के लिए आज्ञा

ही है।'

'इस पुस्तकालय में से ?'

'जी हाँ, चाहें तो आप स्वयं ही जाकर अपने पसन्द की पुस्तक ले आइयेगा।'

'नहीं, नहीं तुम्हीं ले आना। जो लाओगे उसी से ही काम चल जायगा।'

भोजन बना, खा-पीकर मणि सो गई। संध्या समय वह भजन में गई। रात्रि में आरती में उसने भाग लिया और फिर अपने कमरे में आ गई।

वह सोने जा रही थी कि फिर उसका मन अस्थिर होकर महाराज की मूर्त्ति की ओर खिचता गया। प्रातःकाल जो दशा हुई थी उसी की पुनरावृत्ति हुई। मणि ने बड़ी दृढ़ता के साथ उस असर को दूर करने का यत्न किया किन्तु उस अद्भुत कांतिवान् महात्मा की भव्य-मूर्ति इस प्रकार उसके मन में रमी रही मानो वह सामने उपस्थित हो। थोड़े ही समय बाद वह मूर्त्ति एकाएक अदृश्य हो गई और उसका मन पुनः इससे मुक्त हो गया।

महाराज के प्रति उसे कुछ घृणा हुई। साथ ही अपने निर्बल मन को भी वह धिक्कारने लगी। इस प्रकार वह उसका क्यों चिन्तन करती है ? रात्रि में स्वप्न में भी उसे महाराज दिखाई दिये।

दूसरे दिन भी मणि ने इसी प्रकार अपना जीवन प्रारम्भ किया। प्रातः प्रवचन में, संध्या समय भजन में, और रात्रि को आरती में वह महाराज को देखती। उनके शब्द सुनती और दिन भर पुस्तकालय की पुस्तकों का उपयोग करती। प्रातःकाल महाराज रघुनाथ द्वारा कुछ गोलियाँ और मिश्री प्रसाद के तार पर भेजते थे जिसे वह खाती थी। इसके अतिरिक्त महाराज कुछ भी ध्यान उसकी ओर देते हों ऐसा मालूम नहीं होता था।

मणि को प्रायः उस स्त्री के विषय में सब बातें जानने की उत्सुकता होती थी किन्तु प्रवचन अथवा भजन के समय वह दिखाई नहीं देती थी और यदि वह वहाँ उपस्थित भी रहती हो तो उसे पता नहीं लगता था क्योंकि वहाँ बहुत-सी स्त्रियाँ मुंह पर आवरण डाल कर बैठी रहती थीं। उनमें वह भी एक हो सकती थी। उस कमरे में भी वह कई बार गई किन्तु शीशे वाले दरवाजे को उसने कभी हटते हुए नहीं देखा और साथ में सदैव रघुनाथ के

रहने से शीशे में से देखने का उसे अवसर भी न मिलता था।

दो-तीन दिन में मणि के शरीर में आश्चर्यजनक परिवर्तन होने लगा। रग-रग में खून दौड़ने लगा। पीलापन दूर होकर लालिमा आने लगी। उसके अंग-अंग में सौन्दर्य की छटा उदय होने लगी। उसे भी बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराज द्वारा भेजे जाने वाले प्रसाद में कुछ औषधि होने का सन्देह हुआ किन्तु इस नव-जीवन में उसे कुछ ऐसा आनन्द मिल रहा था कि उस ओर उसने विशेष ध्यान नहीं दिया। समस्त दिन भजन और पुस्तक पठन में बिताने से उसके मन की शांति भी बढ़ी। दस ही दिन में उसकी मानसिक शक्ति की मर्यादा बहुत कुछ बढ़ गई।

: ६ :

लगभग पाँच बजे शहर के प्रसिद्ध पुस्तकालय के हॉल में कुर्सियाँ लगाकर मिस्टर तरफड़दास और डाक्टर घनेश्चन्द्र अधीर हो सभाजनों की बाट जोहते हुए बैठे थे। डाक्टर साहब तो बिल्कुल ही अधीर होकर बार-बार उठकर इधर-उधर चहलकदमी करने लगते थे। मुख्य द्वार के पास जाकर खड़े होते थे और फिर तरफड़दास की ओर मुड़ते थे।

'तरफड़दास ! आज जो प्रहसन होने वाला है, उसमें कोई आया क्यों नहीं ? विज्ञापन तो तुमने ठीक-ठीक दिया था न ?' पच्चीसवीं बार डाक्टर ने पूछा।

'तब क्या मजाक किया था ? यदि कोई नहीं आया तो फजीहत होगी तुम्हारी, मेरा क्या है ?'

'लोगों को भी कैसी समझ है ? सुधार के लिए प्रयत्न किया जाता है तो लोग सुधरना नहीं चाहते। परन्तु यह तो बताओ कि अब किया क्या जाय ? मैं पाठशाला के हेडमास्टर से कह आया हूँ वह निश्चय ही कुछ लड़कों को साथ लेकर ही आते होंगे।'

'तब कोई आता क्यों नहीं ? रायसाहब गम्भीरलाल तो आते ही होंगे, देखना मजा ।' यह कहकर तरफड़दास जरा हँसे ।

'और देखो वह मारुति भी अभी तक दिखाई नहीं देता । न मालूम कहाँ मुँह छिपाये बैठा हुआ है ? ऐसे समय में भी आलस्य !'

'साथ ही वर का बड़ा बाप बनने के लिए सदैव सबसे पहले तैयार रहता है । अच्छा, हार तो लाये हो न ?'

'हाँ, लेकिन इसका होगा भी क्या ? कोई आया तो है ही नहीं ।'

'लो ! एक सज्जन आ गए ।'

एक दस वर्ष का बालक, मुँह में धूल पोते हुए, एक हाथ में बाइसिकिल की टूटी हुई पहिया और दूसरे में उसे दौड़ाने के लिए बेंत लिए हुए आया ।

'हाँ, इसे तो मैं जानता हूँ—'मगन ! ओ मगन !'

'क्या है ?' बड़बड़ाता हुआ वह बालक आगे आकर खड़ा हो गया । उसने एक-दो बार दरवाजे की ओर देखा । वह मन में सोच रहा था कि अगर डाक्टर मारे अथवा धमकावे तो भागने में कुछ सुगमता मिल सकती है अथवा नहीं ?

'मगन ! तेरे सब संगी-साथी कहाँ हैं ?'

'कौन जाने ?' प्रश्न का कारण न समझ कर नकारात्मक उत्तर देना ही उसने उचित समझा ।

'सब को जहाँ हों वहाँ से बुला लाए तो एक पैसा दूँ !' तरफड़दास बीच में बोल उठे ।

'हाँ !' डाक्टर ने कहा, 'जा जितने लड़कों को ले आएगा उतने पैसे दूँगा, लेकिन जल्दी कर ।'

बालक उनकी ओर देखता रहा । खिलाड़ी लड़कों का मूल्य इतना बढ़ गया है यह देखकर उसके आश्चर्य का ठिकाना नहीं रहा । वह मुँह बाये वहीं खड़ा देखता रहा ।

'देख क्या रहा है ?' तरफड़दास ने एक हलकी चपत मारते हुए कहा, 'जा ले, यह एक पैसा पहले से दिये देता हूँ, दौड़कर जा !' इधर-उधर देखे बिना ही लड़का पैसा लेकर भागा ।

'डाक्टर ! क्या बजा है ?'

'पाँच बज कर बीस ।'

'तब क्या किया जाय । अच्छा, तुम यहाँ खड़े रहो, मैं अभी आता हूँ ।' तरफड़दास ने कहा ।

'अरे ! मुझे यहाँ क्या अकेला छोड़ जाओगे ?' डाक्टर ने कहा, 'तो मैं भी चला, मुझे क्या अपने लड़के का विवाह करना है ?'

'नहीं, बल्कि तुम्हें स्वयं अपना विवाह करना है न !' तरफड़दास ने उत्तर दिया, 'जरा ठहरो, मैं सामने होटल में से कुछ आदमियों को बुला लाऊँ ।'

यह कह तरफड़दास वहाँ से तेजी से चले गये । उनकी बुद्धि तेज थी । वे सामने के जलपान गृह में गये । एक कप चाय का आर्डर दिया । आसपास बैठे हुए लोगों पर एक दृष्टि डाली । लगभग दस-बारह मनुष्य भिन्न-भिन्न प्रकार की सामग्री का सदुपयोग कर रहे थे ।

'दोस्त गुमानसिंह ! मीटिंग में चलते हो क्या ?' बुलन्द आवाज में तरफड़दास ने एक व्यक्ति को संबोधित करते हुए कहा ।

उसने आइसक्रीम की प्याली में से सिर उठाकर ऊपर देखा ।

'कौन ? अधिपति साहब ! नहीं श्रीमान्, मुझ गरीब को मीटिंग से क्या सरोकार है ?

'किन्तु आज तो बड़ा मजा है ।'

'क्या ?'

'उस महायोगी महाराज का आज भण्डाफोड़ होने वाला है न !'

'हाँ ?' कहकर गुमान ने फिर दृष्टि उठाकर देखा । साथ ही वहाँ पर बैठे हुए सभी लोगों का ध्यान उस ओर आकृष्ट हुआ । वे भी कान लगाकर सुनने लगे ।

'हाँ, मिस्टर मदनलाल, मारुति और डाक्टर धनेशचन्द्र आज उसका सब भण्डाफोड़ करने वाले हैं । मैंने तो यह भी सुना है कि कोई विधवा आज भाषण करने वाली है ।'

'क्या कहते हो ?' कहते हुए एक-दो व्यक्ति टपाटप पैसा देकर अपना हिसाब चुकाने लगे ।

'नहीं बाबा ! मैं तो सरकारी नौकर हूँ,' गुमान ने अपना भय प्रकट करते हुए कहा, 'व्यर्थ यदि किसी को मालूम हो गया कि पब्लिक मीटिंग में गया था तो वेतन-वृद्धि रुक सकती है।'

'अरे पागल हो गये हो ? यह मीटिंग तो सरकार की तरफ से ही की गई है। स्वयं मामलतदार साहब इसके सभापति हैं।'

'ऐसा ? तब तो अवश्य जाऊँगा।'

'हाँ ! अवश्य जाना, ऐसी सभा फिर दस-बीस वर्ष तक देखने को भी न मिलेगी।' कहकर तरफड़दास वहाँ से चले।

वहाँ बैठे हुए व्यक्ति एक-दूसरे का मुँह ताकने लगे। सबके मन में उत्कण्ठा थी, यह स्पष्ट दिखाई दे रहा था। धीरे-धीरे सभी उठ गये और पुस्तकालय क सभा-भवन में गये। सभी की नजर हॉल में चारों तरफ तरफड़दास द्वारा कही हुई विधवा की खोज में थी किन्तु दिखाई कुछ भी न देने से लोगों को निराशा हुई; परन्तु उसे देखने की आशा से लोग धीरे-धीरे बैठ गये।

इससे पूर्व ही हेडमास्टर और मामलतदार साहब के कार्यालय के कार्यकर्त्तागण, जो अफसर को किसी भी प्रकार से प्रसन्न करने के लिए सदैव तत्पर रहते थे, आ गये। मगन ने भी अपना काम सफलतापूर्वक पूरा कर दिया था। आठ-दस लड़कों की महान सैनिक टुकड़ी एक-एक पैसा पाने की आशा से आकर पीछे बैठ गई थी। इस तरह सभा में तीस-पैंतीस व्यक्ति एकत्र हो गये। थोड़ी देर में मदनलाल मारुति कोट का बटन खोले, मुस्कराते हुए, बन्दरगाह में जैसे स्टीमर आता है उसी प्रकार आये। आकर उन्होंने वहाँ एकत्रित सब व्यक्तियों पर एक दृष्टि डाली। किसी को संकेत से, तो किसी को हास्य से, किसी को हाथ उठाकर तो किसी को सिर हिलाकर अभिवादन किया और सभापति के लिए रखी हुई कुर्सी के पास वाली कुर्सी पर जाकर जम गये। उन्होंने ऐसा ठाठ बनाया मानो यह सभा उन्हीं के सम्मानार्थ ही वहाँ एकत्रित हुई हो।

पौने छः बजे सभापति महोदय पधारे। राय साहब गम्भीरलाल ऊँचे कद, गौर वर्ण और भव्य कांति वाले व्यक्ति थे। उनका रौब और दबदबा शहर भर में था; साथ ही अपनी चिकनी-चुपड़ी मीठी बातों से उच्च अधिकारी वर्ग को

भी वह प्रसन्न रखते थे। इन्हीं कारणों से पैंतीस वर्ष की इस छोटी उम्र में ही उन्होंने अच्छा यश और उपाधि प्राप्त कर ली थी। लोगों की धारणा थी कि अभी वे और ऊँचा पद पावेंगे। उनके आते ही मगन के सेनादल को छोड़कर सभा के सभी लोग खड़े हो गये।

सभा का कार्यक्रम प्रारम्भ हुआ। हेडमास्टर ने सभापति महोदय से सभापति का पद ग्रहण करने की प्रार्थना की। अहलकारों ने अनुमोदन किया और गम्भीरलाल सभापति के आसन पर मुस्कराते हुए विराजमान हो गये। इसके बाद मदनलाल मारुति ने गम्भीर स्वर में भाषण प्रारम्भ किया। सभा करने का उद्देश्य सबको समझाया। इसी समय मगन और उसके एक साथी में कुछ कहा-सुनी होती हुई सुनाई दी, किन्तु तुरन्त तरफड़दास के वहाँ पहुँच जाने से वह विवाद शान्त हो गया। मारुति ने इसके बाद अपने समाज की दुर्दशा पर विवेचन किया, वास्तविक कदम न बढ़ाने की भर्त्सना की, विधवाओं के दुःख पर कुछ आँसू बहाये, सभाजनों को सूचित किया कि यदि संसार उनकी उत्तम मारुति, धनेशचन्द्र और तरफड़दास रूपी त्रिमूर्ति की बुद्धि—अर्थात् बुद्धि के अनुसार कार्य नहीं करेगा तो अवश्य पछताना पड़ेगा। सौभाग्य से इस शहर के लोगों में भी सद्‌बुद्धि उत्पन्न हो गई है जिससे यह सभा आज यहाँ हुई और भविष्य में अपना सामाजिक जीवन कुछ सुधर जाने की आशा है। इस प्रकार के भी अपने कुछ विचार उसने प्रकट किये।

इसी समय होटल में से आये हुए दो सज्जन अपनी धारणा के अनुसार कार्यक्रम न होते देखकर जाने के लिए उठ खड़े हुए। तुरन्त तरफड़दास ने जैसा कि पहले उन्हें सूचित किया गया था, महायोगी पर आक्षेप करना प्रारम्भ कर दिया और आध घण्टे में अपने वाग्जाल से, श्रोताजनों की सहानुभूति के साथ, उन्हें विश्वास दिला दिया कि सभी साधु पाखण्डी और झूठे होते हैं, और सिद्ध किया कि वे ही सच्चे सेवक हैं और देश का उद्धार करके रहेंगे। इस घोषणा के पश्चात् समाज उद्धार-सभा का उद्देश्य बताते हुए उसकी स्थापना के लिए प्रस्ताव प्रस्तुत किया। सभाजनों ने तालियाँ पीट कर और मगन की सैनिक टुकड़ी ने चिल्लाहट के साथ उनका साथ देकर इस प्रस्ताव का स्वागत किया।

धनेशचन्द्र ने भी इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। जो कुछ कहना था, वह झटपट कह कर अन्त में यह भी कहा कि इस समाज-उद्धार-सभा के अन्तर्गत एक अनाथाश्रम भी खोलने का आयोजन है जिसके द्वारा कुछ वास्तविक कार्य करके भी लोगों को दिखाना है। सभापति महोदय ने इसके बाद अपना भाषण प्रारम्भ किया और कठिन परिश्रम से तैयार किए हुए, कई बार पठन के परिश्रम स्वरूप, बड़े-बड़े विद्वानों के कठिन शब्दों से भरपूर एक भाषण को इस विद्वान् और अपनी जिम्मेदारी समझने वाली सभा के सामने पढ़ा।

तरफड़दास ने सभापति को साधुवाद दिया। किसी ने उसे भी धन्यवाद दिया या नहीं यह लोगों की हाय-हुल्ला में सुनाई नहीं दिया। मारुति ने सभापति जी को हार पहना कर धीरे से पूछा—'क्या आपको कलेक्टर साहब के यहाँ चलने का अवकाश है ? हो तो मैं भी आऊँ।'

'हाँ, जरूर !' कहकर सभापति जी ने अभिवादन स्वीकार किया। सभा-भवन गूंज उठा और इस प्रकार शहर के उद्धार के लिए किये गये भगीरथ प्रयत्न का ढोंग समाप्त हुआ।

वहाँ केवल तरफड़दास और डाक्टर रह गये। तरफड़दास ने हाथ बढ़ाकर कहा, 'क्यों दोस्त ! कैसी सफलता मिली, इसका तो मुझे पहले से ही पूरा विश्वास था।'

'हाँ जी, सत्य की सदा जीत होती है !'

'हाँ, और क्या ; अब मैं चलता हूँ। मुझे कल इस सभा की रिपोर्ट पत्र में प्रकाशित करनी है।'

'देखना, सब ठीक-ठीक निकालना।'

'इसकी तनिक भी चिन्ता मत करो।' कहकर मगन को पैसे देते हुए तरफड़दास अपने प्रेस चले गये।

× × ×

दूसरे दिन मार्तण्ड-प्रकाश के अपने पांच पृष्ठों में इस सभा का विस्तृत विवरण प्रकाशित हुआ। ऊपर मोटे अक्षरों में 'गुजरात में सुधार का डंका 'समाज-उद्धार-सभा की स्थापना' छपा था। सभा में कैसे-कैसे महान्, विद्वान्, ज्ञान-वृद्ध पुरुष आये थे ; किसने क्या कहा — अथवा यदि नहीं कहा तो भी क्या कहने का

विचार रखते थे—और यदि कहने का विचार न भी रखते हों तो भी तरफदार उनसे कैसे भाषण की आशा करते थे—इन सभी बातों की पूरी-पूरी रिपोर्ट छपी हुई थी। स्थान-स्थान पर मिल, स्पेंसर, रानाडे, तैलंग आदि के वाक्यों का छिड़काव किया था, साथ ही यह प्रश्न भी किया गया था कि देश भर के अथवा समस्त ससार भर के मनुष्य देशोद्धार सभा के सभासद बनकर क्यों नहीं एक दूसरे की—प्राणीमात्र की सहायता करते !

यह समाचार गुजरात के सभी पत्रों में प्रकाशित हुआ। बम्बई के भी सब छोटे-बड़े समाचार पत्रों ने इसका सारांश छापा। अंग्रेजी समाचार पत्रों ने भी सहयोग दिया। संसार-सुधार कमेटी की तरफ से गम्भीरलाल को अभिनन्दन पत्र मिला ; एडवोकेट्स् एसोसिशन के एक सदस्य ने मारुति को उनके सत्साहस और उत्साह के लिए धन्यवाद दिया। कलेक्टर साहब ने समाज-उद्धार-सभा के फण्ड में चार रुपया चन्दा दिया और मार्तण्ड-प्रकाश की बारह प्रतियां अधिक बिकीं।

तुरन्त ही इन आशावादी नर-रत्नों ने अपना दूसरा प्रयत्न प्रारम्भ कर दिया और अनाथाश्रम के लिए दौड़-धूप आरम्भ हो गई।

: १० :

मणि के शरीर और मन दोनों का विकास होने लगा। ज्यों-ज्यों विकास होता गया त्यों-त्यों उसके मन में पीड़ा भी बढ़ती गई। घर, पति, पुत्र आदि सभी वस्तुएँ, जिनका अभी उसे सुख प्राप्त नहीं हुआ था पाने की लालसा फिर जागृत होकर उसके मन को विचलित करने लगी। प्रवचन और आरती के समय जब वह आती-जाती तब उसे अपने में तथा वहां बैठी हुई स्त्रियों में स्पष्ट अन्तर मालूम होता था, जिससे उसे मानसिक कष्ट पहुंचता था। उसका पूर्ववत् असंतोष बढ़ने लगा और असन्तोष के साथ ही पहले दिन जिस स्त्री को उसने देखा था वह बार-बार स्मरण आने लगी। वैसी ही कोई सहेली यदि यहाँ

मिल जाय तो कैसा अच्छा हो !

एक दिन प्रातःकाल प्रवचन में एक अघटित घटना हो गई। महाराज के प्रवचन समाप्त करने के बाद आरती हो जाने पर सब उठे। महाराज अपनी मंथर चाल से श्रोताजनों के बीच में से होकर जा रहे थे। चारों ओर भक्तजन उनके पैर छू रहे थे। इतने में द्वार में से एक स्त्री महाराज के दर्शन की लालसा से दौड़कर हाँफती हुई आई। वह दूसरे नगर की रहने वाली मालूम होती थी। आसपास के लोगों को हटाकर वह आगे बढ़ी, सामने ही महाराज दृष्टिगोचर हुए। उन्हें देखते ही वह चौंक उठी। अपने साथ के पुरुष का हाथ झटककर तेज आवाज में जोर से बोल उठी—'अरे ! यह कौन है ? यही महाराज हैं ? यह तो बदमाश मावजी है ! अरे बता ! मेरी भाभी कहाँ है ?'

सभी भक्तजन इस प्रकार सकपका गये मानो बिजली गिरी हो। महाराज के प्रति इस प्रकार का कटु आक्षेपपूर्ण वचन कहना उनके विचार से धृष्टता की पराकाष्ठा थी। महाराज के सम्बन्ध में लोगों में अनेकों प्रकार की चर्चा चला करती थी जिसके कारण प्रत्येक व्यक्ति को असली बात जानने की उत्सुकता हुई, और सभी आगे बढ़े। मणि पास ही में बैठी हुई थी जिससे वह सब कुछ देख सुन सकती थी।

क्षण भर के लिए महाराज ने घूमकर देखा और रमणी को सम्बोधित करके हँसते हुए मीठी वाणी में उन्होंने पूछा, 'पुत्री ! तू कौन है ? तुझे क्या दुःख है ?' ये शब्द महाराज ने इतनी जोर से कहे कि सब श्रोताजन सुन सकें। उनकी वाणी में भय का लेश भी नहीं था ?

यह सब होते हुए भी मणि की अन्तर-दृष्टि से महाराज की आँखों का तलवार की धार जैसा तेज छिपा नहीं रह सका। उनकी भृकुटि पर बिना साँप के रुद्र को उसने विराजमान देखा।

दो पल तक मृत्यु जैसा सन्नाटा रहा। आगन्तुक रमणी पहले तो कुछ घबरा गई; बाद में मानो किसी अज्ञात शक्ति से किसी बात को जबरन स्वीकार करती हो इस प्रकार वह दब गई। उसने अपना सिर नीचा कर लिया। महाराज के नेत्र फिर स्थिर हो गये। स्त्री ने आँखें बन्द कर लीं। उसका सिर छाती की ओर झुक गया। धीरे-धीरे मानो कोई उसका सिर दबाता हो, इस

प्रकार वह महाराज के पैर पर गिर पड़ी।

'महाराज ! क्षमा करो !' जमीन पर गिरती हुई स्त्री ने कहा।

'मोहन ! यह बिचारी कोई दुःखिया मालूम पड़ती है। इसे जहाँ भक्त रहते हैं वहाँ ले जा और जो कुछ इसकी कामना हो उसे पूरी कर दे।' कहकर इस प्रकार महाराज चले गये मानो कुछ हुआ ही नहीं।

भक्तजन हतप्रभ रह गये। महाराज की शक्ति देखकर उनकी श्रद्धा और भी बढ़ गई। जय जयकार करते हुए सब अपने-अपने घर चले गये।

मणि भी उठकर अपने कमरे में जाकर इस घटना पर विचार करने लगी। पहले तो कुछ विचित्र घृणा-सी महाराज की ओर हुई। महाराज की स्थिर आँखों की स्मृति ने उसके हृदय में कुछ घबड़ाहट-सी पैदा कर दी। जरूर यह मनुष्य कोई भयंकर दुष्ट और क्रूर पुरुष है। यह स्त्री बिल्कुल ही निर्दोष है। महाराज के सम्बन्ध में जो कुछ उसने कहा सब सत्य है; ऐसा उसके मन में सन्देह हुआ। उसे यह भी विश्वास हो गया कि महाराज ने अपने जादू के बल से उस स्त्री को अपने वश में किया है। इन विचारों से यह महाराज कौन है और कैसे इतनी सत्ता चलाने में समर्थ है यह जानने की उत्कण्ठा उसके मन में उत्पन्न हुई।

इतने ही में महाराज की तेजस्वी मूर्ति जिस प्रकार प्रतिदिन दो बार उसकी दृष्टि के सामने आकर खड़ी होती थी वैसे ही आज भी आकर खड़ी हो गई। उसकी विचारधारा रुक गई। वह महाराज की तरफ झुकी। कुछ देर तक उसने सामना किया, पर जोर न चलने से परास्त हो उनके वशीभूत हो गई। सदैव के समान कुछ देर में यह विचार दूर हो गये।

मणि को यकायक अपनी इस विचित्र मानसिक स्थिति का वास्तविक ज्ञान हो गया। जिस प्रकार महाराज ने आज प्रातः उस स्त्री को वश में किया था वैसे ही मुझे भी वश में करने के लिए वह प्रयोग करते होंगे और जितने समय तक यह प्रयोग चलता है, उतने ही समय तक मेरी मानसिक स्थिति भी ऐसी विचित्र रहती है। यह ज्ञात होते ही वह घबराई, महाराज एक दुष्ट राक्षस के समान उसे दीख पड़ने लगे। साथ ही उसे कुछ भय भी हुआ।

महाराज किसलिए ऐसा करते होंगे ? मेरे मन में भक्ति-भाव उत्पन्न करने

के लिए ? अथवा मुझे विक्षिप्त बनाने के लिए ? क्या महाराज भी दूसरे मनुष्यों के समान ही नीच, अधम और दुष्टात्मा हैं ? ऐसे अनेक तर्क मन ही मन करते हुए पूरा दिन व्यतीत हो गया। प्रत्येक क्षण महाराज के प्रति उसकी घृणा बढ़ती ही गई। निरन्तर।

तीसरे पहर उसने साहसी निश्चय करके रघुनाथ द्वारा महाराज से कहलाया कि अवकाश हो तो मैं मिलना चाहती हूँ। थोड़ी ही देर में महाराज ने समय होने पर उसे बुलाया। जिस कमरे में पहले पहल महाराज से वह अकेली मिली थी उसके पीछे एक दालान में महाराज को उसने एक झूले पर बैठ कर पुस्तक पढ़ते हुए देखा। मणि को देखते ही महाराज ने उसे जमीन पर बैठ जाने का संकेत किया।

'क्यों ?' जरा हँसकर महाराज ने पूछा।

'महाराज आज पन्द्रह-बीस दिन हो गये। अब मेरा क्या होगा ? इस प्रकार कब तक बैठी रहूँगी ?'

'क्यों, क्या कोई असुविधा हुई ?'

'नहीं, महाराज जी किन्तु मेरा स्वभाव बड़ा विचित्र है। मुझे इस प्रकार पड़ी रहना अच्छा नहीं लगता।'

'प्रभु का भजन करो।'

'वह भी नहीं होता। मुझे तो संसार के आनन्द में सम्मिलित होने की इच्छा होती है। रात-दिन इसी प्रकार की कल्पना मन में आया करती हैं।'

'क्या दूसरा कोई विचार मन में नहीं उठता ?' जरा तीव्र दृष्टि से मणि की ओर देखते हुए महाराज ने पूछा।

'जी ! दिन में दो बार तो आपकी मूर्त्ति दिखाई देती है किन्तु मेरी तृष्णा शान्त नहीं होती।

'मन की तृष्णा भी शान्त हो जाएगी। यहाँ दुःख किस बात का है। अपने भक्तों को मैं जरा भी कष्ट नहीं होने देता।' कह कर महाराज ने कुछ विचित्र कटाक्ष से मणि को देखा।

मणि चौंकी ! महाराज को इस प्रकार कटाक्ष करना क्या उचित है ? उसने आँख उठा कर देखा तो महाराज की मुद्रा वैसी ही गम्भीर थी। पर

ने सोचा कि यह मेरा भ्रम होगा। उसने कहा, 'महाराज आप तो सर्व शक्तिमान् हैं किन्तु यदि मैं इस प्रकार बैठी रहूँगी तो कुछ न कर सकूँगी ; इसलिए आप मुझे कुछ रास्ता दिखायें।'

रास्ता भी दिखाऊँगा ! घबड़ाती क्यों है ? मेरे भक्त मेरे हैं और मैं उनका हूँ। यहीं तेरी सभी वासनाओं की पूर्ति हो जायगी। अब इस समय तू जा। परसों मैं मिलूंगा।'

मणि ने नमस्कार करके आज्ञा ली और महाराज पर झल्लाती हुई वापस आई। उसके क्रोध का पारावार नहीं रहा। पर कुछ ही देर में वह ठण्डी पड़ गई। शायद यह उसके मन का भ्रम हो। बड़े परिश्रम से मन को शान्त करने का प्रयत्न करने पर भी उसका हृदय फिर दहकने लगा—सब लोग सुखी हैं। मैं क्यों दुःखी हूँ ? मैंने कौन-सा अपराध किया है ?

संध्या हुई, प्रतिदिन के समान महाराज का सम्मोहन आध घण्टे तक लगता था, वह आज समय पर नहीं लगा। यह देखकर उसे आश्चर्य हुआ। अन्त में थक कर दरवाजे के पास खड़ी होकर वह वाटिका की ओर जो चारों ओर से बन्द थी देखने लगी—वहाँ कोई आता क्यों नहीं ? इसमें जाने का रास्ता कहाँ से है ? यह वाटिका यहाँ क्यों बनाई गई है ? ऐसे विचार एक के बाद एक उसके मन में उठते रहे। कब रात हो गई इसका उसे पता भी न लगा।

वाटिका में किसी के धीरे-धीरे चलने की आहट हुई। वह आँखें फाड़-फाड़ कर देखने लगी। किसी ने उसकी ओर एक कंकड़ फेंका। मणि डर कर जरा पीछे हट गई। उसके सामने कंकड़ जमीन पर गिरा। उसमें कोई कागज बँधा हुआ था। मणि ने कंकड़ उठा कर उस पर बँधे हुए डोरे को खोल कर कागज निकाला। उसके आश्चर्य का पारावार न रहा जब उसने पढ़ा कि—

'अभागी नारी,

यहाँ तेरे सिर पर भयंकर विपत्ति और सर्वनाश मंडरा रहा है। एक पल भी तेरा यहाँ रहना विपत्ति से खाली नहीं है। यहाँ से जितना शीघ्र हो सके जल्दी भाग जा कहीं दूर।

तेरी एक सच्ची मित्र।'

मणि पढ़ते ही दरवाजे की ओर दौड़ पड़ी। परन्तु नीचे कोई दिखाई नहीं

दिया। उसे यह कागज उस स्त्री के पास से आया हुआ प्रतीत हुआ जिसे उसने पहले दिन देखा था।

क्या विपत्ति हो सकती है ? यदि कोई विपत्ति आने वाली हो तो इससे अच्छी बात उसके लिए दूसरी नहीं हो सकती। क्योंकि उसके नीरस जीवन में अब कुछ भी तो शेष नहीं रहा है। परन्तु यदि इस पत्र की लेखिका यही रमणी है तो ऐसी चेतावनी देने का क्या मतलब हो सकता है ? वह खिड़की के बाहर देख कर चिल्ला उठी—'प्रभु ! अब तो कोई रास्ता दिखाओ, बहुत हो चुका। अब जीवन असह्य हो रहा है।'

जैसा उसने सोच रखा था वैसा ही इस युक्ति का प्रभाव हुआ। नीचे कोई छिपा हुआ खड़ा था। वह जरा अपनी जगह से खिसका। उसका सफेद प्रति-विम्ब वाटिका में दिखाई दिया।

यह छाया किसकी है और वह क्या चाहती है ? यह विचार करती हुई वह वहीं खड़ी रही। कुछ समय तक कोई वहाँ दिखाई नहीं दिया इससे मणि को कुछ चिन्ता हुई। वह खिड़की में झुक-झुक कर नीचे देखने लगी, लेकिन कोई आता हुआ भी नहीं मालूम पड़ा।

एकाएक उसे पीछे से किसी के आने की आहट मिली। वह घबड़ाकर काँप उठी। पीछे फिरी, और जैसे उसकी श्वास रुक रही हो ऐसा उसे मालूम हुआ।

उस दरवाजे के पीछे वही स्त्री उसके सामने खड़ी थी।

मणि इस स्त्री को देख कर स्तब्ध खड़ी रह गई। स्त्री इसी पृथ्वी पर रहने वाली मानव जाति की थी। उसके सुन्दर मुख पर स्वस्थता झलक रही थी। उसकी आँखों में सज्जनता और निर्दोषता स्पष्ट दृष्टि-गोचर होती थी। उसके अंग प्रत्यंग का गठन व विकास अद्भुत था। सिर से लेकर पैर तक उसके शरीर का कोई भी अंग अपूर्ण नहीं था। इस सुगठित रूपवती को देख कर मणि सोचने लगी कि यह रंभा किस सौभाग्यशाली के भाग्य को विकसित करती होगी ?

'कौन···? तुम ?'

'हाँ !' धीमी किन्तु डरी हुई आवाज में उत्तर मिला, 'चलो, तुम्हें रास्ता दिखा दूं।'

'परन्तु मुझ पर कौन-सी विपत्ति आने वाली है ?' मणि के स्वस्थ मस्तिष्क में विचार आया कि यह रमणी किसी कारण वश डर रही है और मुझे यहां से भगाना चाहती है ।

'विपत्तियाँ तो अनेक हैं यदि तुम्हें यहाँ से जीवित लौटना हो तो तुरन्त भाग जाओ ।'

'परन्तु क्यों ? ऐसे प्रभावशाली महाराज के आश्रम में भय किस बात का ?'

'तुझे क्या खबर नहीं है ?' काँपते हुए स्वर में नीचा मुँह किए हुए स्त्री ने पूछा ।

'नहीं तो !'

'महाराज दुष्ट प्रकृति के हैं । और सब बातों में संभव है वह महात्मा हों । किन्तु...' कह कर वह स्त्री नीचे देखते हुए बोली, 'भले आदमियों के लिए यहां रहना शोभनीय नहीं है ।'

'तब तुम क्यों रहती हो ? क्या तुम भली नहीं हो ?'

'इससे तुझे मतलब !' जरा भृकुटि चढ़ा कर उस स्त्री ने कहा ।

'अवश्य मतलब है ! तुम मुझे बचाने आई हो तब मुझे यह जानना आवश्यक है कि तुम कौन हो ? तुम्हारा नाम क्या है ? झूले पर बैठ जाओ ! खड़ी क्यों हो ?'

'मेरा नाम मणिकर्णिका है !' कह कर वह स्त्री थकी हुई-सी झूले पर बैठ गई ।

मणि चौंक उठी । उसने जब अपना नाम महाराज को सर्व प्रथम बताया था तब वे कुछ चौंक से गए थे । इसका कारण अब उसकी समझ में कुछ आया । मेरा नाम भी मणि है, मैं तुम्हें कणिका पुकारूँ तो कोई एतराज तो नहीं है ?'

'जो चाहे पुकारो, किन्तु यहाँ से चलो, कोई आ जायगा ।'

'किन्तु मैं यहाँ से क्यों जाऊँ ? मैं यहाँ सुखी हूँ ।' मणि ने उत्तर दिया ।

'तू तो अभी जाने के लिए कह रही थी न ?'

'बिल्कुल गलत !' खिलखिला कर हँसते हुए मणि ने कहा । उसे कणिका बड़ी अच्छी मालूम हुई । उसके भोलेपन पर उसे हँसी आ गई—'मुझे तो यहीं रहना है ।'

'क्यों ? क्या तुझे अपनी आबरू प्यारी नहीं है ?'

'तुमसे मुझे बहनापा जोड़ना है।'

'रहने दे तू अपना बहनापा ! जा, चली जा ! मेरा कहना मान, नहीं तो फिर पीछे पछतायेगी।'

'मेरे कौन रोने-हँसने वाला बैठा है, जो पछताऊँगी।'

'क्यों, तेरे माँ-बाप क्या कहेंगे ? तेरी मान-मर्यादा का क्या होगा ?'

'मेरे न तो माँ है और न बाप ! आबरू थी वह भी चली गई।' तनिक दुःखपूर्ण आवाज में मणि ने कहा, रहूँ तब भी ठीक है और न रहूँ तब भी ठीक है।'

'क्या कहती हो ?' चौंक कर कणिका ने पूछा।

'बिल्कुल सच कह रही हूँ।

'तब तू नहीं जायगी, जा बहन, भाग जा ! तेरे भले के लिए कह रही हूँ ?' जरा विनीत स्वर में कणिका ने कहना प्रारम्भ किया। वह स्वभाव से डरपोक मालूम हुई कि इतना कहते-कहते उसकी आँखों में आँसू आ गये।

'ऊँ—हूँ—' मणि ने सिर हिलाते हुए कहा, 'यहाँ से भागने का पहले कारण बताओ।'

'मैं तुम्हारी भलाई के लिए ही कह रही हूँ। आज एक पत्र में मैंने पढ़ा है।'

'क्या ?'

'देखो, यह है।' कह कर उसने मार्तण्ड-प्रकाश का उस दिन का अंक मणि के हाथ में रख दिया। मणि ने पढ़ा—

आवश्यकता है ! आवश्यकता है !! आवश्यकता है !!!

एक अच्छे घर की रूपवती विधवा की आवश्यकता है ! विधुर एक सम्भ्रांत उच्चकुल के युवक हैं।

लिखो अथवा मिलो :—

उपमन्त्री,

समाज-उद्धार-सभा कार्यालय, चौक।

'यहाँ पड़े रहने की अपेक्षा यह कहीं ज्यादा अच्छा है !'

'किन्तु यहाँ बुरा क्या है ? महाराज की मुझ पर विशेष कृपादृष्टि है।'

'यही तो खराब है।'

'तब यहीं रहते हुए समाज-उद्धार-सभा के मन्त्रियों से मिलूंगी।'

'महाराज ऐसा नहीं करने देंगे ; पर इसमें बुराई क्या है ?'

'यह विज्ञापन तो ऐसा मालूम होता है मानो कोई किराए पर मकान माँगता हो। पहले देख तो लूं कि ये कृपानिधान हैं कौन ? पुरुष वर्ग की सज्जनता पर से मेरा विश्वास दिनों दिन उठता जा रहा है। यहाँ रहकर ही कुछ ठीक-ठाक करूँगी।

'महाराज नहीं होने देंगे।'

'क्यों ?'

'वह विधवा-विवाह के कट्टर विरोधी हैं।'

'किन्तु तुम तो कहती हो कि वह दुष्ट प्रकृति के हैं।'

'हाँ ठीक है और पुनर्विवाह उन्हें पसन्द नहीं है।'

'यह भी ठीक। परन्तु मैं तो अनजान नदी में डुबकी लगाने वाली नहीं हूं। कल प्रातः पता लगाकर तब कुछ करूँगी।'

'तो तू नहीं जायगी ?'

'नहीं-नहीं !' जोर से उसने कहा।

'तब तेरा दुर्भाग्य !' इतना कहकर खिन्न हो मणिकर्णिका उठकर चलने लगी।

झट उठकर उसका हाथ पकड़ कर मणि बोली 'बहन ! कैसा दुर्भाग्य है मुझ मुंह जली का। मेरा स्वभाव जरा हठी है। नहीं जाती सो मेरे निश्चय का बुरा मत मानो किन्तु तुम्हें क्या कष्ट है ? तुम कौन हो ; यह मैं जानना चाहती हूं। पहले ही दिन से मेरे मन में यह विचार हुआ है कि हम दोनों में बहनापा हो जाय तो अच्छा हो। मैं इस संसार में अकेली हूं। तुम भी दुःखी और अकेली ही मालूम होती हो।'

'नहीं मैं सुखी हूं, मुझे कुछ भी दुःख नहीं है। जब से तू आई तभी से कुछ क्लेश अवश्य है।'

'मेरे आने से क्लेश हुआ ? मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है ?' यह प्रश्न करते समय भी मणि के परिपुष्ट मस्तिष्क में अनेक प्रकार के तर्क-वितर्क

चल रहे थे । उसे इसका रहस्योद्घाटन करना था । उसकी दिलचस्पी भी बढ़ी ।

'बहन, तेरा क्या दोष ? मेरा दुर्भाग्य !'

'मेरे आने से महाराज का मन तुम्हारी तरफ से फिर गया ?' मणि ने कल्पना करके अन्धेरे में निशाना मारा । वह तिर्छी आँख से कर्णिका की ओर देख रही थी ।

प्रश्न सुनकर कर्णिका घबड़ा-सी गई । ऐसा मालूम पड़ा मानो किसी ने कोड़ा मारा हो, बोली—'नहीं-नहीं ।'

'नहीं कैसे, हाँ ! सच बता दो न । अब तक तुम अकेली थीं । महाराज की मुझ पर दृष्टि पड़ने से तुम्हारा मान घट गया ।'

'हाँ ! परन्तु यह तुमने जान कैसे लिया ?' घबड़ाते हुई कर्णिका ने पूछा ।

मणि अपनी चालाकी पर हँसी, 'मैं ? इसमें क्या है ? तुम्हारी बातों से ! मेरे पास कोई जादू तो है नहीं ! इसी से शायद मुझे हटाना चाहती हो तुम !'

जवाब देने की शक्ति न होने से नीचा सिर करके कर्णिका ने कहा, 'हाँ ।'

'घबराओ नहीं बहन ! इस बात से मैं वास्तव में दुःखी हूँ, अकेली हूँ, किन्तु किसी को दुःख देने के लिए नहीं आई हूँ । अतः जिससे तुम्हें सुख मिले वह मैं करने के लिए तैयार हूँ ।'

'हाँ, ऐसा ही करो तो ठीक है ।'

'क्या तुम महाराज की विवाहिता हो ? लोगों का तो कहना है कि महाराज ब्रह्मचारी हैं ।'

'लोगों के कहने से क्या होता है ।' धीरे से कर्णिका ने कहा, 'लोगों में ब्रह्मचारी प्रसिद्ध न हों तो मान-सम्मान कैसे बढ़े ?'

'तो क्या इनका मान बढ़ाने के लिए तुम जन्म भर इनकी कैदी बनी रहोगी ?'

जो कुछ भी हो, मेरे तो वे प्रभु हैं, सर्वस्व हैं, उनके लिए मैं अपना जीवन भी अर्पण करने के लिए तैयार हूं ।'

'विवाह कब हुआ ? तुम तो मुझसे दो-चार वर्ष ही बड़ी मालूम होती हो ।'

'विवाह नहीं हुआ है ।' तनिक हिचकिचाहट के साथ कर्णिका ने कहा, 'मैं बाईस वर्ष की हूं किन्तु इन सब प्रश्नों से तुम्हारा मतलब क्या है ? तुम कब

जाओगी यह बतलाओ !'

'मैं क्या ऐसे ही चली जाऊँगी ?' जरा हँसकर मणि ने कहा, 'परामर्श करने से पहले जान तो लूँ कि यह सब है क्या ? किन्तु विचित्र बात तो यह मालूम होती है कि···'

'क्या ?'

'कि इतने वर्ष से तुम इनके पास सबसे छिप कर रह कैसी सकी।'

'जब मैं महाराज से मिली उस समय साथ में केवल मेरी मौसी थी और···' इतना कहकर कणिका रुक गई।

'महाराज का असली नाम माधवजी है न !' यकायक सवेरे की घटना याद आ जाने पर मणि ने कहा।

'तुमने कैसे जाना ?' आँखें फाड़कर देखते हुए कणिका ने पूछा।

प्रश्न सुनकर मणि हँस दी।

'तू तो सब कुछ जानती है ?'

'मैं कुछ नहीं जानती। यह तो ऐसी ही एक बात हो जाने से जान गई।' बात उड़ाते हुए मणि ने कहा। कणिका ने उसकी बात पर विश्वास कर लिया। वह बड़ी ही सरल हृदया स्त्री थी।

'तब तू जाती है ?'

'हाँ ! किन्तु तुम अपनी सभी बातें स्पष्ट रूप से समझा कर कहो तो जाऊँ। मुझे वह मार्तण्ड प्रकाश का अंक दो।'

'मैं अपनी बात क्या कहूँ ? खाती हूँ, अपने नाथ को प्रसन्न करने की चेष्टा करती हूँ। बस यही मेरी कथा है।'

'नहीं यह झूठ है !' मणि ने सिर हिलाते हुए कहा, 'तुम कौन हो ? महाराज के पास कैसे आई ? ऐसे बात उड़ाने से काम नहीं चलेगा। मैं जाऊँगी परन्तु मेरे जाने का मूल्य तो तुम्हें अवश्य ही चुकाना होगा।'

'अपनी बात !' दीनता से कणिका मणि की तरफ देखकर कहने लगी, 'क्या कहूँ ? छः वर्ष पहले मैं अपनी मौसी और बालक के साथ रहती थी।'

'बालक के साथ ?'

'हाँ अपने पुत्र के साथ।'

'तुम विवाहित थीं या कुंआरी ?'

'मैं विधवा थी।'

यह सुनकर मणि के हृदय में दया का संचार हो आया। उस स्त्री फिर कहा —'वहां महाराज आये। मैं इनके पीछे पागल हो गई और सबको छोड़कर इनके साथ भाग आई।'

'किन्तु उस समय भी क्या ये यहीं थे ?'

'नहीं उस समय ये योग-साधन कर रहे थे। मेरे आने के पश्चात् इनकी मान-मर्यादा बहुत बढ़ी।'

'यह सच है ! फिर ?'

'फिर क्या ? मेरी समझ में महाराज तो प्रभु के अवतार हैं, मैं सुखी हूं। कभी-कभी नरेन्द्र याद आ जाता है परन्तु महाराज के प्रेम के आगे मुझे समस्त संसार तुच्छ प्रतीत होता है।'

'क्या कहना ! विचारा लड़का ही अभागा था।'

'नहीं, मोसी उसका पालन-पोषण करेगी। मैंने उससे कह दिया था कि मेरी बहन को, जो बम्बई में है—बालक सौंप आना। उसे लड़का नहीं है, जिससे दोनों सुखपूर्वक रहेंगे।'

'तब तुम मुझे यहां से भगा रही हो अपने सुख के लिए, क्यों ?'

'हां इतनी कृपा करो तब न !'

'हां, संसार में मेरे ठहरने के लिए कोई स्थान नहीं है ; कणिका बहन ! तुम तो भाग्यशालिनी हो कि इस प्रकार छः वर्ष से सुख से दिन काट रही हो। मेरी भी तुम्हारी ही जैसी स्थिति थी, दुर्भाग्य से मेरे कोई था ही नहीं ; जितने सगे थे वे सभी नष्ट हो गए थे। एक पापी चाण्डाल ने मुझे फंसा कर इस अधोगति को पहुंचा दिया। मैंने उससे अपने साथ रखने की बहुत विनती की, किन्तु पुरुष जैसा स्वार्थी और चण्डाल जीव क्या कभी तुमने देखा है ? वह मुझे रोती-कलपती छोड़ कर भाग गया।'

'ऐसा ? फिर ?'

'फिर क्या, मुझे गर्भ रह गया। मां, सास सभी मेरे पीछे पड़ गईं। सभी कहने लगीं कि किसी तरह कुटुम्ब पर से कलंक दूर कर दे। मैं दृढ़ रही मेरा

मन सांसारिक आनन्द के लिए लालायित था। मैंने कौन-सा अपराध किया था जो सन्तान-सुख से वंचित रहती। मैंने अस्वीकार कर दिया। सब मुझ पर बिगड़ गये, मैं घर से भाग खड़ी हुई।'

'तब ?'

'हां ! अपनी चालीस दिन की सुरेखा को पटेल के घर छोड़ कर यहां आई। कर्णिका बहन ! बताओ कौन दुःखी है—मैं या तुम ?'

'तब बताओ मेरे महाराज कैसे अच्छे हैं ?'

'हां, सचमुच बहुत अच्छे हैं !' मणि को इस अवस्था में भी हँसी आये बिना नहीं रही। यह स्त्री कैसी भोली-भाली है ! 'जब तुम कहती हो कि जाओ तो बहन, तो मैं जाती हूँ। तुम सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करो।'

'अकेले मेरे ही सुख की बात नहीं है।'

'क्यों ?'

'महाराज जी योग साधन करते हैं, यदि अधिक कुमार्ग पर जायेंगे तो योगभ्रष्ट हो जायेंगे।'

'तो क्या इससे दुनिया सूनी हो जायेगी ?' खिलखिलाकर हंसते हुए मणि ने कहा, 'महाराज के लिए तो मेरे हृदय में जरा भी दया नहीं है। तुम्हारे सुख के लिए ही मैं जाने के लिए तैयार हूँ।'

'बहन ! तू सुखी होगी, घबरा मत। मैं क्या करूं, अपना स्वार्थ यह सब करा रहा है। तू बड़ी रूपवती है इससे तेरा यहां काम नहीं है। नहीं तो तुझे अपनी बहन के समान रखती।'

'वाहरे तेरा परमार्थ !'

'हां ! किन्तु मेरी बहन बम्बई के चन्दूलाल सेठ की पत्नी है। जाना तो जरा मेरे पुत्र को देखती आना। भगवान करे तू सुखी हो।'

'तब तुम भी साथ चलो न ?'

'महाराज को छोड़ कर ! भले ही ब्रह्माण्ड टूट पड़े पर पहले महाराज पीछे दूसरा कोई।'

मणि यह श्रद्धा और दृढ़ता देख कर दंग रह गई। महाराज के प्रति उसकी घृणा और भी बढ़ गई।

'देखो बहन ! यह मेरा हार अपने पास रखो। मेरे पास रुपया-पैसा तो कुछ है नहीं। इसे बेचने से किसी दिन भी रुपया मिल जायगा। पर इसका क्या मूल्य है मुझे नहीं पता।'

'लाओ, जो कुछ दो वह ठीक है। चलो, चलकर जरा रास्ता बता दो।' कहकर महाराज की दी हुई एक धोती लेकर मणि जाने के लिए तैयार हो गई।

'चलो !' कहकर कणिका आगे-आगे चल दी।

: ११ :

दोनों स्त्रियाँ बाहर निकलीं। कणिका को सभी मार्ग अच्छी तरह मालूम थे। फलस्वरूप वह अन्धेरे में भी धीरे-धीरे रास्ता बताते हुए आगे बढ़ी। दो-एक दरवाजे भी खोले।

मणि को एकाएक कँपकँपी आई। सदैव प्रातः और सायंकाल जिस प्रकार की बेहोशी-सी उसे आती थी वही आने लगी।

'कणिका बहन ! मेरा पैर काँपता है।' वह बोली।

'क्यों ?'

'मुझे दिन में दो बार विचित्र प्रकार की कँपकँपी आती है और महाराज की मूर्ति सामने दिखाई देती है।'

'हाय-हाय ! तुझ पर भी प्रयोग चलता है।'

'हैं ! प्रयोग !'

'हाँ ! महाराज इस समय तेरा ध्यान लगाकर बैठे होंगे !'

'मुझे कुछ चक्कर-सा आ रहा है।'

'मणि ! ओ मणि ! तू मेरा स्थान ग्रहण करेगी ? प्रतिज्ञा कर कि तू मेरे महाराज को मुझसे न छीनेगी मैं मर जाऊँगी।' रोती आवाज से कणिका ने कहा।

'नहीं, कभी नहीं; तुम घबड़ाओ मत। किन्तु इस समय मेरा कुछ भी वश

नहीं चल रहा है। केवल महाराज ही दिखाई दे रहे हैं। ओह! ओह!, कहकर मणि बैठ गई और पागल के समान दीवाल की ओर देखने लगी।

'तू आंख बन्द कर ले और किसी दूसरी वस्तु पर ध्यान लगा।'

'नहीं होता! अब मैं वापस जाऊंगी।' आह! आह! मुझे महाराज बुला रहे हैं।' नींद में बोल रही हो इस प्रकार मणि बोली 'आती हूं, हाँ प्रभु महाराज आ रही हूं।' कहकर मणि खड़ी हो गई।

'मणि! मणि! क्या कहती है? तू ऊँघ रही है। जरा विचार तो कर। यह तो महाराज की इच्छाशक्ति का प्रभाव है। मन में दृढ़ता रख।'

'महाराज बुला रहे हैं, आती हूं।' कहकर मणि इस प्रकार चलने लगी मानो नींद में चल रही हो। कणिका ने अपना माथा ठोक लिया। इस प्रयोग को वह अच्छी तरह जानती थी। आंसू बहाती हुई बगल के दरवाजे में जाकर वह अदृश्य हो गई।

मणि बिलकुल सीधे चली गई। जिस मार्ग से वह जा रही थी उसे उसने कभी देखा भी नहीं था, लेकिन वह इस प्रकार दरवाजे पर दरवाजे खोलती हुई दड़ती चली जा रही थी मानो सब रास्ते उसके अच्छी तरह जाने-पहचाने हुए हों। उस समय उसके मन में केवल एक ही विचार आ रहा था—वह था महाराज का। उनकी मोहिनी मूर्त्ति उसकी दृष्टि के सामने नाच रही थी जो अपनी विशाल शक्ति के प्रभाव से उसे आगे लिए चली जा रही थी। वह क्या कर रही है इसका उसे ज्ञान ही नहीं था। कणिका से क्या बातचीत हुई वह भी वह भूल गई थी। केवल वह महाराज को ही देख रही थी और उन्हीं से मिलने के लिए आकुल हो रही थी।

दस मिनट में पूरा रास्ता तय कर वह महाराज के कमरे में जा पहुंची जिस स्थान पर सवेरे उनसे वह मिली थी, उसके पीछे के एक सुन्दर सुशोभित कमरे में उसने अपने को इस समय खड़ी पाया। अब वह चैतन्य थी। उसने चारों ओर दृष्टिपात किया। कमरे में चमक-दमक देख कर वह चकित हुई। साथ ही मस्तिष्क में सम्मोहन का नशा दूर होते ही, वह घबड़ा उठी। कणिका कहाँ गई, वह स्वयं यहाँ कैसे आ गई, इसका विचार करने लगी। महाराज के प्रयोग से खिंच कर वह यहाँ आ पहुंची है इसका ख्याल आते ही महाराज

के प्रति घृणा से उसके होंठ भिंच गए। चार-पाँच मिनट में वह बिल्कुल स्वस्थ हो गयी। मन की निर्बलता से यह सब हुआ है इसका उसे ज्ञान हुआ; साथ ही महाराज अपनी शक्ति से उसे यहाँ खींच लाये हैं इसका विश्वास हो जाने पर वह अपने विचारों को दृढ़ करने का प्रयत्न करने लगी। उसे सुरेखा व उसके पिता का भी ध्यान आया जिसने उसे इस अधोगति को पहुँचाया।

बगल की दीवाल पर पड़ा हुआ एक पर्दा हटा और महाराज भीतर आये। उनका स्वरूप रात्रि के समय विशेष आकर्षक मालूम पड़ रहा था; फिर भी मणि अपने मन में उन्हें धिक्कारने लगी।

'क्यों मणि ?' कह कर कमरे में रखी हुई एक आराम कुर्सी पर महाराज बैठ गये।

'क्या है ? मुझे आपने क्यों बुलाया है ?'

'मैंने कब बुलाया ? तू स्वयं आई है।' उन्होंने धीमी किन्तु रसभरी आवाज में कहा।

'नहीं ! किसने कहा ?' मणि जोर से बोली। अब उसकी मनःस्थिति बिल्कुल ठीक हो गई थी, जिससे उसे किसी बात की परवाह नहीं थी; साथ ही उसे यह भी ज्ञान हो गया कि महाराज और एक निर्णायक द्वंद्वयुद्ध में उतरे हैं। अतः उसमें विजयी होने के लिए वह साहस बटोरने लगी। उसे सगे-सम्बन्धी, आबरू-इज्जत किसी का भय नहीं था, वह अपनी शक्ति महाराज को दिखाने के लिए उद्यत हो गई।

'मैं कहता हूँ न तू स्वयं आई है !' प्रभुतासूचक स्वर में महाराज ने कहा।

'तब आप झूठ कह रहे हैं।'

महाराज ने गौरव से सिर ऊपर उठा कर देखा।

'हाँ ! प्रतिदिन आप जादू से मुझे आकर्षित करते हैं। इस समय भी आपने अपनी विद्या द्वारा मुझे यहाँ बुलाया है। कहिये, क्या काम है ? मुझे निद्रा आ रही है। रात अधिक हो चुकी है।'

'मणि ! इस प्रकार अकेले में बातें करना ठीक नहीं है। यह तो तेरा चंचल मन है जो तुझे यहाँ खींच लाया है। मेरी भक्ति के प्राबल्य से तू यहाँ

खिच आई है।'

'किसने कहा ? मुझे न तो भक्ति है और न आपके प्रति कुछ श्रद्धा ही है।'

'क्यों वाचालता बहुत बढ़ गई है क्या ?'

'हाँ ! जो आप से हो सके करें; जादू-टोना करके करेंगे ही क्या ? बोलिये, क्या काम है ?'

'मणि ! तेरे में वैराग्य नहीं आ रहा है, तू प्रभु के मार्ग पर नहीं जा सकती।'

'तब क्या आप उस मार्ग पर ले जा सकते हैं ?'

'हाँ वैराग्य दो प्रकार से आता है ! अत्यन्त त्याग से अथवा अत्यन्त तृप्ति से।'

'यानी तृप्ति से आप मुझ में वैराग्य लाना चाहते हैं ?'

मणि की चतुराई से महाराज प्रसन्न होकर हँसे।

'हाँ जब तक तेरी संसार-सुख की लालसा पूरी न हो जाय।'

'स्वीकार है। लाओ, सामर्थ्य हो तो लाओ एक सुन्दर और गुणवान् पति। मैं सच्चे हृदय से, सतीरूप से उसकी पूजा करूँगी। एक अच्छा बालक दो। उसे गोद में खिला कर आपका यशगान करूँगी।'

'इससे भी अच्छा एक मार्ग है। परन्तु तुम्हें स्वीकार हो तब !'

'क्या ?'

'प्रभु के पास रह कर प्रेमभक्ति से जीवन व्यतीत करो।'

'अर्थात् तुम्हारे पास तुम्हारी स्त्री बन कर रहूँ, क्यों ?'

'इसमें हर्ज ही क्या है ?'

'बहुत ठीक, चलिये मेरे साथ विवाह आप करने के लिए तैयार हैं न ? कल सवेरे ही आपकी दासी बन जाऊँ; है स्वीकार ?' जरा परिहास करती-सी मणि ने पूछा।

'विवाह ! मूर्खा मैं विवाह करूँगा ?'

'तब विवाह किये बिना कोई सुशीला स्त्री पर-पुरुष के साथ इस प्रकार रह कैसे सकती है ?'

'प्रभु-भक्ति सब के लिए दुर्लभ है, यह क्या तू नहीं समझती ?'

'समझती हूँ, किन्तु प्रभु भी तो मिलना चाहिए। यह तो तुमने इतना आडम्बर रच कर लोगों को धोखा देकर गरीब स्त्रियों को फँसाने का धन्धा बना रखा है।'

'क्या कहा तूने ?'

'बिल्कुल सत्य ही तो कह रही हूँ। हाँ ! एक काम करो तो प्रभु मान लूँ।'

'कौन-सा काम ?'

'मणिकर्णिका से विवाह कर लो और उसे प्रत्यक्ष रूप से रखो।'

महाराज सकपका कर उठ खड़े हुए। उनका सुन्दर मुख कुछ विकृत-सा हो गया। चिड़चिड़ाकर बोल उठे—'किसने कहा ?'

'इससे तुम्हें सरोकार ?' कमर पर हाथ रख कर मणि ने कहा।

'हाँ सरोकार है। बता किसने कहा और क्या कहा ?' जरा कठोरता से महाराज ने पूछा। उनकी आँखों में सवेरे उस स्त्री के सामने जैसी भयंकर स्थिरता आई थी वैसी ही आने लगी। मणि का कलेजा धकधक करने लगा। उसने साहस बटोरने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु असफल रही।

'किसी ने भी कहा हो पर......' बड़ी कठिनता से उसने उत्तर दिया।

महाराज मणि की ओर घूर कर देखते हुए उसके पास आ गए।

मणि काँप उठी। वह केवल महाराज की बड़ी-बड़ी आँखों को ही देख रही थी।

'बता किसने कहा ?' भयंकर शान्ति से महाराज ने पूछा।

'किसी ने नहीं !'

'बोल ?'

उसका ज्ञान लुप्त होता जा रहा हो ऐसा उसे ज्ञात हुआ। उसका मस्तिष्क महाराज की इच्छाशक्ति का भार सहन नहीं कर सका। उसे ऐसा लगा कि उत्तर देना ही होगा, उसका मानो गला घुटने लगा।

'बोल ?'

'मणिकर्णिका ने स्वयं कहा।' मणि के मुंह से अपने आप ही यह वाक्य निकल पड़ा।

'क्या कहा ?'

'सब कुछ ।'

दूसरे ही क्षण मानो दबाव हट गया हो मानो दबाई हुई कमानी छटक गई हो। महाराज की आँखों की स्थिरता जाती रही और वे पूर्ववत् हो गई। महाराज का मुखारविंद हँस रहा था।

'बहुत ठीक ! तू सब जानती है; तब व्यर्थ ढोंग किस काम का ? बता, मणिकर्णिका का स्थान ग्रहण कर रहना स्वीकार है ? सब कुछ मिल जायगा।'

'मणिकर्णिका मुझसे क्या खराब है ?' स्वस्थ और गंभीर होकर मणि ने उत्तर दिया।

'राजा को जो पसन्द आ जाय वही पटरानी !' तनिक हँस कर महाराज बोले।

'परन्तु उसने तुम्हारे लिए सब कुछ छोड़ दिया है। घर-द्वार, पुत्र, सब कुछ और तुम उसे आँख की किरकिरी के समान इस प्रकार निकाल बाहर करोगे ?'

'तुझे इससे मतलब ?'

'हाँ जी, हाँ ! ऐसे ही कल मुझे भी निकाल बाहर करोगे तब ?'

'जिसके भाग्य में जैसा बदा होगा वह तो होगा ही।' शान्तिपूर्वक महाराज ने कहा।

'कहते हुए शर्म तो नहीं आती ?' मणि के हृदय से क्रोध उमड़ पड़ा। वह महाराज की अधमता अब तक किसी प्रकार सहती रही थी, परन्तु अब वह आपे से बाहर हो गई। 'ऐसी लम्पटता दिखाकर मेरे मन को वश में करना चाहते हो ?'

'हूँ !' महाराज ने जरा तिरस्कारसूचक हँसी से हँसते हुए कहा।

'मैं तुम्हारी इस प्रकार बाँदी होकर नहीं रहूँगी ? तुमने मुझे अभी पहचाना ही नहीं ?'

'ऐसा ?'

'हाँ ! तुम्हारे जैसों की मेरे पास गिनती ही कहाँ है। धूर्तता से पैदा किये हुए तुम्हारे ढोंग और आडम्बर में फँसने की अपेक्षा तो किसी गरीब

भिखारी के घर पड़ी रहना कहीं अधिक अच्छा है।'

'इससे सिवा कष्ट के और क्या हो सकता है? कोई भिखारी भी तो तुझे अपने घर में नहीं रखेगा।'

'क्यों?'

'पूर्णयौवना विधवा हो इसलिए।' निश्चिन्ततापूर्वक महाराज ने कहा।

'हाँ! ठीक बात है।' व्याकुलता से माथा ठोक कर मणि बोली, 'संसार में ऐसा कोई अधम, पापी चाण्डाल नहीं है जो एक निराधार बिलखती हुई विधवा को रख सके।' तुम्हारे जैसे लम्पटों के भाग्य से ही मेरा नसीब फूटा है।'

'तू चाहे जो कह, यहाँ तू पटरानी के समान सम्मानपूर्वक रहेगी।'

'उसकी मुझे आवश्यकता नहीं है महाराज! मैं भी जिद्दी हूँ। तुम्हारे जैसे कामी कुत्ते भले ही मेरे पैर की धूल चाटें किन्तु मैं तुम पर थूकने भी नहीं आऊँगी। चाहे मर भले ही जाऊँ!'

'जीवन का आनन्द फिर नहीं मिलेगा।'

'कुछ भी तो शरम करो सवेरे। तो बड़ा-बड़ा उपदेश बघारते हो, और इस समय तुम्हारा यह पतन! मुझे सताने से तुम्हें कोई लाभ नहीं हो सकता।'

'तू क्या करना चाहती है?'

'तुम्हारी दुर्गति!'

'मेरी दुर्गति तेरे किये नहीं हो सकती।'

'क्यों?'

'जा करके देख ले न! दरवाजा खुला है। बाहर जाकर कहने पर लोग तुझे ही मूर्खा और पगली समझेंगे। मेरी मान-प्रतिष्ठा अस्पर्श्य है! तू कौन है एक बिलपती हुई कुलटा। और मैं एक बाल-ब्रह्मचारी, महायोगी बालाराम। जो तुझसे हो सके करने तुझे छूट है।'

मणि यह धृष्टता, यह साहस, यह लम्पटता देखकर दंग रह गई। महाराज के एक-एक शब्द उसे सत्य से प्रतीत हुए। साहस छोड़कर अपनी असमर्थता से आँखों में आँसू भरकर, एक ठण्डी साँस लेते हुए अपना सिर झुका लिया।

'जा ! अभी दो-चार दिन विचार कर देख ! तेरी प्रचण्डता से, तेरी तीव्र बुद्धि से मैं प्रसन्न हुआ हूँ। सोचने-विचारने का एक अवसर देता हूँ। दुनिया में जो प्रभुत्व, धन और आनन्द तुझे आज मिल रहा है वह कल नहीं मिलेगा।'

'यह प्रातः प्रवचन में कहना।'

'वहाँ मैं कहता ही नहीं करके दिखाता हूँ। लोगों में समझने की बुद्धि हो हो तब तो !'

मणि इस लुच्चेपन का कुछ भी उत्तर नहीं दे सकी। महाराज ने फिर कहा—'मणि ! जा, जरा विचार कर देख। चल, रास्ता बता दूँ; और सुन ! मणिकर्णिका चाहे जो भी बके उस पर कुछ भी ध्यान मत दे। वह बहुत अधम है।'

'तुम्हारे अधम पैरों की पूजा करके जीती है इसी से ?'

महाराज इस प्रकार आगे बढ़े मानो यह शब्द उनके कान तक पहुँचे ही नहीं।

: १२ :

अपने कमरे में वापस लौट आने पर मणि विचार-सागर में निमग्न हो गई। उसे कुछ नहीं सूझता था कि वह क्या करे। अपने साहस पर भी उसे बड़ा आश्चर्य हुआ। महाराज को ऐसे कटु पर सत्य शब्द सुनाने की धृष्टता पहले शायद ही किसी ने की हो। महाराज में प्रभाव कितना होगा ? अब क्या करूँ ? मणिकर्णिका मिलेगी या नहीं। यदि नहीं आई तो उससे कैसे मिलूँगी ? उसे विश्वास था कि कर्णिका बिना मिले नहीं रहेगी।

मणि को उस पर बड़ी दया आई। उसकी सुन्दर, रूपवान मुखाकृति जब महाराज के प्रभाव से खिचकर जा रही थी उस समय की उसकी शोक-ग्रस्त आँखें बार-बार उसके नेत्रों के सामने नाच रही थीं। वैसे-ही-वैसे महा-

राज के प्रति उसकी घृणा भी बढ़ती गई। इस प्रकार एक घण्टे के लगभग विचार में व्यतीत हुआ होगा कि जैसा उसने सोचा था वही हुआ। कर्णिका हाँफती हुई वहाँ आ ही पहुँची।

'क्यों, क्या हुआ ?'

'कुछ नहीं।' मणि ने साहस से कहा। महाराज से किये हुए द्वंद्व वाक्युद्ध के पश्चात् उसे अपने प्रति अधिक श्रद्धा हो गई थी। साथ ही यह भी विश्वास हो गया था कि उसमें प्राबल्य की कमी नहीं है। 'तुम्हारे महाराज को दो-चार खरी-खोटी सुना आई; शायद कभी उन्होंने ऐसा किसी से सुना न होगा।'

'हूँ हिश ! कहती क्या हो ?'

'हाँ किन्तु तुमसे क्या कहूँ जोर-जुल्म करके तुम्हारा नाम मुझसे कहलवा ही लिया।

'ऐसा ? मुझसे तो कुछ नहीं कहा। इस प्रकार वर्ताव किया मानो कुछ हुआ ही नहीं।'

'कैसा ढीठ है।'

'किन्तु तुमसे कहा क्या ?'

'तुम्हारा स्थान ग्रहण करके यहाँ पटरानी बनकर रहने के लिए।'

'अच्छा !' घबराहट में कर्णिका बोली, 'तुमने क्या उत्तर दिया ?'

'घबरा मत, मैंने अस्वीकार कर दिया। सोने के ही बने हुए तुम्हारे महाराज क्यों न हों मुझे नहीं चाहिएँ।'

'क्या सच कह रही हो।'

'क्या मैंने तुम्हें वचन नहीं दिया था ? मैंने कहा कि मेरे साथ विवाह कर लो तो रहूँ।' कह कर मणि हँस पड़ी। कर्णिका उसका यह साहस देख कर दंग रह गई। 'विचार करने के लिए मुझे समय दिया गया है।'

'तब तुम अभी यहीं रहोगी ?' कर्णिका ने पूछा।

'आज की रात तो यहीं रहूँगी। इस समय जाने से शायद फिर वापस आना पड़े।'

'नहीं, अब महाराज सो गये हैं इससे अब तुम पर प्रयोग नहीं चल सकता।

ध्यानमग्न होते हैं तभी…'

'तब कल प्रातःकाल जाऊँगी। इस समय कहाँ मारी-मारी फिरूँगी।' बीच में मणि बोल उठी।

'परन्तु अगर वह…।'

'कणिका बहन! इतनी स्वार्थी मत बनो। मैं जाऊँगी तो अवश्य; एक रात में ही तुम्हारी कौनसी खर्ची घटी जा रही है।' झुँझलाकर मणि बोली।

'कुछ नहीं!' कहकर कणिका वहाँ से चली गई।

मणि को महाराज के प्रति बहुत अधिक तिरस्कार हो गया था। इस पर भी जब से उसने देखा कि वह उसे शक्ति द्वारा बुला भी सकते हैं तब से वह बहुत घबरा गई थी और वहाँ से तुरन्त भाग जाना चाहती थी।

थकी-माँदी सोई परन्तु निद्रा नहीं आई। बहुत देर तक बिछौने पर वह करवटें बदलती रही। पिछली रात के दो बजे के लगभग कुछ नींद आने लगी। इसी समय उसे ऐसा मालूम हुआ कि कोई खड़ाऊँ पहने हुए आ रहा है। देखने के लिए वह उठने लगी किन्तु उससे उठा नहीं गया, आँख खोलने का प्रयत्न किया किन्तु वह भी नहीं खुली। ऐसा लगा जैसे धीरे-धीरे कोई पास में आया हो—वह महराज ही प्रतीत हो रहे थे। हृदय में महाराज की मूर्त्ति दिखाई दी; परन्तु आँखें नहीं खुलीं। बैठने की इच्छा करने पर शरीर नहीं हिला। मन में धीरे-धीरे अनेकों प्रकार के विचार उत्पन्न होने लगे जो न तो विचारने योग्य थे और न कहे ही जा सकते थे। ये सब विचार मानो कमरे में खड़े होकर महाराज उसके मन में उत्पन्न कर रहे थे ऐसा मालूम हो रहा था। कुछ समय तक यह क्रम चलता रहा फिर किसी के वापस जाने की आहट मालूम पड़ी।

मणि एकदम जाग्रत होकर उठ बैठी और चारों तरफ देखने लगी। केसर की सुगंधि को छोड़कर कमरे में और कोई हेर-फेर नहीं था। उठकर दरवाजे की ओर दौड़ी किन्तु अंधकार में वहाँ कोई दिखाई नहीं दिया। उसकी घबराहट का पारावार नहीं रहा। इतने दिन बाद दरवाजा बन्द करके सोने का विचार आया लेकिन देखती है तो भीतर बंद करने के लिए दरवाजे में कुछ लगा ही नहीं है। मणि लाचार होकर बिछौने पर बैठ गई।

चित स्थिर होने पर उसे विश्वास हो गया कि महाराज ही यहाँ आये थे और वे कुछ प्रयोग चलाकर चले गये हैं। उसने दृढ़ निश्चय कर लिया कि इस आश्रम में रहने में अब कल्याण नहीं है। उसने बड़ी कठिनता से चार घण्टे का समय व्यतीत किया। प्रातःकाल होने पर उसका भय दूर हुआ। उसके जी में जी आया।

नहा-धोकर, रात का बचा हुआ जो कुछ रखा था उसे खाकर, कणिका द्वारा दिये हार को लेकर मणि प्रवचन में गई। आज वह सब स्त्रियों के पीछे जाकर बैठी। उसे पल-पल भारी मालूम पड़ रहा था। उसे ऐसा मालूम हो रहा था कि आज प्रवचन पूरा होगा ही नहीं। आखिरकार राम-राम करके प्रवचन पूरा हुआ। आरती हुई। महाराज भीतर गये; इसके पश्चात् स्त्रियों का झुण्ड जैसे ही बाहर निकला कि उनके साथ वह भी आश्रम से बाहर निकल गई।

'बहन ! चौक किस ओर है ?' एक साथ में जाती हुई स्त्री से मणि ने पूछा।

'बाएँ हाथ को ! शहर में मालूम होता है पहले ही आई हो ?' स्त्री ने पूछा।

'हाँ, रास्ता भूल गई हूँ।' कहकर बताये हुए रास्ते पर आगे बढ़ती गई। थोड़ी देर में ऐसा मालूम पड़ा कि मानो वह चौक पहुँच गई। उसने घूंघट हटाकर चारों ओर नजर दौड़ाई; किन्तु देखने की विशेष आवश्यकता नहीं थी क्योंकि सामने ही एक-एक फुट के नीले अक्षरों में लिखा हुआ 'समाज-उद्धार-सभा' का बड़ा साइनबोर्ड लगा हुआ था। उसके नीचे एक छोटा साइनबोर्ड भी था जिस पर 'मिस्टर मदनलाल मारुति' लिखा हुआ था।

मणि तेजी से तरह-तरह के विचारों में लीन इस प्रकार उस ओर बढ़ी मानो अक्षरों वाला साइनबोर्ड उसके हृदय सागर को पार करने के लिए कोई लम्बा पुल हो—मदनलाल का 'बांये' हाथ में एक गंदी झाड़ू लिये हुए, मुंह में बीड़ी दबाए, सीढ़ी से धूल झाड़ रहा था।

'समाज-उद्धार-सभा का कार्यालय यही है ?'

'क्यों ! सूझता नहीं है ?' कहकर जिस प्रकार कोई तत्त्ववेत्ता थोड़े में

सूत्र लिखे उसी प्रकार 'बॉय' ने साइनबोर्ड दिखाया।

'मंत्री यहीं रहते हैं ?'

'क्या कोई केस है ?' होशियार बॉय ने अपने काम को करते हुए पूछा।

'मैं उनसे मिलना चाहती हूँ।'

'केस है क्या ? हो तो अभी बुला दूं !' मुंह में से बीड़ी निकाल कर अद्भुत चमत्कारक ढंग के साथ नाक में से धुआं निकालते हुए बॉय ने कहा, 'नहीं तो बैठो।'

'बहुत अच्छा, बैठती हूं।'

'ऐसा कहो न, सवेरे के वक्त बेकार कट-कट करती है।' कहकर मणि से बदला लेने के इरादे से उसने जोर से झाड़ू चलाया। मुकदमेबाजों को छोड़कर दूसरों से उसे बेहद चिढ़ थी, क्योंकि वे उसे दो-एक आना देने से मुकरते नहीं थे। दूसरे मिलने वालों के आने से ऐसा मालूम होता था मानो उसके तन बदन में आग लग गई हो।

ऊपर जाकर मणि बैठ गई। अब उसे किसी भी अपमान से क्षोभ नहीं होता था। संसार का व्यवहार उसके प्रति ऐसा कठोर था कि उसकी कठोरता का ज्ञान अब उसके मन में कोई उद्वेग उत्पन्न नहीं कर सकता था।

: १३ :

डाक्टर धनेशचन्द्र सवेरे सात बजे उठकर, नित्यक्रम से निपट कर दवाखाना में चहलकदमी करके, रोगी के अभाव में गहरा विश्वास छोड़ते हुए चौक की ओर चल पड़े। 'समाज-उद्धार-सभा' के सहायक मंत्री होने से उनका मान बहुत बढ़ गया था। यह बात बिल्कुल ठीक होने पर भी शहर के मूर्ख लोगों का मन इस पदवी की ओर जरा भी आकर्षित हुआ हो ऐसा प्रतीत नहीं होता था। डाक्टर का दवाखाना ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। इसका कारण धनेशचन्द्र की समझ में नहीं आ रहा था। वह यथाशक्ति पैदल ही गांव-गांव गली-

गली घूमकर आश्रम व सभा के लिए चन्दा उगाहने का प्रयत्न करते थे। अनाथाश्रम के लिए एक मकान भी किराए पर ले रखा था और इधर-उधर घूमने वाले दो-तीन लड़कों को भी पकड़ कर वहीं रख छोड़ा था, जिससे लोग समझने लगें कि अनाथाश्रम चल रहा है।

धनेशचन्द्र इन सब जहमतों से कुछ ऊब गये थे; साथ ही जनता में यह बात भी प्रसिद्ध हो गई थी कि किसी विधवा से विवाह करने के लिए उन्होंने ही समाचार-पत्रों में विज्ञापन प्रकाशित करवाया है। इससे उनके सगे-सम्बन्धी भी उन्हें नीची दृष्टि से देखने लगे थे। डाक्टर तो ईश्वर से यह प्रार्थना भी करने लगे थे कि शहर में प्लेग या कॉलरा फट निकले जिससे दवाखाने में सड़ने वाली दवाओं का कुछ सदुपयोग तो हो, और उन्हें जनता की सेवा करने का कुछ मौका तो मिले।

डाक्टर धनेशचन्द्र इसी प्रकार के उत्तम और पारमार्थिक विचारों के पुल बांधते हुए चौक की ओर चले। वहाँ अपनी सभा का विशाल साइनबोर्ड देखकर उनकी छाती दूनी हो जाती थी। यदि ऐसे सुन्दर साइनबोर्ड से भी लोग आकर्षित न हों तो···यह विचारधारा यहीं टूट गई क्योंकि इसी समय उन्हें मिस्टर मारुति का बॉय सामने दिखाई पड़ा।

'क्यों, कहाँ जा रहा है? मिस्टर मारुति आगये क्या?'

'नहीं जी बुलाने को जाता हूँ।'

'क्यों, कोई मुवक्किल बैठा है क्या?'

'एक स्त्री बैठी है।'

'हाँ!' धनेशचन्द्र बोल उठे—'अकेली है?'

'हाँ।'

'बहुत ठीक! तुझे जाने की जरूरत नहीं।' कहते हुए डाक्टर दौड़कर ऊपर चढ़ गया।

ऊपर पहुँचते ही उनकी दृष्टि एक युवती पर पड़ी। उसने अपना घूंघट हटा दिया था जिससे उसके हाथ पर टिका हुआ तेजस्वी मुख दमक रहा था। डाक्टर को ऐसा मालूम हुआ मानो चंद्र की सुखद मीठी ज्योत्सना चारों तरफ छिटक रही हो। वह उसे देखकर जरा घबरा गया। बहुत वर्ष पूर्व स्त्री के

मर जाने से, और कुटुम्ब में किसी सम्बन्धी स्त्री से विशेष सम्पर्क न होने एवं स्त्री रोगियों का दवाखाना में अभाव होने से वह स्त्रियों से बातचीत करने में प्रवीण न था। कुछ घबराकर उसने गहरी साँस ली। वह वहीं अचल खड़ा हो रमणी के मुँह को निहारता रहा।

मणि भी डाक्टर को देखकर चौंकी और घूंघट काढ़ सजग होकर बैठ गई।

कुछ समय तक कोई नहीं बोला। डाक्टर सोचने लगा कि पीछे भागने का मौका है अथवा नहीं ?

'आप सभा के मंत्री हैं ?' अन्त में मणि ने ही पूछा।

'हाँ !' बड़ी मुश्किल से डाक्टर ने जवाब दिया।

'यह विज्ञापन आप ही ने निकलवाया है ?'

डाक्टर की घबड़ाहट देखकर मणि का चित्त कुछ स्वस्थ हुआ।

'हाँ, आप कौन हैं ?'

'विधवा से विवाह करने के लिए जो सज्जन तैयार हैं उनका नाम-पता क्या आप कृपा कर बतावेंगे ?'

मणि की मीठी वाणी सुनकर डाक्टर का हृदय पिघल कर पानी-पानी होने लगा। उसने पूछा—

'आप स्वयं ही विवाह करेंगी या आपकी कोई रिश्तेदार अथवा आत्मीय हैं।'

'स्वयं मैं !'

'आपका नाम-पता क्या है ?'

'पुरुष की अपेक्षा स्त्री को नाम बताने में अधिक लज्जा का बोध होता है।' जरा हँसकर मणि ने कहा, 'इसलिए पहले आपके नाम का पता लगे तो मैं अपना भी बताऊं ?'

यह आवाज, यह हास्य, यह शब्द सुनकर डाक्टर का कलेजा बाँसों उछलने लगा। न जाने क्यों शरीर शास्त्र का पूर्ण अध्ययन होते हुए भी सब नियमों को तोड़कर उसके हृदय की बात मुँह से शनैः शनैः प्रकट होने लगी।

'क्या मुझ पर आपको विश्वास नहीं है ?'

'परन्तु मैं आपका नाम भी तो नहीं जानती।'

'ओह ! मेरा नाम डाक्टर धनेशचन्द्र है। मैं यहाँ का प्रसिद्ध डाक्टर हूँ।'

धनेशचन्द्र के मन में अनेकों विचार उदय होने लगे। उसे यह भी ख्याल आया कि मिस्टर मारुति के आने का समय हो गया है। वह अब आता ही होगा और इसे अपने यहाँ लिवा ले जायगा। इस संदेह का निवारण करने के लिए उसने एक उपाय सोचा।

'आपका निवास-स्थान कहाँ है ?' उसने पूछा।

'मेरे घर-बार कुछ है ही नहीं।'

'अच्छा, तब मेरे साथ चलिए, पीछे मैं आपको सब कुछ बताऊँगा :'

'अरे लड़के ?'

'जी !' कहता हुआ बॉय आकर उपस्थित हुआ।

'एक किराये की गाड़ी तो ला बेटा !'

'अच्छा !' कहकर एक साथ तीन-तीन सीढ़ियाँ लाँघता हुआ वह नीचे उतर गया।

'चलिए, जरा भी घबराइये मत।'

चुपचाप मणि उसके साथ चली। अपरिचित पुरुष की शरण में इस प्रकार जाना, उसके साथ इस प्रकार बातचीत करना यह उसकी रही-सही लज्जा को भी ठेस पहुँचा रहे थे; परन्तु साहस से हृदय को कड़ा करके उसने अपने मन को दृढ़ और स्वस्थ बना लिया था। महाराजके शब्द उसके कान में गूँज रहे थे—इस समाज की रचना विचित्र है, इसमें तेरे लिए सुख का निर्माण हुआ ही नहीं है। यह बात अक्षरशः सत्य उतर रही है ऐसा ही उसे प्रतीत हुआ।

डा० धनेशचंद्र एक बड़ी युद्ध नौका की भाँति जो एक व्यापारी जहाज को पकड़ कर शत्रु के बंदर से बाहर निकल रहा हो, मिस्टर मारुति के कार्यालय की सीढ़ियों से नीचे उतर कर बाहर निकले। परन्तु जैसे ही वे बाहर निकले कि सामने ध्वज-पताका फहराती हुई शत्रु की युद्ध-नौका के समान मारुति कोट का बटन खोले, धीरे-धीरे आते हुए दिखाई दिये। उन्हें देखकर डा० धनेशचंद्र घबरा गये। चारों ओर बगलें झाँकने लगे, किन्तु कहीं भी भागने का रास्ता दिखाई नहीं दिया। अंत में साहस करके मणि से बोले—'चलिए, गाड़ी में जा।' बैठइये

'अच्छी बात है !'

किन्तु इसी समय मिस्टर मारुति आ पहुँचे और अपने स्वाभाविक स्वर में बोल उठे—'डाक्टर ! किसे ले चले ?'

'किसी को नहीं !'

'अरे यह क्या कह रहे हो मेरे भाई, इसमें मेरा भी आधा हिस्सा है।'

घूंघट के भीतर अपने ओंठ पर ओंठ दबाकर मणि दांत पीसने लगी।

'तुम भी क्या हर समय बेसमझी की बातें किया करते हो ! यह तो एक नितान्त आवश्यक काम आ पड़ा है।'

'किन्तु बात क्या है ? मैं भी मंत्री हूं या नहीं ?'

'यह तो एक विधवा हैं।' धनेशचन्द्र ने कान में धीरे से कहा—'इनकी व्याख्या करके आता हूँ।'

'अपना विज्ञापन देखकर आई है क्या ?' कहकर मिस्टर मारुति ने मणि की तरफ देखा—'परन्तु तुम ले कहाँ जाओगे ? मेरे घर ले चलो न, यह तुम्हारे घर अकेली कैसे रहेगी ?' कहते हुए मारुति भी छलांग मारकर गाड़ी पर चढ़ गये और गाड़ीवान से गाड़ी अपने घर ले चलने की आज्ञा दी। डाक्टर धनेशचन्द्र झल्लाते और दांत पीसते हुए देखते ही रह गये। मजबूरन साथ चले।

मारुति ने सबको अपने घर ले जाकर बैठक में बैठाया। कोट उतारकर मणि की ओर देखते हुए मारुति ने पूछा—'आप विवाह करना चाहती हैं ?'

'हाँ !'

'आपका निवास स्थान क्या यहीं है ?'

'कौन विवाह करना चाहता है यह समझे-बूझे बिना जवाब कैसे दे सकती हूं ?' मणि ने प्रश्न किया।

उसे इन लोगों से भी घृणा होने लगी थी।

मणि की आवाज से मारुति भी जरा चकराए। उन्होंने कुछ नरमी से पूछा—'परन्तु यह सब प्रबन्ध क्या तुरन्त हो जायगा ? तब तक कहाँ रहियेगा ?'

'अनाथाश्रम में।' डाक्टर ने बीच में ही कहा।

'पागल हो गये हो क्या ? ऐसे एकान्त स्थान में क्या कोई युवती अकेले

रह सकती है ? व्यर्थ की बात है।'

'परन्तु इसमें बाधा ही क्या है ?'

'यह क्या कोई अनाथ है ?' मारुति ने कहा, 'डाक्टर ! जरा भीतर आओ, क्षमा कीजियेगा।'

मारुति और डाक्टर दोनों भीतर चले गये।

'कहो ! बड़ा वास्तविक कार्य करने वाले थे न ! यह बला किसके सर पटकोगे ?' मारुति ने पूछा।

'मारुति ! यह तुम्हारा ओछा व्यवहार मुझे जरा भी पसन्द नहीं है।'

'तुम्हारी पसन्दगी की मुझे भी परवाह नहीं है।' डाक्टर को फटकारते हुए मारुति ने कहा।

'किन्तु अब करोगे क्या ? तुम विवाह करोगे।'

'मैं विवाह करूँगा ? जाओ हटो, क्या बकते हो ?'

'तब तुम्हारे विज्ञापन का क्या होगा ?'

दोनों एक दूसरे का मुंह ताकने लगे।

'कुछ उपाय नहीं करोगे तो इज्जत पर आ बनेगी; समझ रहे हो कि नहीं ? डाक्टर साहब अब घोड़े पर सवार होने के लिए तैयार हो जाओ।' कहकर मारुति हँस पड़े।

'दिल्लगी छोड़ !' जरा भौं चढ़ाकर डाक्टर ने कहा, 'इसे इस समय मेरे यहाँ रहने दो।'

'यह कैसे हो सकता है ? यह तो मेरे ही यहाँ रहेगी। मेरा घर चाहे जैसा भी हो, पर है तो बाल-बच्चे वाला।'

'देखा है, देखा है ! मैं क्या कोई बदमाश, लुच्चा या लम्पट हूं जो मेरे वहाँ रखने में बाधा पड़ रही है ? मेरे घर के पास आश्रम में रहती है, ऐसा लोग समझेंगे। इससे अपनी मान-मर्यादा बढ़ेगी।'

'शट अप ! युवती कभी भी अकेली नहीं रखी जा सकती।'

'अहः ! हः ! बाहरे तेरी आबरू ? मानो मैं तो कुछ जानता ही नहीं।'

इस प्रकार समाज-उद्धार-सभा के दोनों महान् स्तम्भ बातों ही बातों में गाली-गलौच पर उतर आये। एक-दूसरे पर न कहने योग्य आक्षेप करने लगे,

न सुनने योग्य भाषा का प्रयोग होने लगा। इस वाक्-युद्ध ने प्रचण्ड रूप धारण कर लिया। संस्था डगमगाने लगी। समाज के उद्धार की आशा नष्ट होती गई। अन्त में मारुति ने निश्चित रूप से कह दिया कि वह मेरे कार्यालय में आई थी और इस समय मेरे घर में है। इसलिए किसी भी तरह मैं इसे यहां से जाने नहीं दूंगा।

बाहर, इस सब कलह का कारण दुखियारी मणि अपने भाग्य को कोसती हुई बैठी थी। प्रतिक्षण उसके दुःखित मन को यह सब पंचायत और भी कष्ट पहुँचा रही थी। उसका खिन्न मन पल-पल और भी आर्त होता जा रहा था। साथ-ही-साथ उसमें एक प्रकार की उमंग की भी उत्पत्ति हो रही थी। श्रेष्ठ स्त्री-पुरुष जिन प्रसंगों को असम्भव मानते हैं ऐसे-ऐसे अनेक विचित्र अधम प्रसंगों के उठने से अब उसके मन में मरणासन्न व्यक्ति जैसी उपेक्षावृत्ति आ गई थी। उसका क्या होगा? इसकी उसे कुछ भी चिंता नहीं थी। अपनी आशा के फलीभूत न होने का उसे पूर्ण विश्वास हो गया। अब आगे क्या होगा, यह जानने की उत्सुकता थी।

: १४ :

डाक्टर धनेशचन्द्र क्रोध में भरे हुए वहाँ से चले गये। मिस्टर मारुति की स्वाधीनता में अड़ंगा लगाने वाला अब कोई नहीं रहा। अपनी वकालत में घिस-घिस कर तेज बनाई हुई बुद्धि को और भी तेज बना कर वह मणि के पास गये।

'श्रीमती जी, आपका नाम क्या है? अब आप निश्चिन्त होकर यहाँ रहें।'

'मैं यहाँ रहने के लिए नहीं आई हूँ। मुझे तो केवल उन सज्जन से मिलना है जिन्होंने वह विज्ञापन निकलवाया था।

'हाँ! परन्तु आपका क्या कोई सम्बन्धी नहीं है?'

'नहीं।'

'कहीं रहने का ठिकाना भी नहीं है ?' फौजदारी कानून के अनुसार स्त्री अपहरण के अपराध के अन्तर्गत उनका व्यवहार आता है या नहीं इसका विचार करते हुए मारुति ने पूछा ।

'जी नहीं, पर क्या दिन भर यही प्रश्न पूछते रहियेगा या और भी कुछ कीजियेगा ?'

'देखिये जिन सज्जन ने यह विज्ञापन निकलवाया था वह बाहर गये हुए हैं । आज पत्र लिखकर उन्हें बुलाऊँगा । जल्दी करने से आम नहीं पकते हैं ? आप जरा भी नहीं घबराएँ । इस घर को अपना ही घर समझें ।'

'आपके घर वाले क्या कोई आपत्ति नहीं करेंगे ?'

'नहीं, नहीं !' जरा भीतर की ओर झाँक कर देखते हुए मिस्टर मारुति ने कहा, 'और यदि आपत्ति होगी भी तो आपको घबराने की आवश्यकता नहीं है । समाज सुधार के लिए थोड़ा-बहुत अपना स्वार्थ-त्याग तो करना ही पड़ेगा ।'

ये विचार सुनकर मणि का हृदय कुछ प्रसन्न हुआ । दुनिया में स्वार्थपरायणता उसने इतनी अधिक देखी थी कि निःस्वार्थी मनुष्य को देख कर उसका दिल भर आता था । वह कुछ भी उत्तर न दे सकी ।

'आपकी जाति क्या है ?'

'ब्राह्मण ।' मणि ने उत्तर दिया ।

'चलिये उठिये, आपकी भेंट अपनी पत्नी से करा दूं !' कह कर मारुति भीतर चले । मणि भी उनके पीछे-पीछे चली ।

भीतर दालान में बीमार-सी दो लड़कियाँ चिथड़ों की गुड़ियाँ लेकर खेल रही थीं । उन्होंने अत्यधिक काम में व्यस्त गृहिणी के समान सिर ऊपर उठा कर भी नहीं देखा । मदनलाल ने पीछे फिर कर मणि के कान में कहा—'आप किस काम से आई हैं, कृपया यह किसी से मत बताइएगा ।'

'बहुत अच्छा !'

भीतर जैसे ही मारुति पहुँचे मणि के कान में ऊँची, तीव्र और कर्कश आवाज सुनाई दी ।

'देख-देखो, चौके में मत घुसे आओ । दिखाई नहीं देता, मुझे फिर से चौका देना होगा ।'

मारुति का पराक्रम एकदम ठण्डा पड़ गया। वकील साहब का चेहरा उतर गया। उनकी आँखों से दीनता प्रगट होने लगी और सरकारी वकील होने की आकांक्षा रखने वाले शहर के आशावान वकील साहब जिन्होंने अभी थोड़ी देर पूर्व डाक्टर धनेशचन्द्र को दुतकार कर घर से निकाल दिया था, मक्खन के सदृश नरम होकर खड़े रह गये। किसी विद्यार्थी को क्रोध से पूर्ण गुरु के पास जाने से या किसी गुलाम की कुपित मालकिन के पास जाने से जो दशा होती है ठीक वही दशा उस समय मारुति की थी।

'नहीं-नहीं, देखो मैं तो अलग खड़ा हूं।' इस ढंग से मारुति ने कहा मानो जज साहब बिगड़े हों और उनसे वह क्षमा याचना कर रहे हों। 'यह रमणी आई हैं। ये मेरी मुवक्किल हैं, दो-एक दिन यहां रहेंगी।

'बहुत ठीक, इस घर में जो न हो वह थोड़ा है। मैं तो एक खाना पकाने वाली अच्छी, महाराजिन हूं ही। अच्छा परंतु आप इस प्रकार कब तक घूमते रहेंगे ?' गोदावरी ने पूछा।

गोदावरी अधेड़ उम्र की परंतु गृहस्थी के कार्य में निपुण और रीति रिवाज में एक सदी पहले की जीभ की तीखी और तनिक फिरे हुए दिमाग की स्त्री थी। नाक में बड़ी कील, हाथ में बड़े-बड़े हाथी दांत के चूड़े और पांव में पांच-पाँच सेर का कड़ा पहन कर वह अपने अंग की शोभा बढ़ा रही थी। यह सब आभूषण और सिर पर का बड़ा टीका देख कर मणि को अम्बा भवानी की प्रतिमा याद आ गई।

'अभी दस कहाँ बजे हैं ?' बड़ी नम्रता से मदनलाल ने प्रश्न पूछने की धृष्टता की।

'कल रात को अढ़ाई सेर जीम कर बैठे हो न ? इसी से ऐसा मालूम पड़ रहा है। जरा यह भी विचार आता है कि स्त्री बेचारी भूखी होगी ?'

'अच्छा ! कल एकादशी थी, क्यों ?'

'आपको कहां से खबर हो ? आपको दान-पुण्य की परवाह तो है नहीं कि याद रखें ? बारहों महीना, तीन सौ पैंसठ दिन खाना, खाना और पीना बस। 'बहन बैठो।' एकदम मणि की ओर घूमकर गृहणी बोली, 'देखना, मेरे चौके में मत आना। जाइये अब, जरा स्नान कर आइये, पानी काढ़ कर कभी

का मैं रख आई हूँ।'

'मैं तो नहा चुका हूँ।'

'हाँ जी हाँ, और उसके बाद भंगी, चमार, पारसी, मुसलमान न जाने कितनों से हाथ मिलाकर भी आए हो। आपका भी जन्म किसी ऐरी-गैरी जाति में होना चाहिये था; ब्राह्मण के घर में जन्म व्यर्थ ही लिया।'

'तुम कहती हो तो फिर नहा आता हूँ।'

'जैसी आपकी इच्छा! नहीं तो चौके में नहीं बैठाऊँगी। मेरा भी कैसा दुर्भाग्य है कि द्वादशी के दिन भी आपके जूठे पात्र में बैठकर भोजन करने का सौभाग्य प्राप्त नहीं होता। वह क्या कर रहा है?' कहकर मारुति की पत्नी ने आँगन की ओर हाथ बढ़ाया। मणि ने उस ओर घूम कर तीन वर्ष के एक रुग्ण जैसे दिखाई देने वाले बालक को दूध गिरा कर जमीन पर लीपते हुए देखा। इस जबान-दराज स्त्री को प्रसन्न करने के लिए मणि ने दौड़ कर उस बालक को उठा लिया और चौके के पास ले जाकर उसका हाथ धोने के लिए पानी का लोटा उठा लिया।

'हाय! हाय!' कहकर निराशा से गोदावरी ने अपने सिर पर हाथ रखा 'यह गिलास, लोटा वगैरह सब तुमने छू लिया। सब फिर से मांजने पड़ेंगे। भला तुमसे किसने कहा था कि यह सब काम करो?'

बालक को उठाने की शीघ्रता में मणि का घूंघट खिसक गया था, जिससे उसके अनुपम लावण्य से प्रफुल्ल मुखाकृति को मारुति ने देख लिया।

'क्षमा कीजिये, भूल हो गई, मैं सब मांजकर साफ किये देती हूँ।'

'कौन जात हो?'

'ब्राह्मण हूँ।'

'और नाम?'

'मणि।' प्रश्न की परम्परा पर जरा हँसते हुए मणि बोली।

'जाइये न अब! आपको यहाँ बोझ के समान खड़ा रहने के लिए किसने कहा है? नहा धोलें न झटपट और रमण को भी अपने साथ ही नहला देना!' अपने पति पर हुक्म चलाते हुए गोदावरी ने कहा।

'कहिये तो मैं नहा कर आ जाऊँ।'

'नहीं, मुझे किसी की सहायता की जरूरत नहीं है। जाओ, अगर कुछ करना हो तो बाहर लड़कियाँ बैठी हैं उन्हें नहला दो।'

'बहुत अच्छा ?, कहकर मणि बालक को मारुति के पास बैठाकर लड़कियों के पास गई। बड़ी कठिनता से गुड़ियाँ छुड़ा कर उन्हें आँगन के भीतर चौक में ले गई। इतने में मिस्टर मारुति झटपट स्नान करके चौके में रखे हुए पटरे पर जा विराजे। उनके पुत्र ने रोते-चिल्लाते स्नान किया और मचलकर वह अलग जा बैठा। भोजन करने से भी इन्कार कर दिया।

'जरा इसे झवला तो पहना दो। बीमार हो जायगा तो दवा-दारू के लिए भी पास नहीं फटकोगे।'

मारुति ने तुरन्त आज्ञा का पालन कर दिया।

गोदावरी भोजन परोसती गई और अवसर का लाभ उठाकर अपने पति को शिक्षा देती हुई भाषण भी करती गई। मारुति चुप-चाप सदा की भाँति सब सुनते रहे।

'आपको जरा भी विचार नहीं होता कि थोड़ा भगवान का नाम भी स्मरण करना मनुष्य के लिए आवाश्यक है। पढ़-लिखकर भी ज्यों-के-त्यों ही रहे। देखना ? खाने मत लग जाना। मुझे अभी आरती उतारनी है।'

मारुति लज्जा से नीचे देखने लगे। गोदावरी ने एक आरती में कपूर पहले से ही संजोकर तैयार रखा था। जलाकर वह मारुति की आरती उतारने लगी।

मणि खड़ी-खड़ी यह देख रही थी। संसार सुधारकों के सम्बन्ध में उसने बहुत कुछ सुना और पढ़ा था किन्तु देखने का अवसर उसे पहले पहल आज ही मिला। इतने में मणि की दृष्टि मारुति के पुत्र पर जा पड़ी। वह खिसकते खिसकते पानी गरम करने के चूल्हे के पास चला गया था और जमीन पर पड़ी हुई एक चिन्गीरी पर उसके झवले का छोर पड़ग या था जो शनैः शनैः जल उठा और उसमें से धुआँ निकलने लगा।'

'अरे जरा देखो देखो ? बालका का झवला जला।' मणि ने चीख कर कहा।

उसी समय झवला प्रज्वलित हो उठा। मारुति बिचारे शायद समाज-उद्धार सभा के विचार में तल्लीन थे जिससे उसके कथन का अर्थ न समझ कर इधर

उधर देखने लगे। गोदावरी आरती छोड़ दूँ या नहीं, यही सोचती हुई धर्म संकट में खड़ी रही। मणि आँगन में से कूदकर गोदावरी के चौके में से होती हुई दौड़ी और पास में ही रखे हुए पानी को उठा कर उसने बालक के झबले पर उँडेल दिया। बालक रो उठा—मारुति उठकर खड़े हो गये, गोदावरी की आरती बुझ गई, दोनों लड़कियाँ कारण समझे बिना कोई गम्भीर घटना हो गई है ऐसा समझ कर जोर-जोर से चिल्लाने लगीं।

'लीजिये, बड़ा भाग्य था जो बच गया।' मणि ने कहा।

मुटका पहने हुए है इसका विचार किये बिना मारुति ने पुत्र को गोद में ले लिया। तीनों बच्चों की चिल्लाहट इतनी भीषण थी कि किसी की समझ में नहीं आया कि क्या किया जाय।

'अरे, तुम सब मर रही हो क्या ?' गोदावरी ने चीत्कार कर कहा। लड़कियाँ चुप हो गई।

'लाओ बहन ! लड़का मुझे दे दो और तुम नहा कर जरा भोजन परोस दो। रमण ऐसे चुप नहीं होगा। मेरे लिए तो द्वादशी और तेरस सब बराबर हैं। मेरा भी कोई जीवन है ? ये सब मर भी नहीं जाते।' बालक को संबोधन करके गृहणी बोली, 'यह लड़का है या कोई देव ?'

'बिचारा बच गया, उस पर अब बक क्या रही हो ?' धीमे स्वर में बुरा न लगे इस प्रकार मारुति ने कहा।

'तुम्हें इससे सरोकार। इसने छू लिया तो अब तुम बिना नहाये न खाओगे। अब तुम भर पेट खाओ न, मैं तो कहते-कहते थक गई।'

थोड़ी देर में मणि नहाकर आ गई और मारुति को भोजन कराने लगी। मारुति का हृदय पुत्र की रक्षा हो जाने से भर गया था। जिससे वह चुपचाप भोजन करने लगे। भोजन करके उठने पर आर्द्र नेत्रों से मणि की ओर देखते हुए वह बोले, 'बहन ! आज तुमने मुझ पर जो अनुग्रह किया है, उसे मैं कभी नहीं भूल सकता।'

ऐसा स्नेह-पूर्ण सम्बोधन जीवन में मणि ने आज प्रथम बार सुना था। इसलिए इन शब्दों को सुनकर उसकी आँखों में भी आँसू आ गये।

मारुति के कोर्ट चले जाने के बाद लोगों की अशुद्धता पर बड़बड़ाती हुई

गोदावरी ने फिर से नहा-धोकर अलग खिचड़ी बनाकर भोजन किया। पुत्र के बचाने पर उसने भी मणि का आभार माना। मणि को शांति मिली। उसने सोचा कि इस प्रकार यदि जीवन बीत जाय तो कैसा अच्छा ? फिर उसने एक गहरी साँस ली। भला उसका ऐसा भाग्य कहाँ ?

: १५ :

डाक्टर धनेशचन्द्र पहले तो एकदम सीढ़ी से उतर गये; फिर पुनः ऊपर चढ़ने का एकबारगी साहस हुआ परन्तु मारुति के डर ने उन पर अपना पूर्ण आतंक जमा लिया। पुलिस का विचार आया लेकिन किस अपराध के लिए यह समझ में नहीं आया। कोई आधुनिक परशुराम पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन करने का संकल्प करे, ऐसे दृढ़ निश्चय के साथ मदनलाल से पक्का बदला लेने का डाक्टर ने पक्का विचार करके एक बार नहीं, अनेक बार भौंहें चढ़ाई परन्तु कोई देखने वाला ही न था। जीवन का हनन करने वाली मुट्ठियाँ बँधीं, किन्तु वहाँ पर ऐसा कोई उपस्थित ही न था जिस पर उसकी परख की जा सके।

निराशा और विफलता से पैर पटकते हुए, साधारण शब्दों में कहा जाय तो शीघ्रता से डाक्टर चला। धरती काँप उठी और नये विचारों की सृष्टि हुई। डाक्टर तरफ़दास के मकान की ओर मुड़ा, महारथी अर्जुन श्रीकृष्ण की सहायता माँगने के लिए चले।

यह श्रीकृष्ण भगवान अपनी छोटी सृष्टि में लीला कर रहे थे। कोट उतार कर, कमीज की आस्तीन चढ़ाकर, धोती का कछाड़ा मारकर तरफ़दास प्रेस के रोलर के अटक जाने का कारण समझने की चेष्टा कर रहे थे। डाक्टर पहुँचा और छापाखाना के नौकरों की कुछ परवाह न करके तरफ़दास को एक ओर बुलाकर सब कुछ कह गया। परन्तु बड़ी शीघ्रता से एक साँस में सब बातें कहने के कारण तरफ़दास की समझ में कुछ भी नहीं आया; दो-तीन बार दोहराने पर वह कुछ समझ सके। वे भी सुनकर क्रोध से लाल

हो गये। स्त्री बड़ी सुन्दर है, यह सुनते ही जीभ से मानो लार टपक पड़ी। उनकी रसिकता छलकी और उसके छलकते ही उनके क्रोध का पारा १०८ डिग्री पर पहुँच गया।

तरफड़दास ने पहले सोचा कि 'वकील की करतूत' शीर्षक देकर सब घटना अपने 'मार्तण्ड प्रकाश' में प्रकाशित कर दें, परन्तु साथ ही साथ इनसे सभा की बदनामी होगी और शायद मौका पाकर मारुति भी कानूनी कार्रवाई न कर बैठे इस डर से उसने इस विचार को छोड़ दिया।

'कोई चिन्ता नहीं है मित्र! चलो, रायसाहब के पास चलकर सभा की कार्यकारिणी समिति की बैठक बुलायें। इसने अपने मन में समझ क्या रखा है?'

'बहुत ठीक!' डाक्टर ने पूर्ति की—'ऐसी स्वार्थपरता! इस देश का क्या होने वाला है? न जाने लोग लोक-शासन की पद्धति कब सीखेंगे? जरा सी प्रभुता मिली कि सर पर छप्पर उठा लेते हैं।'

'यह तो मैं पहले से ही जानता था मारुति बड़ा पक्का बना हुआ घाघ है। बहुत अच्छा, पर इसे भी मजा चखा कर छोड़ूंगा। जरा नीचे आकर भी बोले तभी तो बात है! चलो गम्भीरलाल के पास।'

इस प्रकार विचार-विमर्श करते हुए दोनों नेता मारुति से लड़ने का साहस कर बाहर निकल पड़े।

: १६ :

तीसरे पहर मारुति आज कोर्ट से कुछ जल्दी ही चले आये। उनका सदैव स्वस्थ रहने वाला मस्तिष्क आज अस्वस्थ हो गया था। सच तो यह है कि पुत्र की रक्षा करने से मणि की ओर उनका चित्त कुछ आकृष्ट हो गया था और उसे किसी ठीक रास्ते पर लगाने के विचार से घर आते ही मणि को बुलाकर कहा—'बहन! बताओ अब क्या करना है?'

'क्यों ? आप नाम बतावें तो उन सज्जन से जाकर मिल लूँ, और क्या…?'

'देखो !' जरा नम्रतापूर्वक बातचीत का रुख बदलते हुए वह बोले, 'मैं सच्ची बात कहूँ ? स्वयं अपने पर मुझे घृणा हो रही है।'

'क्यों भाई ?'

'हमने जो विज्ञापन निकलवाया था वह बिल्कुल झूठा था। हमें तो इसी बहाने थोड़ा-बहुत यश लूटना था। हमें विश्वास था कि कोई विधवा—' कहकर वह रुक गया।

'मैं समझ गई !' मारुति से जो कुछ नहीं कहा गया उसे समझकर मणि ने कहा।

'हाँ, अब सच मानो अपने किए का बड़ा खेद है। आप कहती हैं कि आपका कोई नहीं है, बताइये क्या किया जाय ?'

मणि का हृदय रो उठा, अब वह कहाँ जाय ? लोगों की मूर्खता की वह भोग्य सामग्री बनी। वह चुपचाप देखती रही।

'आप जरा भी घबड़ाएँ नहीं।' मारुति ने साहस देते हुए कहा, 'मैं आपको दुःखी अवस्था में नहीं रहने दूँगा। इस प्रकार घर-बार छोड़कर दूसरे ठिकाने आने में आपको जो कष्ट हुआ उसे मैं भली-भाँति समझता हूँ।'

'अब कोई विवाह करने वाला है ही नहीं ?' अतिशय दुःखित स्वर में मणि ने पूछा।

'बहन ! आपको अनुभव नहीं है। अपने समाज में भले आदमियों का मिलना बहुत कठिन है। कोई टटपुंजिया मिले भी तो वह व्यर्थ है। इसकी अपेक्षा तो कहीं एकांत में रहकर प्रभु का भजन करना कहीं अच्छा है।'

ओंठ पर ओंठ रखे हुए मणि खड़ी सब सुनती रही। कुछ देर बाद वह बोली—'प्रभु का भजन ! किसलिए ! प्रभु ने मुझे इस प्रकार दुःखी रखा, अब मुझे चिन्ता किस बात की है ?' उसकी आँखें चमक उठीं सामने बैठा हुआ मारुति उसका यह आवेश देखता रहा।

'आपके, साहस की बलिहारी है बहन पर यह सब निरर्थक है। अपने यह सब सुधारक तो एक नम्बर के ढोंगी हैं।' कहकर अचिन्त्य विचारों के आ जाने

से एक बार मारुति की दृष्टि भीतर की ओर गई।

'हाँ ! एक रास्ता है।'

'क्या ?'

'धनेशचन्द्र से बात करता हूँ, उसकी स्त्री मर गई है। उसमें साहस हो तो विवाह कर सकता है; पर मुझे आशा नहीं है कि वह इतना साहस कर सकेगा।'

'देखो 'निराशा से मणि ने कहा, 'दुनिया में पुरुषों को सब कुछ शोभा देता है; मुझे तो कुछ होने जाने की आशा नहीं है। मेरा भाग्य, मैं भी दुःख झेलते-झेलते बेपरवाह होती जाती हूँ।'

'नहीं घबराओ मत ! यथाशक्ति मैं तुम्हारे खाने-पीने का प्रबन्ध कर दूँगा।'

'भाई ! इसकी तनिक भी चिन्ता नहीं है ! आप मुझे पहचान नहीं रहे हैं। जहाँ तक सांसारिक सुख भोगने का स्वप्न देखती हूँ, जहाँ तक विवाह करने की धुन लगी हुई है वहाँ तक ठीक है; नहीं तो मुझमें सब कुछ करने की शक्ति है। भोजन'''जब तक ये दो हाथ हैं तब तक क्या दो रोटी नहीं मिलेंगी ?'

मारुति यह भाषा, यह जोश देखता ही रह गया। उसके मनोराज्य में स्त्रियों के आदर्श का निर्माण गोदावरी की चाल-ढाल, आचरण और रहन-सहन से बहुत कुछ हुआ था जिससे मणि की बात सुनकर वह दंग रह गया। उसका हृदय कुटुम्ब-वत्सल था; अपनी पत्नी से वह, चाहे जैसी भी हो प्रेम करता था फिर भी उसके मन में विचार उत्पन्न हुआ कि यदि किसी जादू से मणि गोदावरी में परिवर्तित हो जाय तो बड़ा अच्छा हो।

'अच्छा ! तुम जरा यहाँ बैठो मैं डाक्टर से मिलकर आता हूँ।' कहकर मारुति वहाँ से चला गया। सबेरे की कहा-सुनी के कारण डाक्टर से भेंट करने के लिए जाने की उसकी जरा भी इच्छा नहीं हो रही थी। केवल मणि के लिए वह गया।

मारुति डाक्टर के यहाँ पहुँचा। वह उस समय डाक्टर गम्भीरलाल से मिलकर बस आये ही थे। मारुति को देखते ही वह फिर झुंझला उठे।

'मेरे प्यारे डाक्टर ! क्षमा करो।' मारुति ने हमेशा की तरह कहा—
'सवेरे मैं जरा गरम हो गया था भाई !'

डाक्टर ने क्रोध का पूर्ण रूप प्रकट किया; पर अच्छी प्रकार प्रदर्शित न कर सकने के कारण वह झल्लाई हुई स्त्री के समान चुपचाप मारुति की ओर देख रहा था। मारुति अपने वाक्-चातुर्य से काम लेता रहा। आखिर डाक्टर बोला—'पर मैं कैसे भूल सकता हूं ? मुझ जैसे मनुष्य पर आक्षेप किया गया। झूठा आक्षेप ।'

'परन्तु भाई मैं क्षमा तो मांग ही रहा हूँ—अब क्या फांसी पर ही चढ़ा दोगे ? अगर तुम्हारे वश की बात हो तो वह भी कर दो। पर मेरी बात तो जरा सुन लो।'

'ऐसे निःस्वार्थ सुधार के काम में इतना द्वेष ! मैं कभी नहीं भूल सकता।' कहकर कुर्सी पर पीठ के बल हो सिर उठाकर वह छत की ओर देखने लगा।

मारुति को उसे एक तमाचा मारने की इच्छा हुई, पर मन को बड़ी कठिनता से संयत कर वह बोला—'भाई ! जो कुछ हो गया सो हो गया ! अब इस स्त्री का कुछ ठौर-ठिकाना लगाना है अथवा इसी प्रकार उसकी भी दुर्दशा करनी है ?'

'मैं क्या जानूं ? मैंने अपने अध्यक्ष रायसाहब से सब कुछ कह दिया है। उन्हें जो समझ पड़ेगा करेंगे। मुझ पर अब कुछ भी उत्तरदायित्व नहीं रहा।'

'अरे बहुत कुछ है ! घबराते क्यों हो ? अब इस स्त्री के लिए कोई अच्छा वर बताओ।'

'अब मैं क्या करूं ? मेरे हाथ में उसे रहने देते तो सब ठीक था। तुमने मेरा अपमान किया है मेरा ! मेरा !' कहकर डाक्टर ने टेबुल पर जोर से हाथ पटका।

"किन्तु जैसे कहो क्षमा मांग लूं परन्तु कुछ बात भी सुनोगे ?'

'ऐसा !'

'हां ! मैं यही बात तो करने आया हूं।'

'बहुत ठीक ! तब उसे एक क्षमा-याचना पत्र के साथ मेरे यहां भेज दो, है स्वीकार ?'

'ओहो ! बस इतना ही ! ठीक, क्षमा-याचना पत्र चाहे तो पाँच लिखकर भेज दूं और स्त्री को भी भेज दूं। पर एक शर्त है ! इसके साथ विवाह करना स्वीकार करो तब !'

मानो सिर पर बिजली गिरी हो, इस प्रकार एकदम डाक्टर चौंककर खड़ा हो गया। उसे ऐसा मालूम पड़ा कि मारुति पागल हो गया है।

'क्या ?'

'तुम विधुर हो, कोई अधिक सगे-सम्बन्धी भी नहीं हैं। सुधारक हो। साथ ही कुछ वास्तविक काम भी करने के लिए उत्सुक हो।' वकील ने सब कारणों को बताते हुए कहा।

'क्या बकते हो ? तुम्हारा वास्तविक काम गया जहन्नुम में !'

'अरे, पर तुम तो पढ़े-लिखे हो। मूर्ख के समान ऐसा घबराते क्यों हो ? जरा हिम्मत से काम लो।'

'अर्थात् मैं गधा बनूं। विधवा से विवाह करके मुंह में कालिख पोत लूं।'

'भाड़ में गया तुम्हारा समाज-सुधार ! बड़े-बड़े सुधारकों के पुछल्ले तो स्वयं विधवा से विवाह करते नहीं और मैं करूं ? यह बात जाने दें महाराज ! क्या आप मुझे यहाँ इस समय मूर्ख बनाने आये हैं। वकील साहब ! अपना वास्तविक काम आप अपने पास रखें।'

'परन्तु भाई ! यह तो जो तुम कह रहे थे, वही मैं दुहरा रहा हूँ। वास्तविक काम के हिमायती तो तुम्हीं थे। अच्छा ! तब उस स्त्री को तुम्हारे पास कैसे भेज दूं ? जरा विचार करके देखो।'

'मारुति ! तुम सीधे आदमी हो, इससे तुमसे सीधी बात करूंगा।' कहकर अपनी आवाज को डाक्टर ने धीमी कर दिया, 'उस स्त्री के साथ मैं विवाह तो नहीं कर सकता परन्तु वह मेरे घर में आकर भले ही रह सकती है। मैं उसे भोजन दूंगा, कपड़ा दूंगा और चाहो तो अपना दो हजार का बीमा भी उसके नाम कर दूंगा।'

डाक्टर का आशय समझ में आते ही मारुति का चेहरा क्रोध से लाल हो गया। किन्तु उसने अपना क्रोध पीकर कहा—'यह मैं नहीं जानता। उससे पूछ कर कुछ जवाब दे सकता हूँ।'

'उससे क्या पूछना है ? भेज दो उसे मेरे घर। यह तो तुमने अपने घर पर रख लिया इसी से सब हुआ नहीं तो कभी का यह काण्ड समाप्त हो गया होता।'

'यह नहीं हो सकता। वह स्वीकार करेगी तो ठीक है नहीं तो मेरे घर तो वह है ही।'

'क्यों मारुति ! तू भी नीयत बिगाड़ बैठा है क्या ?'

'खबरदार ! जरा मुंह सँभाल कर बातें कर।' मारुति क्रुद्ध होकर बोला, 'अच्छा अब मैं जाता हूँ।'

खिन्न हृदय से मारुति वापस घर आया।

मणि उसकी बाट जोहती हुई बैठी थी। मारुति ने आकर यथाशक्ति बहुत कुछ सफाई से बात बनाकर सब हाल कहा। सुनते ही मणि का मिजाज बिगड़ गया। उसकी आँखों में खून उतर आया; उसकी छाती क्रोध से फूलने लगी।

'दुनिया भर के इन पददलितों ने समझ रखा है कि मुझ निराधार स्त्री की उत्पत्ति अपनी माँ की कोख से हुई ही नहीं है ! सभी ऐसी ही बातें करते हैं ?'

'बहन किया क्या जाय ? अपने समाज का संगठन ही ऐसा बेढंगा है।'

'बहुत ठीक ! तब मैं इस समाज को भी दिखा दूंगी कि मैं क्या कर सकती हूँ।' मारुति उसका यह रौद्र रूप देखता ही रह गया।' तुम लोगों के लिए तो मैं सड़क पर सबकी ठोकर खाने वाली कंकड़ हूँ !'

'बहन ! समाज की रीत माननी ही होती है। ऐसा किए बिना छुटकारा नहीं होगा।'

'यदि छुटकारा नहीं ही होगा, यदि संसार के पापी मुझे शांतिपूर्वक नहीं ही रहने देंगे तो मैं अपने यौवन को, तन को बेचूंगी—किन्तु तुम्हारे डाक्टर जैसे कापुरुषों के हाथ नहीं। मैं बेचूंगी तो सारी दुनियां को खरीद लूंगी। मेरा वश चले—मेरा यदि वश चलेगा तो पुरुष मात्र को अपने पैरों तले रौंद डालूंगी। तुम्हें अच्छे लगने वाले नियम तुम्हें रुचने वाला संसार, और तिस पर भी तुम्हारी ही रुचि के अनुसार मैं अपने अस्तित्व को बेच दूं क्यों, किसलिए ? एक टुकड़ा रोटी खाकर तुम्हारी गुलामी करने के लिए ? ठीक है भाई मैं अपना प्रबन्ध स्वयं कर लूंगी।'

'नहीं, बहन ! अकेले ऐसा करने की आवश्यकता नहीं है। जरा ठहरो, देखो क्या होता है। कहो तो रायसाहब से कहकर किसी पाठशाला में अध्यापिका का पद दिला दूं। अकेली रह सकती हो ?'

'अच्छी बात है, देख लो।' दुःखी होकर मणि ने कहा, 'जो हो जाय सो ठीक है। चाहे जितना परिश्रम करो; मुझे तो कुछ होता जाता दीखता नहीं।'

'क्यों ?'

'मेरे भाग्य में नहीं है इसलिए और क्यों !'

'इतने में एक चपरासी ऊपर आया।

'क्या है ? तुम रायसाहब के चपरासी हो न ?'

'जी हां, रायसाहब ने यह चिट्ठी दी है।'

'लाओ दो।' मारुति ने पत्र लेकर खोला, पढ़ते ही उनका चेहरा उतर गया।

'बहन ! यह डाक्टर चैन नहीं लेने देगा।'

'क्यों ?' दारुण दुःख से उत्पन्न बेपरवाही से मणि ने पूछा।

'कल सन्ध्या समय समाज-उद्धारिणी-सभा की कार्य-समिति की बैठक बुलाई गई है। रायसाहब ने तुम्हें लेकर मुझे वहां लाया है।'

'किसलिए ?'

'मुझसे जवाब तलब करने के लिए। यह उस डाक्टर और तरफडदास की कारस्तानी है।'

'क्या तुम पर डांट पड़ेगी ?'

'देखा जायगा ? मैं सबको इन सबको मजा चखाऊँगा, घबराओ नहीं।'

: १७ :

रायसाहब गम्भीरलाल अपने दीवानखाने में एक आरामकुर्सी पर स्वयं लेटे हुए थे। उनके सुन्दर मुख से उत्सुकता झलक रही थी। गत दो दिनों की बातचीत से उन्हें जरा आनन्द आ रहा था। एक सुन्दरी, निराश्रय युवती

आकर इस प्रकार गली-गली की ठोकर खाए और उस सम्बन्ध में न्याय करने का भार स्वयं उन्हें मिले ? यह उनके लिए बड़ी ही संतोषजनक समस्या थी। उन्हें बहुत प्रकार की शिक्षा मिली थी। वे रसज्ञ और सौंदर्य-प्रेमी भी थे, भिन्न-भिन्न प्रकार के शारीरिक सौन्दर्य पर विशेष ध्यान देने की उनकी आदत थी। यह युवती किस श्रेणी की होगी डाक्टर धनेशचन्द्र द्वारा की गई प्रशंसा किस सीमा तक सत्य निकलेगी ? इस समय इन्हीं सब विचारों में वे निमग्न थे।

इतने में नौकर ने कुछ जलपान लाकर रखा जिसे खाकर, पान जमाया और साढ़े सात की बाट जोहते हुए बैठ गये।

'मधु !'

'जी !'

'यदि मदनलाल मारुति अपने साथ कोई स्त्री लेकर आयें तो अन्दर के रास्ते ले जा कर बगल के कमरे में बैठाना।'

'जी हजूर !' कहकर नौकर चला गया।

सवा सात बजे उठ कर वह शीशे में अपना चेहरा देखने लगे। अपने ऊँचे रूपवान शरीर का उन्हें बड़ा ही अभिमान था।

इस के बाद ही तरफड़दास और धनेशचन्द्र पहुँचे। यथार्थ और सच्ची बात छिपाकर, मारुति उनकी खुशामद करने आया था यह कह कर धनेशचन्द्र मारुति की हँसी उड़ाने लगे। थोड़ी देर बाद अंग्रेजी स्कूल के हेडमास्टर, मामलतदार और आफ़िस के कार्य-कर्त्तागण आ धमके। ठीक साढ़े सात बजे शराब के ठेकेदार प्रतिष्ठित पारसी नसरवानजी आये। शायद लोग समाज-उद्धार सभा को केवल हिन्दुओं की संस्था कह दें, इसी अपवाद से बचने के लिए और इसके संचालक बड़े ही विशाल हृदय के हैं यह रौब जमाने के लिए मिस्टर नसरवानजी को कार्यसमिति में स्थान दिया गया था। फल की डाली अथवा दूसरे उपहार पहुँचाये बिना राय साहब के यहाँ बार-बार जाने-आने का सुअ-वसर मिलेगा, इसी विचार से इन उत्साही सज्जन ने उस पद को बड़े ही आदर पूर्वक स्वीकार भी कर लिया था। इसी समय पास ही से मारुति की सदैव के समान हँसती हुई आवाज सुनाई दी—'कहिये रायसाहब ! भीतर आ सकता हूँ क्या ?'

रायसाहब के तेज कान में किसी के भीतर आने की आवाज आई। उन्होंने सोचा कि कोई मुजायका नहीं है।

'आइये मिस्टर मारुति।' गम्भीर स्वर में रायसाहब बोले।

मिस्टर मारुति हँसते हुए और सबको अभिवादन करते, कोट का बटन सदा की भाँति खुला रखे हुए रायसाहब के पास आकर बैठ गये।

'कहो भाई ! आज सहसा इस प्रकार समिति का अधिवेशन करने का क्या कारण हुआ ? मेरे नाम कोई वारण्ट वगैरा तो नहीं निकलवाया है ?'

'सीधी तरह से यदि लोग नहीं मानेंगे तो वह भी करना होगा।' मिस्टर तरफड़दास ने व्यंग किया। रायसाहब ने उनकी ओर जरा आँखें तरेर कर देखा जिससे वे चुप हो गये। तब गम्भीरलाल ने कहा, 'मिस्टर मारुति ! आपके लिए हम लोगों के हृदय में स्थान है, हम आप पर किसी प्रकार का आक्षेप करना नहीं चाहते, किन्तु आपने कुछ काम ऐसे किये हैं जिनके सम्बन्ध में इस समिति को कुछ समझने की आवश्यकता आ पड़ी है।'

'मैं सब कुछ समझाने के लिए, सबको यथेष्ट उत्तर देने के लिए प्रस्तुत हूँ।' मारुति बीच ही में बोल उठे।

उन्हें बीच में बोलने से रोकने के लिए गम्भीरलाल ने हाथ उठाया।

'कार्यसमिति को स्पष्टीकरण की आवश्यकता है।' वे गम्भीरता से एक न्यायाधीश को शोभा देने वाली शान्ति और प्रभुता से बोल रहे थे—'आप एक सहायक मन्त्री के अधिकार से' अत्याचार करके एक स्त्री को जो समाज-उद्धार सभा का आश्रय ग्रहण करने के लिए आई थी, उसे अपने घर लिवा ले गये हैं एवं उसे अपने यहाँ किस अधिकार से तथा किस प्रकार रखना चाहते हैं यह पूछने पर आप कुछ बताने मे इन्कार करते हैं, क्या यह सच है ?

'बिल्कुल झूठ !' मारुति ने चिल्ला कर कहा। जिन सदस्यों को यह बात मालूम नहीं थी, उनकी उत्सुकता बढ़ी। वे ध्यान-पूर्वक सुनने लगे।

'खामोश रहो ? मैं इतनी गहराई में नहीं उतरना चाहता।'

'जैसी आपकी इच्छा ?'

'मैं चाहता हूँ कि उस स्त्री को आप इसी समय समिति के सुपुर्द कर दें।'

'यह बात उतनी सरल नहीं है जितनी आप सब सज्जन समझ रहे हैं।

वह स्त्री पहले मेरे कार्यालय में आई थी।'

'आपका कार्यालय ? वही सभा का भी तो कार्यालय है।'

'बहुत ठीक ? एक युवती डाक्टर धनेशचन्द्र जैसे अस्तबल की भाँति घर में···।'

'सभापति महोदय ! मैं एक आर्डर अथवा नियम का प्वाइण्ट उठाता था तो मेरा ऐसा अपमान किया गया ?' कहकर डाक्टर धनेशचन्द्र हास्यजनक रीति से गम्भीरलाल को सम्बोधन करते हुए अपना हाथ बढ़ाकर खड़े हो गये।

'जिसे स्त्री न हो उसे किसी की सुरक्षा का भार किस प्रकार दिया जा सकता है। इसमें अपमान क्या हो गया ?' मारुति ने फिर पूछा --'है स्त्री ? बोलो !'

'आर्डर, आर्डर !' की की एक-दो आवाजें धीमे-से सुनाई दीं।

'आप अपनी बात पूरी कीजिये। जब तक ये अपनी बात पूरी न कर लें तब तक बीच में कोई न बोले।'

'किन्तु महोदय यह तो ऐसी बातें कहते हैं जो असहनीय हैं।' डाक्टर ने फिर कहा।

'तो कृपया आप उठ कर बाहर चले जाइये !' मारुति ने शान्ति से कहा।

वह ऐसी चुभती बातें कहने में बड़ा कुशल था।

'जी हाँ ? ऐसी स्त्री एक कुटुम्ब वाले के घर ले गया तो इसमें मैंने कौन-सा अपराध कर दिया ?'

'इसके बाद ?'

'इसके बाद क्या ? आप मेरे मित्र से ही क्यों नहीं पूछते। सज्जनो ! यह जो विज्ञापन दिया गया था इन्हीं की प्रेरणा से ? ये कुछ वास्तविक काम करने वाले थे इसलिए मैंने सोचा कि इन्हें अपने लिए इस प्रकार का कुछ विचार होगा। इस रमणी के आने के पश्चात मैं इनके घर गया। हाथ-पैर जोड़ा और कहा कि जीवन में सत्य भावना सिद्ध करने का अच्छा अवसर हाथ लगा है। समाज-सुधार की विजय-पताका वास्तविक कार्य करके फहराने का अच्छा मौका आ गया है। मैंने इनसे विवाह कर लेने की प्रार्थना की। स्त्री सुन्दर है, अच्छे कुल की है, पढ़ी-लिखी है। सज्जनो ! यह मेरे महान सुधारक

वास्तविक काम करने के हिमायती, नवीन युग के मार्टिन ल्यूथर ने साफ शब्दों में अस्वीकार कर दिया। यह सब इस समिति की जानकारी के लिए मैं कह रहा हूँ; और भी कहूँ? डाक्टर! है आज्ञा, पीछे कहोगे कि बेइज्जती की।' मारुति की चाबुक के समान तेज जीभ के आगे धनेशचन्द्र इस प्रकार पीछे दबक पर बैठ गया मानो ठण्ड से काँप रहा हो। क्या जवाब दूं, यह उसकी समझ में नहीं आया। उसके होंठ सूख कर सफेद हो गये।

'मेरी आज्ञा?' उसने बिना समझे हुए पूछा।

सब लोगों की जिज्ञासा बहुत बढ़ गई थी नसरवानजी सेठ तो चुटकी पर चुटकी सुंघनी सूंघते हुए बड़े ही रस के साथ सुन रहे थे। वे बोल उठे— 'वकील साहब! जो कुछ कहना हो उसे कहकर पूरा कर डालो न।'

'हाँ! यह समिति जो कुछ आप लोगों के बीच हुआ हो उसे स्पष्ट जानना चाहती है।'

'परन्तु यह तो कुछ व्यक्ति विशेष पर आक्षेप की बात मालूम पड़ती है।' मिस्टर तरफड़दास अपने मित्र की रक्षा करने की नीयत से बोले।

'किन्तु समाज-उद्धार-सभा से सम्बन्ध रखती है, इसलिए हमें जानने का पूर्ण अधिकार है।' अहलकारों ने रायसाहब की मुख-मुद्रा पर से उनके मन की कल्पना कर बोलने का साहस किया।

'ठीक है।' गम्भीरलाल ने निर्णय दिया।

'तब जो मैं कहता हूँ वह ध्यान से सुनिये। जब मैंने विवाह करने की प्रार्थना की तब आपने अर्थात् डाक्टर साहब ने एक ऐसी योजना मेरे सामने रखी जिसके स्मरण मात्र से मेरा कलेजा दहल उठता है।'

'तब मत कहो।' तरफड़दास ने कहा।

'सज्जनो! इन्होंने जिस स्त्री के साथ विवाह करने का वचन दिया था, उसे आप भली भाँति जानते हैं? वही मनुष्य आज उसे इस प्रकार धोखा देने के लिए प्रस्तुत हुआ है।'

'झूठ, बिल्कुल झूठ!' डाक्टर आखिर बोल ही उठा, बिल्कुल झूठ है! देखिए आप सब साक्षी हैं, मैं मुकदमा चलाऊँगा। मेरा अपमान! मेरी बेइज्जती! रायसाहब! आप प्रथम श्रेणी के मंजिस्ट्रेट हैं। मेरी फरियाद सुनें आप लोगों

के सामने मेरा ऐसा अपमान ?'

'आप शान्त रहें डाक्टर साहब ! हम सब कुछ करेंगे।' तरफड़दास ने आश्वासन देते हुए कहा।

'जो करना हो सो करें।'

'सज्जनो !' जरा कोलाहल शान्त होने पर एक गम्भीर आवाज सुनाई दी — ऐसे झगड़ों में पड़ना हमें शोभा नहीं देता। ये लोग अपना निजी द्वेष जिस प्रकार चाहें तय करें। क्यों सेठ नमरवान जी ?'

'नहीं हुजूर !' हेडमास्टर ने पहली बार धीरे से मुँह खोला। बात बहुत आवश्यक प्रतीत होती है। यदि सत्य हो तो हमें सुनना चाहिए। यह हमारी नवजात संस्था और आंदोलन का प्रश्न है। हमारे शहर भर के नवयुवकों पर इसका बुरा असर पड़ सकता है।

'मास्टर साहब रायसाहब ठीक कर रहे हैं।' मारुति ने यह सब हलचल देख कर कहा, 'अपको डाक्टर की छूत नहीं लगेगी, इससे आप निश्चिन्त रहें। परन्तु इन सब बखेड़ों में उस स्त्री का निपटारा तो रह ही जाता है, उसका क्या होगा ? उस बेचारी के सम्बन्ध में भी तो आप लोग कुछ विचार करें, नहीं रात अधिक हो जायगी।'

'बताइये, तब क्या उसे लौटा देने के लिए तैयार है ?' गम्भीरलाल ने पूछा। स्त्री को देखने की उनकी उत्कण्ठा क्षण-प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी।

'हाँ ! यदि आप उसके लिए उत्तम व्यवस्था कर सकें तो।'

'क्या ?'

'सभापति महोदय ! मुझ पर किये गये आक्षेपों का निर्णय भी हो जाना चाहिये।' डाक्टर और तरफड़दास कुछ निजी बात-चीत कर रहे थे जिसके समाप्त हो जाने पर डाक्टर ने कहा, 'मैंने ऐसा कभी कहा ही नहीं था। मेरे जैसे सद्गृहस्थ पर ऐसे कुत्सित अभियोग ?'

'तब आपने क्या कहा था ?' हेडमास्टर ने पूछा।

'सज्जनों ! मेरा ऐसा मत है कि यह बात यहीं खतम कर दी जाय किसी ने जल्दी में कुछ कह दिया होगा जिसका उलटा दूसरे ने सुन लिया होगा। खून के गरम हो जाने पर क्या-क्या नहीं हो जाता। आप दोनों मित्र हैं, अपनी

सभा के स्तम्भ रूप हैं। आप दोनों अपना-अपना विरोध भूल जायें और मित्रता कर लें। इसमें अपनी सभा का भी गौरव बढ़ेगा। यह कलह यदि आगे बढ़ा और कोर्ट में मामला गया तो हमारी सभा और समाज-सुधार सब की कैसी छीछालेदर होगी।'

'बहुत ठीक है।' अहलकारों ने अनुमोदन करते हुए कहा।

'मुझे कोई आपत्ति नहीं है।' मारुति ने कहा।

'मारुति को क्षमा याचना करनी चाहिए।' तरफड़दास ने कहा।

'जो कुछ मैंने कहा मेरी समझ से वह सत्य है, मैं क्षमा याचना क्यों करूँ?' मारुति ने कहा।

'मिस्टर मारुति ! आप जैसे बुद्धिमान व्यक्ति को जरा समझ-बूझकर कुछ कहना चाहिए।' गम्भीरलाल ने कहा।

रावजी साहब कह रहे हैं टब आपको क्या अड़टन है।' मिस्टर नसरवानजी ने कहा।

'अच्छी बात है ! मेरी समझ से जो कुछ मैंने कहा है, सच है। यदि मेरा समझना गलत है तो मैं अपने शब्दों को वापस लेता हूँ, बस !'

'चलो आगे बढ़ो।'

'महोदय मामला तो अभी जहाँ-का-तहाँ ही है।'

क्या व्यर्थ की पंचायत ले बैठे हो ? मेरा अमूल्य समय व्यर्थ नष्ट कर रहे हैं आप लोग ?' गम्भीरलाल ने क्रोध में आकर कहा—'एक घण्टा हो गया तब से बैठे-बैठे क्या घास छील रहे हो ? ऐसा ही है तो आप ही बोल लीजिये ! मैं त्याग पत्र देता हूं। नौंसेन्स ? क्या लड़कों का खेल हो रहा है। मिस्टर मदनलाल, वह कलम और पैन उठाना तो ! त्याग-पत्र लिख कर दे दूं।'

यह कह कर आग-बबूला हो रायसाहब वहाँ से उठ गये। बाप के बिगड़ने पर जैसे बच्चे चुप होकर बैठ जाते हैं, वैसे ही सब वहाँ खामोश होकर बैठ गये और रायसाहब की ओर टकटकी बाँध कर देखने लगे। गम्भीरलाल सेठ जाकर एक सोफा पर लेट गये। पीछे सेठ नसरवानजी हाथ में पंखा लेकर गये और धीरे-धीरे उन्हें पंखा झलने लगे।

इस ठोकर से इस क्रोध प्रदर्शन से समिति के सदस्य ठप हो गये। सिकन्दर

का मानो कोई वज्र शासन निकला और जिसके सामने जिस प्रकार विजित सैन्य कांपता हुआ खड़ा हो वैसे ही वह सभा कांपने लगी। रायसाहब इतनी शक्ति संचालन करने वाले का ऐसा कोप ? वहाँ बैठे हुए सभी के विचार में पृथ्वी डोलने लगी, प्रबल मारुत बहने लगा, प्रलयंकर समुद्र आगे बढ़ने लगा।

अन्त में इसी प्रकार बहुत देर तक नाटक होने के पश्चात् तरफ़दार ने अहलकारों से कहा, उन्होंने हेडमास्टर से कहा। हेडमास्टर जाकर मिस्टर नसरवानजी के पास बैठ गये। नसरवानजी रायसाहब को जोर से हवा करने लगे, हवा खाकर रायसाहब कुछ रीझे। रीझ जाने पर लोगों ने मनाया और मनाए जाने पर वे उठकर फिर अपने स्थान पर आकर बैठ गये। उनका कोप काफूर हो गया था, पर अब कुछ दृढ़ता पूर्वक अध्यक्षता करना उन्होंने प्रारम्भ किया।

अध्यक्ष महोदय ! मेरी विनती यह है कि इस स्त्री को यदि आप किसी, म्युनिसिपल कन्या-पाठशाला में अध्यापिका के पद पर नियुक्त करा दें तो उस आश्रयहीन को कुछ सहारा हो जाय अन्यथा आप इसे रखेंगे कहाँ ?'

'क्यों ? क्या उसका कोई सम्बन्धी नहीं है ?'

'जी नहीं, वह तो बेचारी दुःख की मारी अकेली दर-दर भटकती फिरती है।'

'ऐसा ?' गम्भीरलाल के गौर वर्ण कपाल पर सिकुड़न पड़ गई।

'किस जाति की है ?'

'ब्राह्मण है।'

गम्भीरलाल की भव्यता एका-एक भंग हो गई।

'किस गांव की रहने वाली है ?' उनके साफ़ गले में अब कुछ कँप-कँपी जैसी मालूम पड़ रही थी। उन्होंने दृढ़ता से अपना सिर ऊँचा कर अपना प्राकृतिक गौरव धारण करने का प्रयत्न किया।

'यह पता नहीं।'

'बहुत ठीक।'

'टब शाहब उसे यहीं बुलावो ग' जिससे सब बातें साफ-साफ हो जायें।' नसरवानजी बोले।

'आपको क्या खबर मिस्टर नसरवानजी कि हमारी सुशीला स्त्रियों को

इस प्रकार पर पुरुषों के सामने आने में कितनी लज्जा मालूम होती है ?' गम्भीरलाल ने कड़ाई से कहा।

गम्भीरलाल स्त्री को बाहर बुलाने के लिए पहले जितने आतुर थे उतने ही अब आतुरताहीन हो गये थे। सबको यह परिवर्तन कुछ विचित्र-सा लगा; परन्तु तरफड़दास को छोड़कर इस ओर किसी ने विशेष ध्यान नहीं दिया। इस कथन से केवल मारुति को प्रसन्नता हुई।

'तब एक काम कीजिए।' अहलकारों ने गम्भीरलाल के अभिप्राय की कल्पना कर कहा, 'आप' मिस्टर मारुति और ये हेडमास्टर साहब भीतर जाकर उनकी इच्छा जानने का यत्न करें।

'बहुत ठीक।' मगनलाल ! तुम हेडमास्टर साहब के साथ भीतर चले जाओ और वह क्या चाहती है पूछ कर आओ। मधु !'

'जी हुजूर !' नौकर दौड़कर ऊपर आया।

'मिस्टर मगनलाल को और मास्टर साहब को उस महिला के पास ले जा !'

'जी हुजूर !' कह कर चिक उठा कर मधु भीतर गया और उसके पीछे पीछे मगनलाल और मास्टर घुसे।

कुछ देर तक तो भीतर कुछ सुनाई नहीं दिया; फिर कुछ धीरे-धीरे होने वाली कानाफूसी की आहट सुनाई पड़ी, लोगों का इधर से उधर और उधर से इधर जाना-आना सुनाई दिया; कुछ विचित्र प्रकार से लोग चल रहे हों ऐसा मालूम पड़ा। थोड़ी देर में सब बाहर आये। उनके होश उड़े हुए थे। उनकी घबराई हुई आँखें गम्भीरलाल का मुख देख रही थीं।

हुजूर भीतर तो कोई नहीं है।'

'हैं !' सब एक स्वर से बोल उठे। गम्भीलाल होंठ चबा कर कुछ स्वस्थ हुए। यह समाचार सुनकर उन्हें कुछ निश्चिन्तता हुई हो इस प्रकार उन्होंने गहरी सांस ली।

'हाँ ! मधु कहता है कि वह स्वयं उस स्त्री को भीतर बैठा गया था पर भीतर क्या—घर भर में कोई नहीं है। वह स्त्री भाग गई।' हेडमास्टर ने बाहर निकल कर कहा।

गम्भीरलाल जैसे पहले थे वैसे ही स्वस्थ मालूम पड़ने लगे।

'क्या कहता है मधु ? चोर, बोल वह किस रास्ते से गई ?'

मधु काँपता हुआ आकर खड़ा रहा।

'नहीं सरकार मैं तो नीचे था, कोई बाहर नहीं गया। पीछे की खिड़की से कूद कर चली गई हो तो कह नहीं सकता।'

'अरे भला इस प्रकार क्यों जायगी ?' मारुति ने कहा। उन्हें मणि के प्रति इतना विश्वास था कि वे इस बात को स्वीकार नहीं कर सकते थे।

'मिस्टर मारुति ! कृपा कर मधु के साथ जाकर आप फिर से सब घर एक बार खोज डालें।

'हाँ ! मैं भी आऊँ ?' कहकर तरफड़दास उठने लगे।

'जी नहीं, आप विराजिए। रायसाहब ने अधिकारयुक्त स्वर में कहा। मार्तण्ड प्रकाश के सम्पादक महोदय कुर्सी पर से आधा उठ पाए थे कि फिर बैठ गये।

मारुति मधु के साथ भीतर गये।

'सज्जनो ! आज अपनी यह विचित्र सभा समाप्त हुई, फिर मिलेंगे। जब तक वह स्त्री न मिले तब तक कोई निश्चय करना ही व्यर्थ है।।'

'बहुत ठीक, चलो टब मेहड़नानो !' कहकर नमरवानजी उठ खड़े हुए। मिस्टर तरफड़दास ! आज की बैठक का कोई भी समाचार मार्तण्ड प्रकाश में न निकले।'

'कुछ ऐसे ढंग से, मेरा आशय है जरा···।'

'जरा भी नहीं !' गम्भीरलाल ने आज्ञा दी। आज्ञा लेकर सभी लोग एक-एक कर चले गये। मारुति भी निष्फल परिश्रम कर वापस लौट आये।

'मुझे बड़ा आश्चर्य प्रतीत होता है। वह स्त्री इस प्रकार भाग जाने वाली तो नहीं थी।'

'मिस्टर मारुति ! अभी आपने दुनिया का पाखण्ड अच्छी तरह देखा नहीं है। इस संसार में विचित्र-विचित्र प्रकार के जीव देखने में आते हैं। अच्छी बात है पधारिये।

'जी हाँ ! किन्तु यदि आप थानेदार साहब से कहकर इसकी खोज करायें

तो अच्छा हो।'

'अच्छी बात है ! आप जाते वक्त पास की चौकी के जमादार को भेज दें, मैं उससे कह दूंगा।'

'तब आज्ञा लेता हूँ।'

मारुति के जाने के बाद बहुत देर तक गंभीरलाल जमीन पर आँखें गड़ाकर देखते रहे। उनका मन भूतकाल में भ्रमण करता हुआ मालूम पड़ा। उनका मुख निस्तेज था। उनकी आँखों की प्रभा पर घने बादल छाए हुए थे। वह विचार कर रहे थे, चिन्ता कर रहे थे या पश्चात्ताप, मधु आकर कुछ देर तक खड़ा रहा। अपने बलवान, स्वस्थ सेठ को इस अवस्था में देखकर उसे आश्चर्य हुआ, उनका ध्यान आकर्षित करने के लिए वह खाँसा। गंभीरलाल अपने विचारों में ही लीन रहे। इस प्रकार दस मिनट बीत गये। मधु ने जोर से खिड़की बन्द की। रायसाहब का ध्यान भंग हुआ, उन्होंने सिर उठाकर ऊपर देखा और पूछा—'क्या है ?'

'सरकार ! जमादार आये हैं।'

'कौन जमादार ?'

'आपने बुलाया था। मारुति साहब ने भेजा है।'

'हाँ, भेज दे।'

जमादार ऊपर आया।

'रामसिंह, आज एक कोई भटकती हुई स्त्री यहाँ आई थी और मेरे घर की खिड़की से कूद कर भाग गई। जरा उस पर ध्यान रखना और यदि उचित समझना तो पकड़ने की ज़रूरत भी नहीं है। ऐसा उपाय करना कि शहर से बाहर अपने आप ही वह जल्दी निकल जाय, समझे !'

'जी हाँ सरकार !'

'देखना ख्याल रखना।' कहकर गम्भीरलाल ने सिर हिलाया। फिर एकाएक बनावटी हँसी हँसकर बोले 'रामसिंह, तुम कितने रुपये के ग्रेड में हो ?'

'सरकार ! सत्तर रुपये के। सरकार मेरे पाँच तो लड़के हैं। हुजूर ! यदि सुपरिटेण्डेण्ट साहब को दो अक्षर लिख दें तो···।'

'अच्छा, अच्छा ! अपनी डायरी में तुम्हारा नाम लिखे लेता हूँ।' कहकर

उसका नाम लिख लिया। 'जो बात मैंने कही उसे अपने तक ही रखना; किसी दूसरे पर प्रकट न होने पावे।'

'इसमें भी कुछ कहने की जरूरत है सरकार।' कहकर सलाम करके जमादार वहाँ से चला गया।

'सरकार! महाराज कहते हैं कि खाने का समय हो गया है।' मधु ने सूचना दी।

'कह दे कि मुझे आज भूख नहीं है, वह खा ले। दरवाजा बन्द कर दे, मुझे नींद आ रही है।'

मधु चकित हुआ, परन्तु चुपचाप होकर चला गया। गम्भीरलाल फिर ध्यानमग्न होकर बैठ गये।

: १८ :

गम्भीरलाल नीचा सिर किये हुए बैठे रहे। उनके मन में कुछ विचित्र प्रकार की खिन्नता आ गई थी। उनके जीवन में कोई भी ऐसा दूसरा प्रसंग नहीं आया था जिससे उन्हें इस प्रकार धक्का लगा हो। आज अचानक उनका हृदय बैठा-सा जा रहा था। आज तक जिस मनुष्य ने कभी भी, कुछ भी करके पीछे फिर कर नहीं देखा, जो हमेशा रौब से, गौरवपूर्वक दुनिया के सामने देखता था, वह इस समय अगम्य उदासीनता में खो गया था। अज्ञात भय से काँप रहा था। कैसा भय, किस बात का भय, वह स्वयं उसकी समझ में भी नहीं आ रहा था।

उनकी आँख के सामने एक बाला आकर खड़ी हो गई। उसके कोमल अंगों को मानो वह स्पर्श कर रहे हैं। ऐसा लगा आज तक कभी भी उन्होंने अपने मन में उसका विचार नहीं किया था। इस समय वह चण्डिका की प्रचण्ड मूर्त्ति के समान उन्हें मालूम पड़ रही थी। रायसाहब उसके स्मरण मात्र से काँपने लगे। अपने हाथ को इस प्रकार रगड़ने लगे मानो ठण्ड से जकड़े जा

रहे हों और उसमें गरमी पैदा करना चाहते हों। धीरे-धीरे उनका भय और बढ़ा। कोई भूत आकर अभी उन्हें खा जायगा या मार डालेगा इस प्रकार का व्यर्थ भय उन्हें सताने लगा। डर के कारण इतनी भी सामर्थ्य नहीं रही कि आँख उठाकर इधर-उधर देख तो लें। उनका सिर छाती पर ढुलक गया। आँखें खोलने में भी असमर्थ थे।

उनके मस्तिष्क में एक चित्र घूम रहा था। दुःख और अश्रु से पूर्ण चित्र की आँखें उन्हें क्रोध से देख रही थीं। गम्भीरलाल के अभिमानी मन ने इन विचारों को दूर करने का प्रयत्न किया। यह बात बुरी है, ऐसे विचार दूषित हैं, ऐसा सोचने का उन्होंने प्रयत्न किया, पर यह प्रयत्न निष्फल रहा। भय अधिकाधिक बढ़ता ही गया।

वह सो रहे हैं या जाग रहे हैं इसका भी उन्हें ज्ञान नहीं रहा। बड़ी कठिनता से उठे परन्तु उनके पैर कांपने लगे। आसपास चारों तरफ़ देखने का प्रयत्न किया। उनकी दृष्टि भीतर के दरवाजे पर पड़ी। वहाँ कोई खड़ा हुआ दिखाई दिया। जैसे कोई स्त्री हो। धूमिल स्वप्न स्पष्ट हो रहा हो ऐसा लगा। स्त्री का मुख स्पष्ट दिखाई दिया हो, ऐसा प्रतीत हुआ। घबराया हुआ, गम्भीरलाल जिसका चेहरा भय से पीला पड़ गया था, पागल जैसा इधर-उधर आँखें फाड़-फाड़कर देखने लगा और दृष्टिगत व्यक्ति से अपनी रक्षा करने के लिए हाथ उठाकर, 'ओ-ओ-ओ' करके बैठ गया।

'इतना घबरा क्यों रहे हो ?' किसी का तनिक व्यंग्यपूर्ण किन्तु दृढ़ स्वर सुनाई दिया। गम्भीरलाल के हृदय में यह शब्द गूंज उठे—उसने स्वर पहचाना। वह कुछ स्वस्थ हुआ। स्वप्न के प्रभाव से बचने के लिए आँखें खोलीं।

उसने फिर दरवाजे की ओर देखा। सामने मणि खड़ी थी। गम्भीरलाल कुर्सी पर ढह पड़ा—'कौन मृदुला ?'

मणि हँसी, गम्भीरलाल को पसीना छूटने लगा।

'मृदुला ! मृदुला ! तू—तू यहाँ कहाँ से ?'

'क्यों ? क्या तुम्हारा घर मेरा नहीं है ?' शान्तिपूर्वक मणि ने उत्तर दिया। सचमुच के जीवित मनुष्य को उपस्थित देखकर गम्भीरलाल की जान में जान आई। उनका साहस वापस आने लगा। वह अपनी छिन्न-भिन्न हुई बुद्धि

को एकत्र करने का प्रयत्न करने लगे।

'तू यहाँ कहाँ से आगई ? मैंने तो सुना था कि तूने आत्महत्या करली है।'

'आप तो सुनेंगे ही ! परन्तु मेरे बिना आपको कैसा लगता है ? मुझे क्या खबर कि आप विधवा-विवाह के अब पक्षपाती हो गये हैं।'

'क्या ?'

'अरे अभी ही भूल गये ? अभी तो आप मेरा न्याय करने के लिए बैठे थे ?'

'तू ! हाँ मैं भूल गया मृदुला। तू कहाँ छिप गई थी ?'

'मुझे क्या खबर थी कि आपने ही यह विज्ञापन निकलवाया है।' ज़रा परिहास सूचक स्वर में मृदुला अर्थात् मणि ने कहा, 'मैं भला कब जानती थी कि मुझे आप ही के यहाँ आना पड़ेगा। मैं आई और आकर मैंने सब कुछ देखा जिससे सब विचारों का त्याग कर आपके कमरे के दरवाजे के पीछे जा छिपी। आपकी सभा के सब सदस्यों के सामने मेरा उपस्थित होना क्या आपको अच्छा लगता ?'

गम्भीरलाल बिल्कुल घबराये हुए थे, फिर भी किसी प्रकार बुद्धि ठिकाने करके, इस प्रसंग को किस प्रकार बदला जाय, इसका विचार करने लगे।'

'ज़रा धीरे बोल पास ही मेरे सिपाही हैं; वे सब सुन लेंगे।'

'तो इसमें हर्ज ही क्या है ? कल सवेरे तो सबको मालूम हो ही जायगा।'

'कैसे ?'

'मैं अब यहीं रहूँगी।'

'नहीं नहीं, यह कैसे हो सकता है ? लोग तो तुझे मृत समझते हैं।'

'लोग जो चाहें समझें और प्रचार भी तो आप ही ने कराया था न !'

'नहीं, यह किसने कहा ?' यह बातचीत कोई सुन ले तो क्या कहेगा—इसका विचार करते हुए गम्भीरलाल ने पूछा। इस स्त्री को यहाँ से कैसे निकालूँ, इसी का उपाय वह सोच रहे थे।

'यह भला कहीं हो सकता है ? पर तू आई कैसे, यह तो बता ?'

'इसमें कौन से अचरज की बात है ? मेरा अन्तिम तार व मेरा पत्र कहीं नहीं मिला ?'

'नहीं तो !'

मणि ने तिरस्कार एवं क्रोध से गम्भीरलाल की ओर देखा।

'झूठ मत बोलो ! दोनों पहुंचे होंगे, नहीं पहुंचे तो कहाँ गए ? यह कहो कि तुम्हें मेरा मुंह देखना पसंद नहीं था। मुझे किसी प्रकार दूर रखना चाहते थे। नदी-कुएँ में गिरकर आत्मघात करने की धमकी दी थी; इससे तुम्हारे मन में निश्चिन्तता आ गई थी। तुम तो यह सोच रहे थे कि चलो एक बला से छुट्टी मिली। क्यों ?' मणि की आँखों से आग निकल रही थी, 'मुझे क्या खबर कि रायसाहब गम्भीरलाल अब विधवा-विवाह के बड़े बाप बन बैठे हैं।'

'मृदुला ! तू इतना क्रोध क्यों कर रही है ? जिस समय तेरा तार मिला उस समय गाँव से बाहर न जाने की कड़ी आज्ञा मिली थी और बाद में मेरी यहाँ बदली हो गई।'

'तो एक पत्र लिख दिया होता अथवा किसी आदमी को भेज दिया होता। तुम्हें यह तो मालूम था न कि तुम्हारी ही आशा पर मैं जी रही थी। तुम्हें क्या खबर कि कितने कष्ट से, कैसे भीख माँग करके रुपया इकट्ठा करके मैंने तार भेजा था ?' मणि ने पूछा—'तुम यहाँ एकान्त में मौज कर रहे हो, मुझ पर क्या-क्या बीती इसका भी तुम्हें कुछ पता है ?'

'अच्छा, जरा शान्त रहो। बाद में तुमने क्या किया ?'

'मैंने ? जहन्नुम में गई। मैंने संसार छोड़ा, कभी मैंने बाहर कदम नहीं रखा था सो तुम्हारे पाप से दर-दर मारी-मारी फिरी !'

'तुम्हें बड़ा कष्ट हुआ होगा।' यथाशक्ति स्वर में अनुकम्पा दर्शाते हुए गम्भीरलाल ने कहा।

'नहीं जी ! मेरे लिए तो आपने सत्तर सुहाग सेज बिछवा दी थी। जाने दो, बीती हुई बातों को छोड़ो। आखिर तुम मिल ही गये; अब मैं निश्चिन्त हुई।' कह कर मणि कुर्सी पर बैठ गई। गम्भीरलाल को फिर कँपकँपी आ गई। मणि ने आँखों में से बहते हुए आँसुओं को पोंछा।

कुछ समय तक कोई नहीं बोला। गम्भीरलाल कोई रास्ता ढूंढ़ रहा था, वह बोला—'मृदुला, हाँ अब बीती बात को फिर से उभारने से क्या लाभ ! बीती ताहि बिसारि दे, आगे की सुध ले ! बताओ अब तुम्हें क्या करना है ?'

बनावटी नम्रता से गम्भीरलाल ने पूछा।

'अब मुझे क्या करना है ?' मणि ने एक तीक्ष्ण दृष्टि गम्भीरलाल पर फेंकते हुए कहा, 'तुम मिल गये मुझे मानो ईश्वर मिला। तुम जब पहले मिले थे उस समय क्या कह रहे थे ?'

'मैं क्या कह रहा था ?' मानो भूल गया हो इस प्रकार का स्वाँग रचते हुए गम्भीरलाल ने पूछा।

'वाह ! इतने में ही भूल गये ? तुम्हीं ने कहा था न कि सभी धर्म-शास्त्र विधवा को विवाह करने की आज्ञा देते हैं। तुम कहते थे कि वर्तमान स्थिति बड़ी ही क्रूर पर-पीड़क अनीतिपूर्ण है; क्यों, सब भूल गये ? तुमने मेरी दृष्टि के सामने जो सुखमय जीवन का स्वप्न रखा था, भुला दिया क्या ?' मणि जरा तिरस्कारपूर्ण हँसी हँस कर बोली—'निधन, विचारी निराधार स्त्री को दिया हुआ वचन याद रखने की भला कौन परवाह करता है ?'

गम्भीरलाल चुप्पी साध कर बैठे रहे। जाल में फँस जाने पर मछली के मन में जैसे विचार उत्पन्न होते हैं वैसे ही उसके मन में भी होने लगे। उन्होंने मणि की ओर देखा। पहले की लज्जावती, दुःखी, शरीर के कष्ट से क्षीण मृदुला के स्थान पर महायोगी महाराज की कृपा के फलस्वरूप उसने रूपवती, तेजस्वी और हृष्ट-पुष्ट मणि को पाया।

'अब क्या सोच रहे हो ? वह वचन पालन करने का समय आ गया है।'

'मृदुला ! तुम जरा मेरी बात तो सुनो। हम लोग लड़कपन में न मालूम क्या-क्या कहते हैं और भूल जाते हैं।'

'एक वर्ष पूर्व लड़कपन था ? किसका, तुम्हारा या मेरा ? देखो, जो हो गया सो हो गया। मेरे भी दुःख का अन्त अब आ गया है। लोकलाज की अब मुझे तनिक भी परवाह नहीं रही। जिस दिन तुम कहो, मैं तुम से विवाह करने के लिए तत्पर हूँ।'

गम्भीरलाल ने सिर हिलाया।

'नहीं मत करो ! तुम्हीं मेरे सर्वनाश के कारण हो। तुम्हारे ही लुभावे में मैं पागल हो गई थी। तुम पर रखी हुई श्रद्धा के भरोसे मैंने भव-पराभव की आशा छोड़ दी थी। अब क्या तुम भी मुझे दुत्कार दोगे ?' मणि का स्वर

सचमुच भावपूर्ण था अथवा परिहासपूर्ण यह कहना बड़ा कठिन है।

गम्भीरलाल और भी उलझन में फँस गए। मछली का जाल और भी दृढ़ होने लगा। क्या करें?

मणि को इन दो महीनों में बहुत कुछ शिक्षा मिली थी; जिसके कारण वह स्वस्थ थी और उसके विचार स्वच्छ थे। अन्तिम पासा फेंकते हुए उसने कहा—'तुम्हें किस बात की चिन्ता है? तुम्हारे पास पैसा है। उच्च पदाधिकारी हो। स्त्री भी नहीं है। सुधरे हुए विचार की जिस स्त्री ने तुम्हारे लिए अपना सर्वस्व दे दिया उसे यदि तुम ही नहीं अपनाओगे तो दूसरा कौन अपनायेगा?'

'बात बदलने के लिए भगीरथ प्रयत्न करते हुए गम्भीरलाल ने कहा—'तुम्हें दिन···।'

'हाँ! अब तुम्हें याद आ रहा है? वाह रे मेरा भाग्य! उसेमैं सुरक्षित मीठाकुआँ गाँव में छोड़ आई हूँ। कल सवेरे हम उसे बुलवा लेंगे। वह बिल्कुल तुम्हारी ही तरह है। बड़ी होने पर इन्द्र की अप्सरा को भी लज्जित करेगी।'

गम्भीरलाल ये शब्द सुनकर एक बारगी काँप उठे! एक पल मात्र की अपनी मूर्खता का फल उन्हें बेहद कड़वा लगा।

क्या सोच रहे हो? क्या मुझ पर तनिक दया नहीं आती? अपनी पुत्री पर जरा भी रहम नहीं आता? नहीं, नहीं, तुम निष्ठुर कभी नहीं हो सकते?' मणि ने कहा। उसकी आँखों में से झर-झर आँसू गिरने लगे। गम्भीरलाल में तो उसकी तरफ मुँह उठाकर देखने का भी साहस नहीं था।

'मृदुला! मृदुला! तुम्हारा हृदय तो बड़ा अगाध है; इसलिए एक बात कहूँ—सुनोगी?'

'क्यों?'

'मैं विवाह नहीं कर सकता मेरी कठिनाई···।'

'क्यों?' मृदुला ने हँसकर पूछा।

यही उत्तर मिलेगा; यह वह पहले से ही जानती थी।

'देखो, मेरा सब सम्मान धूल में मिल जाएगा। यह पद जिस पर आसीन हूँ वह छोड़ देना ही पड़ेगा।'

'कैसे, क्या सरकार नौकरी छीन लेगी ?'

'नहीं किन्तु पुनर्विवाह से मेरी प्रतिष्ठा नष्ट हो जायगी ।'

'प्रतिष्ठा ! जो प्रतिष्ठा एक निर्दोष उन्मादिनी को कुचल कर तुम्हारी भावनाओं को भ्रष्ट कर रही है ! वह प्रतिष्ठा है ! यह तुम कह क्या रहे हो ?'

'स्वप्न और प्रत्यक्ष में बहुत अन्तर है, मृदुला !'

'ऐसा ?' गौरव से माथा ऊँचा करते हुए मणि ने कहा—'तब जिस समय तुमने मुझे फँसाया था उस स्वप्न को और जहाँ छटपटाती हुई छोड़ रहे हो उस संसार को प्रणाम !' मणि का क्रोध जिसे वह अब तक दबाये थी उमड़ने लगा।

'मृदुला यह सब बोलना तूने सीखा कहाँ से ?'

'तुम्हारे दिये हुए दुःखों से ! तुमने मुझे दर-दर की भिखारिणी बनाया उससे ! यदि मैं अपने पुराने रहन-सहन से रहती । तप-उपवास करती हुई, कष्ट सहन करती हुई जीवन व्यतीत करती होती, तब यह सब नहीं सीख सकती थी। तुमने संसार का द्वार खोल कर मुझे सुनहली आशा का स्वप्न दिखाया। अब इस प्रकार दरवाजा बन्द करने की इच्छा करने से क्या काम चल सकता है ?'

'देखो मृदुला ! हम लोग व्यर्थ की मगजपच्ची कर रहे हैं। तुम निराश्रय हो। थोड़ा-बहुत मेरा भी दोष होगा, यह मैं स्वीकार करता हूँ; परन्तु युवावस्था की एक जरा-सी भूल के कारण वर्तमान संसार, मान-प्रतिष्ठा को छोड़कर अपनी बड़ी-बड़ी आशाओं को तिलांजलि देना मेरे लिए असम्भव है।'

'तब क्या मेरी ही आशा को तिलांजलि दी जा सकती है—मेरा जीवन नष्ट-भ्रष्ट किया जा सकता है ? क्या मैं ही कलंकित होकर दुनिया में इधर-उधर भटकती फिरूं ?' मणि ने पूछा।

'यह मैं कहाँ कह रहा हूं ? मैं तुम्हें भटकने नहीं दूंगा। जहाँ तुम कहो अकेली सुख से रखूंगा। यदि पसन्द हो तो जैसा मारुति कह रहे थे, तुम्हें किसी कन्या पाठशाला में नौकरी दिला दूं। पर…'

'परन्तु ?'

'पर यह भी अच्छा नहीं होगा। यहाँ बहुत चर्चा हो चुकी है, जिससे

तुम्हारा यहाँ रहना मेरे लिए कतई अच्छा नहीं होगा।

'तब जहाँ तुम कहो वहाँ जाकर पड़ी रहूँ और जो कुछ तुम भेज दो उससे अपना निर्वाह करूँ ?' धीमे स्वर में मणि ने कहा।

'तुम बड़ी होशियार हो, बात झट समझ जाती हो। तुम्हारी बुद्धि भी कैसी तीव्र है।'

'वाह री मेरी बुद्धि !' उलाहने से मणि ने कहा, 'बात यह है जैसा तुम मेरी बुद्धि का अनुमान लगा रहे हो उससे वह कहीं अधिक पैनी है।'

'क्या ?' गंभीरलाल के मन में फिर कँपकँपी उठी।

'कैसी क्या ? कहते हुए जीभ गलकर गिर नहीं गई ?' गरज कर मणि खड़ी हो गई। उसकी वह रौद्र मूर्ति देखकर गंभीरलाल कुर्सी पर पीछे हट गये।

: १६ :

जरा दम लेकर क्रोधपूर्ण स्वर में मणि ने पूछा—'फुसला कर भ्रष्ट करते हुए शरम नहीं आई ? विनती करते-करते मैं थक गई किन्तु मुझे और अपनी पुत्री को मरणासन्न अवस्था में छोड़ देते हुए तुम्हें लज्जा नहीं आई ? और अब—अब मुझसे यह बात कहते हुए तुम्हारी जीभ गल नहीं गई।'

गंभीरलाल घबरा उठे। मणि का स्वरूप और भी तेजस्वी दिखाई पड़ रहा था। पर सहसा कोई नया विचार आ जाने से मणि ने अपने क्रोध को शान्त करने का प्रयत्न किया। कुर्सी पर बैठकर मस्तक पर के चुहचुहाते हुए पसीने को पोंछा और दाँत पीसकर बोल उठी—'अब अधिक कुछ कहने से लाभ नहीं है। तुम्हारे जैसे नराधम तो इस संसार में बहुत ही कम मिलेंगे ; परन्तु कुछ ऐसा बनाव बन गया है कि मेरा कलेजा वज्र जैसा कठोर हो गया है।'

'परन्तु इससे अधिक मैं कर ही क्या सकता हूँ ?' गंभीरलाल ने पूछा।

'कर तो बहुत कुछ सकते हो, अलबत्ता करना नहीं चाहते !'

गंभीरलाल से उत्तर देते न बन पड़ा।

'प्रतिष्ठा, इज्जत, मान-मर्यादा इन सबकी रक्षा हो सके अथवा न हो सके, इसकी मुझे जरा भी चिन्ता नहीं है। मैं तो केवल इतना जानती हूँ कि तुम्हारे किए का फल तुम्हें ही भोगना पड़ेगा।'

'अर्थात् ?'

'अर्थात् तुम्हें मुझसे विवाह करना पड़ेगा। यथाशक्ति सेवा करके तुम्हें सुखी बनाने की चेष्टा करूँगी। साथ ही तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा बढ़ाने का भी प्रयत्न करूँगी।'

'यह नहीं होगा।' गंभीरलाल ने कहा।

'दूसरा कुछ हो भी नहीं सकता। संसार का आनन्द लूटने की आशाएँ तुम्हीं ने मेरे सामने खड़ी की थीं। अब इस मृग-तृष्णा को शान्त भी तुम्हें ही करना पड़ेगा। इससे छुटकारा मिल नहीं सकता।'

'जो कुछ मैं कह चुका उससे अधिक मैं कुछ नहीं कर सकता और न कोई दूसरा रास्ता है।' गंभीरलाल ने कहा।

'तब सोच लो इसका परिणाम बुरा होगा।'

'क्या बुरा होगा ?' गंभीरलाल ने कहा।

मणि शान्त स्वर में बातें करने लगी जिससे गंभीरलाल भी जरा धीमे स्वर में बोले।

'एक बार नहीं कहो तब तुम्हें बताऊँ।'

'मुझे धमकी देती है ?'

'हाँ !'

'तू समझती है कि मैं डर जाऊँगा ?'

'डर क्या जाओगे ? डरते हो और डरोगे। अब मैं पहले की मृदुला नहीं हूँ।'

'यह बात है ! इतना परिवर्त्तन कैसे हो गया ?'

'तुम्हारे कारण मुझे दरब-दर की खाक छाननी पड़ी, तुम्हारे जैसे अनेक कलमुँहे नराधम पुरुषों और महात्माओं को देखा और उनके हाथ से निकल भागी और...'

'और ?'

'तुम प्रतिष्ठा और मान-मर्यादा के गुलाम हो। मुझे किसी की भी परवाह

नहीं है। मैं स्वतन्त्र हूँ ; तुम बन्धन में हो ; जिससे तुम्हारी अपेक्षा मैं अधिक सबल हूँ।'

'हँ-हँ !' गंभीरलाल हँसे, 'स्त्री की बुद्धि भी बस...।'

'बहुत ठीक, हँस लो। पहले मैं तुम्हें ईश्वर समझती थी। अब वह दिन चले गये। बुद्धि में कौन बढ़-चढ़ कर है यह समय आने पर देख लेना।'

'देखो, मृदुला ! जहाँ कहीं से भी यह वाचालता तुम सीख आई हो, यह तुम्हें शोभा नहीं देता।'

'अब कहाँ से शोभा देगा ?' मणि ने हँसकर जवाब दिया।

'मुझे यह सब सुनने की फुरसत नहीं है। जो कुछ मैंने कहा है वह करने के लिए तैयार हूँ, और कुछ नहीं कर सकता।'

'तब भाड़ में जाय तुम्हारा पैसा। मेरे बाजुओं में कमा कर लाने की शक्ति है।'

'क्या तुझे खबर है ? दुनिया में पैसा कमाना सरल नहीं है !'

'तुम्हें भले ही न हो, मुझे है।'

'कैसे ?'

'तुममें से प्रत्येक व्यक्ति मुझे अपने खिलवाड़ की, तन बहलाव की वस्तु बनाने के लिए क्रीत दासी बनाना चाहता है। ऐसा बनने की अपेक्षा दुनिया को वश में करना मेरे बायें हाथ का खेल है।'

'क्या तू इतनी अधम हो जायगी ?'

यह कहकर गम्भीरलाल ओंठ काटने लगे।

'अभी भी समय है कि अच्छी तरह विचार कर लो, मुझे खिझाओ मत ; नहीं तो तुम्हारी मान-प्रतिष्ठा सब धूल में मिलती दिखाई देगी।'

'इसका मुझे जरा भी डर नहीं है ! मृदुला, मेरा कहना मान जा, व्यर्थ कष्ट उठायेगी, दर-दर मारी-मारी फिरेगी।'

'तो इसकी मुझे भी फिक्र नहीं है।'

'बहुत ठीक, मैं अभी तुम्हारी दुर्गति नहीं करूँगी। अभी दुर्गति करने से क्या हाथ लगेगा ?'

'तब कब करोगी।' जरा तिरस्कार से हँसते हुए गम्भीरलाल ने कहा।

'जब मेरा समय आयेगा तब, यदि जीवित रही तो देखना !'

'जीवित रहेगी तब न !'

'इसकी चिन्ता मत करो ! मेरे भाग्य में बहुत दिन तक जीना लिखा है।'

'बहुत अच्छा, तू किस रास्ते से जायगी ? नीचे तो मेरे सिपाही सोये हुए हैं।'

'अच्छा ! मैं तो भूल ही गई थी। रायसाहब फिर भड़क उठे, कहकर मणि खिलखिलाकर हँस पड़ी।

'अब क्या होगा ?'

'अब क्या होगा ?' दोहराते हुए मृदुला ने कहा। फिर हँस पड़ी, परन्तु तुरन्त ही गम्भीर होकर बोली—'घबराओ नहीं, पीछे की खिड़की तो है न ! वहाँ तो केवल रामसिंह खड़ा होगा ?'

'यह भी तुमने सुन लिया ?'

'करूँ क्या ? पास ही की कोठरी में जो थी। कोई बात नहीं। आज से हम और तुम प्रतिद्वन्द्वी हैं। देखें कौन विजयी होता है। दुनिया में न्याय तो रह ही नहीं गया है। इससे मालूम होता है कि तुम्हारी ही जीत होगी। पर मैं भी तुम्हारे समान व्यभिचारियों और दुष्टों को दिखा दूँगी कि एक निर्दोष, निरापराध बालिका को फँसा कर उसका जीवन भ्रष्ट करने का फल कैसा कड़वा होता है ?' कहकर मणि भीतर की ओर चली। गम्भीरलाल भी उसके साथ गये।

'मैं फिर किवाड़ के पीछे नहीं छिप जाऊँगी, घबराओ नहीं। अब तुम्हारा घर मेरे लिए नरक के समान है।' कह कर गौरव के साथ सिर ऊँचा करके वह भीतर गई और खिड़की से झाँक कर नीचे देखा। खिड़की बहुत नीची थी जिससे कूदने में चोट आदि लगने की कोई आशंका नहीं थी।

एक बार अपनी प्रियतमा सुकोमल स्त्री को इस प्रकार संसार-सागर में अकेली कूदते हुए देख कर गम्भीरलाल के हृदय में कुछ दया का सञ्चार हुआ। उसने कहा—'मृदुला ! इस समय तू कहाँ जायगी ?'

'संसार विशाल है, तुम्हारे मन में मेरे लिए कुछ अधिक ममता उत्पन्न हो गई क्या ?'

'अकेले रहने का प्रबन्ध किए देता हूँ, तब क्यों व्यर्थ कष्ट उठाती हो ?'

'रहूँगी तो तुम्हारी पत्नी होकर नहीं तो···।'

'नहीं तो ?'

'नहीं तो तुम्हारा दर्प चूर्ण करने के लिए अविरल चण्डिका बन कर।' गम्भीरलाल काँप उठे, उसके शब्दों में जादू भरा हुआ था अथवा वह भविष्य-वाणी की प्रतिध्वनि थी ! दूसरे ही क्षण मणि कूद पड़ी। गम्भीरलाल ने देखा कि वह धीरे-धीरे उठी और घूम कर पीछे देखे बिना आगे चल दी।

गम्भीरलाल बहुत देर तक खिड़की पर खड़े रहे। उनके मन में पुरानी स्मृति जागृत हो रही थी। पश्चात्ताप के अंकुर फूट रहे थे या भय का संचार हो रहा था कुछ कहा नहीं जा सकता था। मणिसे विचार हट कर लड़की पर गया। मीठा कुआँ में किसके पास होगी ? वह कैसी होगी ? इतने में दूर थाने से बारह का घंटा सुनाई दिया।

'चलो जी, बला टली।' कहकर खिड़की बन्द करके भीतर आकर वह सोने की तैयारी करने लगे।

फिर पश्चाताप होने लगा। यदि किसी प्रकार मृदुला को बुला कर एकान्त में रखा जाय तो कैसा रहे ? संसार में प्रतिष्ठा का बन्धन यदि न होता तो कैसा अच्छा था।

इसके पश्चात् उनके विवाह के लिये जो सन्देश आ रहे थे उनका विचार आया। अपनी जाति की लड़कियाँ सुन्दर नहीं थीं, फलस्वरूप दूसरी जाति की किसी धनवान की लड़की पसन्द करने का इरादा हो रहा था। अपने समाज के बेढंगेपन पर भी वे मनन करने लगे। जब तक लोग स्वयं अपने को सुधारने का प्रयत्न नहीं करेंगे तब तक कोई सुधार होना असम्भव है। यह शुभ निश्चय करके रायसाहब ने अपनी आँखें मीच लीं।

: २० :

पृथ्वी पर पैर पड़ते ही मणि उठ कर तेजी से चलने लगी। उसके सिर भूत सवार था जिससे वह कब तक चलती रही, और कहाँ जा रही है इसका उसे ध्यान भी न रहा। उसे संसार से विरक्ति-सी हो गई थी। संसार से

किस प्रकार बदला लिया जा सकता है, प्राणियों को किस प्रकार रुलाया जा सकता है इसका उपाय वह मन-ही-मन सोच रही थी।

कुछ देर बाद उसके क्रोध का भूत उतरा और उसकी चाल भी धीमी हुई। वह कहाँ है यह जानने के लिये भौंचक्का होकर इधर-उधर देखने लगी। पास ही किसी गायिका के गाने का मीठा स्वर सुनाई दिया, वह एक चबूतरे पर बैठ गई।

पीछे से कोई उसके सामने आकर खड़ा हो गया। आगन्तुक ने पूछा तू कौन है ?

'क्यों ? तेरा क्या जाता है ?' गर्व से मणि ने पूछा। पूछने वाले पर उसकी दृष्टि गई। यह रामसिंह कॉंस्टेबुल था जो अपना कर्त्तव्यपालन कर रहा था।

'मेरा ? चल, भाग जा यहाँ से फौरन ! नहीं तो अभी जेल की हवा खायेगी।'

'रामसिंह !' पुलिस का जमादार चौंका ! अपने रायसाहब की आज्ञा का पालन कर रहे हो क्या ?'

'कौन रायसाहब और कैसी आज्ञा ?' जरा कड़े स्वर से रामसिंह ने अपना रौब गाँठने का प्रयत्न करते हुए कहा।

'व्यर्थ क्यों बात उड़ाते हो ? यदि तेरे में ताकत हो तो पकड़ कर ले चल। फिर तेरी नौकरी का क्या होता है यह जाकर गम्भीरलाल से पूंछ लेना।' मणि ने शान्ति-पूर्वक कहा।

रामसिंह तो ये बातें सुनकर हक्का-बक्का हो गया। उसने अनेक अपराधियों को देखा था किन्तु यह तो कुछ दूसरी ही प्रकार की दिखाई दे रही थी।

'मुझे शहर के बाहर निकाल देने की तुम्हें आज्ञा मिली है या नहीं ?' मणि ने हँसते हुए पूछा—'तू अपने रास्ते चला जा, मैं तो यह शहर छोड़ कर जाने वाली ही हूँ, किन्तु यदि तू मेरे पीछे लगा तो मैं यहीं रहूँगी। पीछे मुझे पकड़ कर देखना अपनी और अपने रायसाहब की दुर्दशा !'

रामसिंह स्तम्भित हो गया और मणि को वहीं छोड़ कर चलता बना।

लग्न का समय था जिससे पास ही के एक धनी साहूकार के यहाँ विवाहोपलक्ष्य में वेश्या बुलाई गई थी। उसकी मीठी तान शान्त रात्रि के वातावरण

में दूर-दूर तक गूंज रही थी। इससे मणि के तप्त हृदय को कुछ शान्ति मिली। शान्ति आने पर भविष्य के कार्यक्रम का विचार हुआ। सवेरे से वह भूखी थी, इसका भी भान हुआ। उसका शरीर निरोग था जिससे पेट की पुकार क्रमशः बढ़ने लगी। इस समय कहाँ जाकर भोजन करे? दूकानें सभी बन्द हो चुकी थीं। पास में गिने गिनाये केवल तीन-चार आने पैसे थे। मणिकर्णिका का दिया हुआ हार था, परन्तु उसका भी इस समय उपयोग करना संभव न था।

मारुति के यहाँ जाने की इच्छा हुई, पर इसे उसने दबाया। इस समय जाने से उसकी पत्नी क्रुद्ध होगी और सबेरे यह ज्ञात हो जाने पर कि रात में वह मारुति के यहाँ रही, गम्भीरलाल उस पर बहुत बिगड़ेगा। ऐसी विपत्ति में उस बिचारे को क्यों फँसाऊँ? अतः उसने वहाँ जाने का विचार छोड़ दिया। साथ ही अभिमान भी आया। मारुति बिना पूछे नहीं रहेगा कि वह कहाँ भाग गई थी। इसका उत्तर वह क्या देगी?

पेट की पुकार फिर अधिक जोर से सुनाई पड़ने लगी। थोड़ी दूर पर अभी दावत समाप्त हुई थी। दो घण्टे में पाँच सौ आदमियों ने वहाँ अभी भोजन किया था, परन्तु वहाँ पर उसे आधा पेट भी भोजन मिलना असम्भव था। इतने में महफिल में से उठकर दो-एक आदमी आ रहे थे। उनकी बातचीत उसे सुनाई पड़ी। किसी का ध्यान अपनी ओर न आकृष्ट हो जाय इस भय से वह दीवाल से सटकर खड़ी हो गई।

'सेठजी तो बड़ी अच्छी गाने वाली लाये हैं।' एक ने कहा, 'कैसा इसका कण्ठ है मानो कोयल गा रही हो। एक बार और सुनने का मौका मिले तो कैसा अच्छा हो।'

'नहीं जी, यह तो आज ही चली जाने वाली है।'

'कहाँ, बड़ौदा की है?'

'नहीं बम्बई की।'

इस बातचीत से मणि के मन में कुछ विचार उत्पन्न हुए। इस स्त्री का इतना मूल्य—और उसे भोजन का भी टोटा! केवल रूप और स्वर के कारण लोग उस पर मरते हैं। मेरे पास रूप है, स्वर है, गुण है, फिर भी मेरा कुछ मूल्य नहीं। मेरे रूप और स्वर का भी मूल्यांकन हो जाय तो कैसा रहे?

लोगों के चले जाने पर वह उठी। पेट में भूख तो बड़ी तेज लगी हुई थी, किन्तु करे क्या? अनजाने में उसके पैर उस ओर चले जहाँ अभी-अभी ज्योनार समाप्त हुई थी। थोड़ी दूर पर एक मकान के दरवाजे पर भिखारियों को भोजन दिया जा रहा था। किसी विशेष विचार बिना वह उस ओर बढ़ी! वह क्या कर रही है, इसका उसे ज्ञान भी न रहा। जाकर वह सबके पीछे खड़ी हो गई और जो टुकड़े भिखारियों को दिये जा रहे थे उन्हें एक टक देखने लगी।

भूख ने उसे पागल बना दिया था। कोई एक टुकड़ा उसकी ओर फेंक दे तब! विचार आते ही हृदय में वज्राघात सा लगा। सब रोंगटे खड़े हो गये। ब्राह्मण-कन्या की इतनी अधमता! इतने में भिक्षा देने वाले उसके पास आ पहुँचे। वह स्तब्ध-सी खड़ी रही। दाताओं ने उसे सम्बोधित करके कहा—'भिखारिन ले भिक्षा! ले, ले! तू ही केवल बाकी रह गई है।'

सिर पर किसी ने चाबुक मारा हो इस प्रकार तिलमिलाकर उसने सिर उठा कर ऊपर देखा। आसपास अंधेरे में भिखारियों को इधर-उधर बैठकर खाते हुए देखा। उसकी यह हीन दशा! उसकी भूख मर गई। वह बड़बड़ाई—'भूख से अधमरा होने पर भी मृगपति कभी तृण नहीं खाता।' उसने दाँत पीस-कर साहस से कहा और पलट कर भाग खड़ी हुई।

दाताओं को अचम्भा हुआ, उन्होंने जोर से कहा—'वाह रे तेरा मिजाज!'

मणि इतनी तेज भागी कि उसकी साँस फूलने लगी। अधिक न दौड़ सकने पर वह खड़ी हो गई। उसकी भूख अब जाती रही, चिन्ता भी शान्त हो गई, केवल मात्र उसे अपनी अधमता पर क्षोभ हो रहा था। उसका अभिमान, उसका स्वमान प्राप्त करने की अभिलाषा, उसकी कुलीनता सभी कुछ तो नष्ट होने जा रहा था। उसी समय वह रुकी। उसमें तेज आने लगा जिसने उसे शक्ति दी। गत तीन-चार दिनों की अनुभव परम्परा ने उसके चित्त को अस्थिर कर दिया था। इस समय हठात् नीचे गिरने से वह बच गई। उसे इसका अभिमान भी हुआ।

उसके पास जो पैसा था उससे मीठा कुआँ जाकर पुत्री को एक बार देख आने की इच्छा हुई। जोरा भगत को मणिकर्णिका का हार देकर उनसे कुछ रुपया लेने का भी विचार आया, जिससे आगे के कार्य में आसानी हो। कुटुम्ब

वत्सला बनने की इच्छा अब नष्ट हो गई। विवाह कर संसार का सुख लेने की तीव्र मंगल कामना भी जाती रही। पुरुष मात्र से उसे घृणा हो गई।

वह स्टेशन की ओर चली। स्टेशन के रास्ते में थोड़ा भाग उजाड़-खंड पड़ता था। संसार से विरक्त मणि को इसकी जरा भी चिन्ता न हुई; वह बेधड़क चली जा रही थी। पथिक भी चुड़ैल समझ कर उसके पास जाने का साहस न करते। स्टेशन पर पहुँच कर उसने दो पैसे के चने लिए और स्टेशन से हटकर थोड़ी दूर पर पड़े हुए एक पत्थर पर बैठकर वह चने खाने लगी।

थोड़े चने पेट में जाने पर मन को शान्ति हुई। वह दुःख भूलने-सी लगी। सवेरे ही वह अपनी सुरेखा से मिल सकेगी, यह खयाल आते ही उसका हृदय भर आया। नन्हीं-सी सुरेखा का रमणीय सुन्दर मुखड़ा उसकी आँखों के सामने नाचने लगा। उसकी छाती भर आई। अपनी पुत्री के लिए जीवन रखने का उसने निश्चय किया। मन जरा शान्त होने पर सुने हुए संगीत का अलाप याद आया; वह उन शब्दों को स्मरण करने लगी।

'गगरी मोरी भरन नहीं देत !'—पद के याद आ जाने पर वह गाने वाली के अलाप का अनुकरण करने लगी।

मणि को पूर्ण रूप से अपने स्वर का ज्ञान नहीं था। मात्र सुने हुए स्वर का अनुकरण कर गले से राग निकालने का धीरे-धीरे वह प्रयत्न कर रही थी।

उस महाजन के यहाँ रात्रि में दो बजे मजलिस समाप्त हुई। नर्तकी ने मुजरा किया और प्रातःकाल के पहले ही भरवीं सुनाई। बहुत अधिक रुपये खर्च करके तो वह बुलाई गई थी, उस पर भी शर्त यह थी कि सवेरे की गाड़ी से बम्बई चली जाने देना होगा। विवश होकर साहूकार तथा उसके मित्रों को उसकी बात माननी पड़ी। मजलिस समाप्त कर दी गई।

तबलची ने तबला बाँधा और सारंगी वालों ने सारंगी; नर्तकी उनके साथ किराये की गाड़ी में बैठ कर चली। उसके साथी रात अधिक हो जाने के कारण झोंका खाने लगे। वेश्या गाने वाली थी। परन्तु आज एक राग अलापते समय दूसरे राग का मिश्रण उससे हो गया था। यद्यपि इसे कोई ताड़ नहीं सका था तो भी यह भूल कैसे हो गई इसी का विचार करती हुई वह मन ही मन राग दोहरा रही थी। राग गुनगुनाते-गुनगुनाते इस समय भी वह भूल नहीं सकी।

मजलिस में उससे भूल हो गई थी यह तो निश्चय था। वह उसी स्वर में गा रही थी—'ग ऽ-ग ऽ-गगरी ई ई-ग्रंह, गग ऽ री, भूल क्या थी ? क्यों नहीं पकड़ में आती ?—ग ग री मो ओ—'

मानो उसके प्रश्न का उत्तर हो—जैसे वह अपना ही अलाप सुन रही हो, उसी के कण्ठ बल्कि उससे भी मीठा और रसपूर्ण स्वर, मानो सचमुच किसी मदमाती गोपी की करुणाजनक स्नेहभरी पुकार हो, इस प्रकार रास्ते में सुनाई दिया—'गगरी मोरी भरन नहीं देत ।'

मणि का यह आलाप सुनकर वह चौंक उठी। वह स्वर उसे किसी प्रेत के मुंह से निकला हुआ -सा ज्ञात हुआ। गाड़ी में से सिर बाहर निकाल कर कहा—'ओ गाड़ी वाले ! गाड़ी रोको। हुसैन !' तबलची को सम्बोधन करके उसने कहा—'उठकर देख तो, वह कौन बैठी है ?'

गाड़ी वाले ने आगे बढ़ कर गाड़ी रोकी। मणि ने अपनी धुन में इधर कुछ ध्यान ही नहीं दिया।

'तुम्हारा उससे क्या नुकसान है ?' तबलची ने पूछा।

'तुम से मतलब ? चलो, मेरे साथ आओ।' यह कहकर गायिका गाड़ी से उतर पड़ी और मणि के पास जाकर उसने पूछा—'तू कौन है ? इस समय—यहाँ ?'

मणि चौंकी। उसने पीछे घूमकर देखा और नर्तकी की वेषभूषा देखकर सब कुछ समझ गई। सामने मणि का रूप देखकर वेश्या भी दंग रह गई और मन में अपना अभिप्राय सिद्ध करने की बात सोचने लगी।

'मैं चाहे कोई होऊँ, तुम्हें क्या ?'

'तू कोई दुःखी, अकेली स्त्री मालूम पड़ती है।'

'अच्छा, भला तुमने कैसे जाना ?'

'नहीं तो ऐसी सुन्दर स्त्री को ऐसे स्थान में और कौन कठोर हृदय पुरुष रहने देगा ?'

'इसमें तुम्हारा मतलब क्या है ?'

'मेरा ! तुम्हारा कण्ठ बड़ा सुरीला है ?'

मणि बिना समझे-बूझे उसके मुँह की ओर देखने लगी। दुनिया के छल

प्रपंचों से परिचित कुशल वेश्या अपना दाँव साधने लगी ।

'अपने इस कण्ठ को क्यों व्यर्थ नष्ट होने देती है ?'

'व्यर्थ ?' मणि ने पूछा ।

'हाँ इससे तो धन मिलेगा और अकेली इस प्रकार बैठकर लाई खाने के बदले तुम अच्छा खा-पीकर चैन की वंशी बजाने लगोगी ।'

मणि की आँखों में से आग बरसने लगी—'उसे मैंने तुम्हें सौंपा । जाओ तुम अपने रास्ते ।' परन्तु नर्तकी इस प्रकार सहज में छोड़ने वाली नहीं थी । वह स्वयं अधेड़ हो चुकी थी, उसके राग में कठोरता आने लगी थी ; जिससे कोई सुन्दर सुकण्ठ वाली और आकर्षक स्त्री की उसे अत्यन्त आवश्यकता थी । उसे ऐसा लगा मानो ईश्वर ने मणि को उसके लिए ही भेजा है ।

'ईश्वर ने यदि तुझे यह राग दिया है तो तुझे उसका उपयोग करना चाहिए ; विशेष कुछ नहीं, तुझे गाना सिखा दूंगी ; जब तेरी इच्छा हो गाना । भोजन व वस्त्र के अतिरिक्त महीने में पन्द्रह रुपया हाथ खर्च के लिए भी दूंगी । अगर चाहो तो मेरे साथ चलो । बम्बई के लिए गाड़ी एक घंटे में छूटेगी ।

महीने में पन्द्रह रुपया खर्च के लिए और भोजन मुफ्त । मणि को ऐसा प्रतीत हुआ मानो उसके हाथ सोने की खान लग गई ; किन्तु गणिका के साथ कैसी अधमता ! और अपनी सुरेखा से मिलने का क्या होगा ? उसने अपने कलेजे को कड़ा करके इस लाभदायक प्रस्ताव को अस्वीकार करते हुए सिर हिला कर कहा—'नहीं, जो कुछ हूँ वही ठीक है ।'

'देखो, ऐसा अवसर फिर हाथ नहीं आने का—समझी !'

'भले ही न आये !'

'जैसी तुम्हारी इच्छा ! अभी भी समय है, विचार कर ले । गाड़ी आने में अभी एक घंटे की देर है । इसके पहले अगर तुम्हारी इच्छा हो तो मुझसे स्टेशन पर आकर कहना और यदि इसके बाद फिर कभी विचार हो तो बम्बई में कांदिवाड़ी में लालमोहन के मकान में आना । मेरा नाम तुंगभद्रा है ।'

मणि उसकी ओर पीठ घुमा कर बैठ गई । गायिका निराश होकर लौट पड़ी और बड़बड़ाती हुई अपनी गाड़ी में आकर बैठ गई । मणि भी लोगों को स्टेशन की ओर जाते देख कर उठी । अपनी पुत्री को देखने की लालसा इतनी

उत्कृष्ट हो गई थी कि कल क्या होगा। इसकी उसे इस समय जरा भी परवाह नहीं थी। वह स्टेशन पर पहुँच कर टिकट लेने के लिए टिकट घर की ओर वढ़ी। टिकट लेने के लिए वह हाथ बढ़ाने जा ही रही थी कि एक पुरुष ने आगे आकर खिड़की में जिस स्टेशन का टिकट वह लेना चाहती थी उसी स्टेशन का टिकट माँगा। मणि ने चौंक कर उसे देखा। दोनों की आँखें चार हुई।

'कौन मणि ?'

'कौन मोघाराम ?'

'इस समय कहाँ जा रही हो।' मोघाराम ने पूछा। मणि लजा गई, दूसरे ही क्षण साहस कर उसने अपना सिर ऊँचा किया। अब लज्जा क्या ? संसार से उसे अब क्या सरोकार था ?

'मैं तुम्हारे महात्मा के यहाँ से चली आई हूँ।'

'ऐसा ! जा कहाँ रही हो ?'

'जहाँ आप जा रहे हैं।'

'वहुत ठीक, मैं टिकट लेता हूँ। मीठाकुआँ चलोगी न ?'

'जी हाँ, जोरा भगत के यहाँ जाऊँगी।'

मणि के लिए भी टिकट लेकर मोघाराम उसे दूर ले गया।

'तुम्हें खबर है ? जोरा भगत तो अब नहीं रहे।'

'अँय !' कब ?'

'आज पन्द्रह-बीस दिन हुए होंगे।'

'तब मेरी सुरेखा का क्या होगा। गंगा वहू तो उसे यों ही सता-सताकर मार ही डालेगी।'

'घबराओ नहीं। उसका पति बुद्धिमान है। परन्तु तुम क्यों इस प्रकार मारी-मारी फिर रही हो ?'

'पुत्री को देखने के लिए मीठाकुआँ जा रही हूँ।' जरा नैराश्य-पूर्ण स्वर में मणि ने कहा। जोरा भगत को वह पितातुल्य मानती थी ; मृत्यु का समाचार सुनकर मीठाकुआँ जाने की उसकी इच्छा आधी रह गई।

'वे सब तो अंबाजी का दर्शन करने गये हैं।

'मेरी सुरेखा को भी लेकर ?'

'हां और नहीं तो क्या।'

मणि का मन टूट गया—सब उमंग जाती रही। उसकी आंखें डबडबा आईं। उसने अनजाने ही अपना सिर पीट लिया।

'मेरा भाग्य ही फूटा है।'

'क्यों? तुम घबड़ाती क्यों हो? मैं अपने साथ तुम्हें लिवा ले चलूंगा। महाराज के यहां से क्यों चली आईं?'

'महाराज! आपका महाराज हरामखोर है, लम्पट और पापी है। आपके सुधारक लुच्चे हैं। मोघा भाई! मुझे तो अब मरना बाकी रह गया है। ऊपर आकाश है और नीचे पृथ्वी है। मैं कहां जाऊं।' कहकर मणि रोने लगी। मोघाराम का भी हृदय उसकी यह दशा देखकर भर आया।

'घबराओ मत! रोओ नहीं तुम मेरे घर चलो।'

'नहीं, नहीं, आपको कष्ट होगा।'

'नहीं होगा।'

'नहीं, मैं बम्बई जाऊंगी। मेरे एक मुलाकाती हैं।'

'परन्तु इस समय तो साथ चलो।'

'नहीं, आज नहीं इसी गाड़ी से जाऊंगी' कहकर मणि लौटी और ओंठ पर पर ओंठ दबाकर तुंगभद्रा की ओर चली।

मोघाराम खामोश उसकी ओर देखता हुआ खड़ा रहा।

'तुंगभद्रा!' मणि ने कहा। तुंगभद्रा ने सिर उठाकर देखा।

'क्या? कौन? ओहो! तू कहां से।'

'हां, मैं हूं, क्यों बम्बई ले चलना है।'

'क्यों नहीं, अगर तुम चलो।'

'परन्तु एक शर्त है!'

'क्या?'

'न तो मैं कहीं गाने जाऊंगी और न किसी पुरुष को अपने पास आने दूंगी!'

'स्वीकार, और कुछ?'

'और कुछ नहीं। यदि स्वीकार हो तो मेरा भी बम्बई का टिकट खरीद लो।'

'हुसेन! जा बम्बई का एक और टिकट तो ले आ।'

हुसेन टिकट ले आया। मणि फिर मोघाराम के पास गई।

'मोघाराम भाई ! अब शायद अधिक भेंट नहीं होगी। मेरी सुरेखा का ख्याल रखना। भगवान अच्छा दिन दिखायेगा तो ले जाऊँगी, नहीं तो जैसी उनकी इच्छा !' मणि ने अवरुद्ध कण्ठ से कहा। मोघाराम की आँखों में आँसू आ गये।

थोड़ी देर में रेलगाड़ी आ गई और मणि तुंगभद्रा के साथ बम्बई चल दी।

: २१ :

रायसाहब दूसरे दिन उठे किन्तु आज वह बेचैन थे। मणि क्या करेगी, क्या नहीं करेगी, इसका उन्हें बड़ा डर बना हुआ था जिससे उठते ही पहले उन्होंने रामसिंह को बुलाया। रामसिंह ने उन्हें विश्वास दिला दिया कि जो स्त्री खिड़की में से कूदकर भागी थी उसे शहर से बाहर निकाल दिया गया है। इस विश्वास दिलाने के बदले में रायसाहब ने रामसिंह का वेतन बढ़वाने का वचन दिया। रामसिंह के जाते ही अपने नौकर मधु को मीठाकुआँ के तलाटी मोघाराम को बुलाने के लिए भेजा परन्तु वह अपने घर गया हुआ था जिससे नौकर वापस चला आया।

'मधु ! तीसरे पहर की गाड़ी से उसके घर जा। वहाँ से मीठाकुआँ दो-चार कोस होगा। वहाँ मोघाराम यदि मिल जाय तो कहना कि तुरन्त रायसाहब तुम्हें बुला रहे हैं।'

'अच्छा सरकार !'

'हूँ, नीचे कोई दूसरा जमादार भी है ?'

'जी हाँ, पाँडे है।'

'उससे कहो कि मारुति के पास जाकर पूछ आये कि उस स्त्री का कुछ पता लगा या नहीं ?'

'बहुत अच्छा सरकार !' कहकर मधु चला गया।

'चलो, इस ओर से तो निश्चित हुआ अब इस लड़की का प्रबन्ध करना रह

गया ।' गम्भीरलाल बड़बड़ाये । इसके पश्चात् मेज पर रखा हुआ समाचारपत्र उठा कर पढ़ने लगे । सन्ध्या समय मोघाराम आये ।

'मोघाराम ! एक बहुत ही गुप्त बात का पता लगाना है ।'

'कौन-सी बात हजूर ?'

'एक स्त्री-अपराधिनी का पता लगाना है । यह काम तुम्हारे सिवा किसी दूसरे को नहीं सौंपा जा सकता । पता लगा है कि अभी वह मीठाकुआं में आई थी, तुम्हें कुछ मालूम है ?'

मोघाराम सोच में पड़ गया । क्या मणि अपराधिनी है ? या रायसाहब किसी गूढ़ मतलब से यह बात जानना चाहते हैं ? विगत रात्रि में दोनों को स्टेशन पर एक साथ देखकर किसी ने चुगली तो नहीं खाई है ?

'नहीं हुजूर ! मुझे तो कुछ खबर नहीं है ।'

'मुझे पता लगा है कि वह गांव में किसी के यहां अपनी एक पुत्री भी छोड़ गई है !' गम्भीरलाल ने कहा ।

'एं !' बिल्कुल अनभिज्ञ बनकर मोघाराम ने आश्चर्य प्रकट करते हुए कहा। रायसाहब के प्रश्न करने के ढंग से वह ताड़ गया कि अवश्य इसमें कोई गहरा भेद है इससे उसने सब प्रश्नों के उत्तर में 'न' करने में ही कुशल समझी ।

'इतने छोटे से गांव में क्या होता है, इसकी भी खबर तुम नहीं रखते ? तुम तलाटीगिरि करते हो या घास छीलते हो ।' क्रोध से गम्भीरलाल ने पूछा ।

'किन्तु सरकार ! ऐसी बातों का कैसे पता चल सकता है ?'

'हां जी, हां ! तुम्हें तो सदा यहां ही आने की पड़ी रहती है, गांव पर तो रहते नहीं और न सरकारी काम करने की ही कोई चिन्ता है !'

'जी, मैं पता लगाकर दो-चार दिन में समाचार देने की चेष्टा करूंगा ।'

'दो-चार दिन नहीं, मुझे इसकी खबर कल मिलनी चाहिए । अभी तुम लौट जाओ और कल शाम की गाड़ी से आ जाना ।'

'बहुत अच्छा सरकार !' कहकर मोघाराम उठा । उसके मन में बार-बार विचार उठने लगा कि क्या मणि अपराधिनी है ? यदि है तो क्या ? ऐसे दुःख की मारी, अनाथ स्त्री के लिए मोघाराम के हृदय में बहुत दया उत्पन्न हो गई थी जिससे यथाशक्ति उसका एवं उसकी पुत्री का उपकार करने का उसने निश्चय

कर लिया। इसी से रायसाहब के प्रश्नों से उसके मन में संशय उत्पन्न हो गया था। यदि अपराधिनी हो तो मेरा क्या? गम्भीरलाल उसकी खोज क्यों कर रहे हैं? वह इसी उधेड़बुन में रहा कि बातें बताना उचित है अथवा नहीं?

मोघाराम ने सोचा कि बातें छिपाना ठीक न होगा क्योंकि मीठाकुआँ का प्रत्येक मनुष्य, बच्चा-बच्चा, मणि के सम्बन्ध में जानता है कि वह एक लड़की छोड़कर यहाँ से चली गई। इस समय वह अंबाजी गये हैं, यह भी सच है। इस बीच में गम्भीरलाल चाहता क्या है, यह मालूम हो जायगा।

मोघाराम ने दूसरे दिन आकर, गम्भीरलाल से मणि का इतिहास बता दिया। यह भी कह दिया कि उसकी पुत्री इस समय शिवापटेल के पास है।

'शिवापटेल तो जोराभगत का पुत्र है न?'

'जी हाँ।'

'हूँ—कल मेरा डेरा मीठाकुआँ में पड़ेगा।'

'जैसी सरकार की मरजी!' धीमे से मोघाराम ने कहा 'परन्तु शिवापटेल वहाँ है नहीं।'

गम्भीरलाल की आँखें चमक उठीं। उसका मतलब एक साधारण तलाटी समझ जाय यह उसे नहीं रुचा, साथ ही अपना मतलब सिद्ध न होने से वह चिड़चिड़ा उठा।

'कहाँ गया है? पटेल होकर गाँव में नहीं रहता?' रायसाहब ने अफसरी रौब झाड़ते हुए कहा।

'सरकार! आप ही ने छुट्टी दी होगी। उसका बाप मरा तभी से वह छुट्टी पर है?'

'हूँ! कहाँ गया है?'

'कहीं यात्रा पर गया है।'

'कहाँ?'

'मुझे खबर नहीं है।' झूठ बोलते हुए मोघाराम ने कहा।

'मोघाराम! मालूम होता है तुम्हारे दिन पूरे हो गये हैं; सावधान रहना!'

'क्यों सरकार?'

'तुम अब झूठ बोलना सीख गये हो इससे।'

मोघाराम के मुख पर नम्रता, आँखों में दीनता थी; किन्तु अन्तर में उसका कलेजा धड़क रहा था। बड़ी कठिनाई से वह अपने मन को सँभाले था।

'सरकार! आपसे भला झूठ बोल सकता हूँ? कहिये तो इसका भी पता लगाकर आपको सूचित करूँ।'

'नहीं, आवश्यकता नहीं है। ठीक है, देखा जायगा।' कहकर गम्भीरलाल ने उसे विदा किया। उसके पीठ फेरते ही मधु को बुलाकर शिवापटेल कहाँ यात्रा पर गया है इसका पता लगाने के लिए भेजा। मोघाराम गम्भीरलाल के मकान से निकलकर पास ही की दूकान पर बैठ गया और मधु निकला तो उसके पीछे हो लिया। मधु स्टेशन गया, वहाँ दोनों में अचानक भेंट हो गई हो इस प्रकार वह मधु से मिला और दोनों साथ ही साथ मीठाकुआँ गये। वहाँ पहुँचने के पहले ही मोघाराम ने मधु के पेट से सब बातें निकलवा लीं कि किस कारण से मधु वहाँ आया है। इसके उपरान्त जिस रात्रि में मणि गम्भीरलाल के यहाँ आई थी वे सब बातें भी मधु ने बता दीं। इसमें क्या भेद है इसका पता तो मोघाराम को नहीं लग सका परन्तु गम्भीरलाल कोई गम्भीर चाल चल रहा है; यह तो वह समझ ही गया।

: २२ :

गाँव पहुँच कर मोघाराम ने बहुत सोच-विचार किया। यह तो निश्चत था कि किसी अच्छे उद्देश्य से गम्भीरलाल यह गुप्त पूछ-ताछ नहीं कर रहे हैं। यह भी स्पष्ट था कि शिवा पटेल के वापस आने के बाद वह सुरेखा को नहीं पा सकता, अतः यहाँ लौट कर आने के पूर्व ही यदि सुरेखा अदृष्ट हो जाय तो कैसा रहे यह मोघाराम ने सोचा।

दूसरे ही दिन वह शहर गया और पन्द्रह दिन की छुट्टी का आवेदन-पत्र लिखकर अपने एक मित्र को दूसरे दिन तहसीलदार साहब को दे आने का आदेश कर दे दिया। मोघाराम की एक बहन काठियावाड़ में ब्याही थी, वह बहुत दिनों से बीमार है इसी आधार पर छुट्टी का प्रार्थना-पत्र दिया था।

मोघाराम घर गया और भीतर एक कोने में गड़ी हुई अपनी पूंजी निकाली। लगभग आठ-नौ सौ रुपया एक हंडिया में रखा हुआ था। उसमें से जितना रुपया कमर में बाँधा जा सका उतना लेकर फिर उसने हंडिया ज्यों-की-त्यों गाड़ दी। रुपया कमर में बाँधकर, एक धोती, एक कुरता, डोरी-लोटा, एक कम्बल एकत्र कर उसने चन्दन, होरमा तथा गीता आदि सब वस्तुओं को एक साथ आसनी में बाँधकर छोटी-सी पोटली बना ली। इस पोटली को बगल में दबाकर वह निकल पड़ा।

उस समय अम्बाजी तक रेलगाड़ी नहीं गई थी जिससे थोड़ी दूर तक गाड़ी में और कुछ दूर पैदल चलकर मोघाराम वहाँ से पहुँचा परन्तु उसे शिवापटेल का पता मिल गया। तुरन्त धर्मशाला खोजकर शिवापटेल से मिला। थोड़ी देर तक इधर-उधर की बात कर उसने सुरेखा की बात चलाई।

'मुझे मणि मिली थी, वह बम्बई है और मुझे वह अपना पता दे गई है। उसने सुरेखा को लेकर मुझे बम्बई बुलाया है।'

'क्या कहते हो? सचमुच कोई सम्बन्धी मिल गया क्या?'

'हाँ! उसका भाई आया था, उसी के साथ गई, अब वह सुखी है।'

'अच्छा! अब उसका भण्डाफोड़ होगा।' गंगा बहू ने कहा।

'इससे अपने से क्या मतलब?' मोघाराम ने बात उड़ाते हुए कहा—'हम तो चिट्ठी के चाकर हैं, आप कहें तो आज ही ले जाऊँ।'

'नहीं, नहीं, यह लड़की मुझे बहुत प्यारी है।' पटेल बोले।

'हाँ, लेकिन जब उसकी माँ माँग रही है तब क्या इनकार कर सकोगे?' गंगाबहू ने जवाब दिया। तुरन्त शिवापटेल और उसके बीच में महा-वाग्युद्ध छिड़ गया। आखिर गंगा बहू की जीत रही। उसी दिन मोघाराम सुरेखा को लेकर रवाना हो गया।

मोघाराम की मानजी बड़ोदा में रहती थी, वहाँ गया। सुरेखा को उसे सौंपकर, एक दिन वहाँ उसने विश्राम किया और दूसरे दिन मीठा कुआँ के लिए लौट पड़ा।

: २३ :

गम्भीरलाल उठे, दाँतुन आदि से निपट कर समाचारपत्र पढ़ने लगे। इतने में मधु चाय लाया।

'मधु ! मोघाराम का पता लगा ?'

'जी हाँ कल रात में मोघाराम बाहर से आ गये हैं ?'

'अच्छा, इस समय घर पर हैं क्या ?'

'जी हाँ, क्या बुला लाऊँ ?'

'हाँ,' कहकर गम्भीरलाल चाय पीने लगे।

मधु के जाते ही गम्भीरलाल अधीर हो उठे। कुछ देर में मधु वापस आया।

'सरकार ! मोघाराम संध्या पर बैठे हैं, उठने पर ही आवेंगे।'

'जहन्नुम में जाय उसकी संध्या !' गम्भीरलाल ने क्रोध को दबाते हुए कहा। जब मोघाराम आये उस समय तक उनके क्रोध का पारा बढ़कर एक सौ आठ डिग्री तक पहुँच गया था।

'क्यों मोघाराम ! यात्रा कर आये ?' गम्भीरलाल ने यथाशक्ति शान्ति से पूछा। मोघाराम इसके लिए पहले से ही तैयार था, पर उसकी नम्रता में जरा भी अन्तर नहीं आया।

'जी, मैं तो अपनी बहन के पास गया था, कारण तो मैंने प्रार्थना-पत्र में लिख दिया।'

'परन्तु सच्चा कारण क्या था ? क्या हर एक पटवारी को माँ-बहन की बीमारी ही में छुट्टी की आवश्यकता होती है ?'

'सरकार ! मेरा कारण सच्चा था।'

'तेरी बहन अम्त्राजी में रहती है या शिवापटेल के साथ ? वह यात्रा करने गई थीं ?'

'नहीं सरकार ! वह तो जेतलसर रहती है।' मोघाराम मन में डरने पर भी अज्ञानता का ढोंग रचते हुए बोला।

'हूँ तो तू वहाँ हो आया ?'

'जी हाँ।'

'शिवापटेल कहाँ है ? मीठाकुआँ आ गया ?'

'मुझे क्या पता ?'

'ऐसा ? मोघाराम तेरे सिर पर मौत नाच रही है।'

'क्यों हजूर ?'

'मुझे धोखा देता है ? कमबख्त ! चल बता ! जो लड़की शिवापटेल के पास थी उसे लेकर कहाँ छोड़ आया है ?'

'कौन लड़की ? मुझे क्या मालूम ?'

'हरामखोर ! झूठा ! डाकोर जाकर जिसे तू शिवापटेल से ले आया, बता उसे कहाँ रख आया है ? समय रहते सँभल जा और बेकार अड़ंगा लगाये बिना जो कुछ मैं कहता हूँ कर दे नहीं तो तेरी कुशल नहीं।'

'क्या कहूँ सरकार ? आपकी बात तो मेरी समझ में ही नहीं आई।'

'समझ में कैसे आयेगी ? देख यह ढोंग छोड़ दे। मुझे सब पता है। शिवापटेल वापस आ गया है। उसके पास से लड़की तू माँग ले गया और अब झूठ बोल रहा है ?'

मोघाराम सकपका गया। उसने यह नहीं सोचा था कि गम्भीरलाल इतना अनुसंधान और चौकसी रखेगा। अब तक वह दब रहा था क्योंकि नौकरी छूट जाने का उसे भय था। अब यह पता लग जाने पर कि गम्भीरलाल को सब कुछ मालूम हो गया है तो वह नौकरी का भी मोह त्याग कर गम्भीरलाल से निडर होकर प्रश्नोत्तर करने के लिए तैयार हो गया।

मोघाराम पुराने विचार का आदमी था। उसे भाग्य पर पूर्ण विश्वास था फलस्वरूप वह किसी की जरा भी परवाह नहीं करता था। उसके मस्तिष्क में अनेकों विचार उत्पन्न हुए जिससे गम्भीरलाल की पूछताछ का क्या कारण हो सकता है इसका कुछ-कुछ आभास उसे मिल गया था और सच्चे और श्रेष्ठ ब्राह्मण का रौद्र स्वरूप थोड़ा बहुत दिखलाई पड़ा। उसने गौरव से अपना सिर ऊँचा करके कहा—'सरकार ! मैं झूठ बोलता हूँ पर वैसा कर्म नहीं करता। आप सब कुछ जानते हैं तब मुझे कुछ छिपाने की आवश्यकता नहीं है। जी हाँ, मैं लड़की ले गया हूँ, तब कहिए ?'

'तब मुझे उस लड़की को दे दो।' गंभीरलाल ने समझा कि मोघाराम अब हाथ में आ जायगा।

'क्यों, किसलिए ? आप सरकारी काम के लिए उसकी माँ की खोज कर रहे थे, किन्तु लड़की के विरुद्ध भी क्या अभियोग है ?'

'इससे तुझे क्या सरोकार लड़की कहाँ रख आया है, बताता क्यों नहीं ? व्यर्थ माथापच्ची क्यों करता है ?'

'हजूर ? आप तो अन्नदाता हैं, किन्तु मैं जानना चाहता हूँ कि किस नियम से आप उसे माँग रहे हैं।'

'नियम है मेरी इच्छा ? लड़की कहाँ है तुझे बताना है या नहीं ?'

मोघाराम की नसें तन गई। उसने दृढ़ता से कहा—'नहीं ?'

'नहीं ? मोघाराम ? तू क्या जानता नहीं है कि किसके साथ बात कर रहा है।' गम्भीरलाल ने दाँत पीसकर कहा।

'हाँ, साहब ? आप बड़े है, मैं गरीब हूँ; परन्तु बालिका आपके हाथों न सौंपने का कारण है ?'

'क्या ?'

'जिस मनुष्य ने माँ को दुःख दिया, वह भला उसकी पुत्री की क्या रक्षा करेगा ?' मोघाराम ने अपनी कल्पना-शक्ति के सहारे गम्भीरलाल के भेद का कुछ पता लगाकर अँधेरे में तीर चलाया जो जाकर ठीक निशाने पर बैठा। गम्भीरलाल को मानो बिच्छू ने डंक मारा हो इस प्रकार तिलमिलाकर वह कुर्सी से उछल पड़े।

'क्या कहा ?'

'बिलकुल सच कहता हूँ।' शान्ति से मोघाराम ने कहा।

'तुझे खबर कि तेरी रोटी छिन जायगी, दाने-दाने को मोहताज हो जायगा। कुछ सोच समझकर बोल रहा है या यों ही ?'

'रोटी छीनना क्या किसी के हाथ की बात है ? इच्छा हो तो यह लो अपनी नौकरी। बारह रुपये की पटवारीगिरी। क्या भगवान इतना भी नहीं देगा ?'

'यह बात है ! तब तू लड़की नहीं देगा ? याद रखना—गंभीरलाल से

पाला पड़ा है।'

'साहब ! आप बहुत बड़े हैं, लें अपनी नौकरी ! या और कुछ ? दिसावर सलामत रहे, जहाँ जाऊँगा वहीं दो रोटी कमा-खा लूंगा। आपकी आज्ञा हो तो अब जाऊँ।'

'इस समय तो जाओ। विगत फसल में कितना रुपया घूस लिया था ? कलेक्टर साहब से कहने भर की देर है। मुझसे शत्रुता करके सुख की नींद न सो सकोगे।'

'उसमें क्या मैं अकेला ही साझीदार था ? मैं भी कलेक्टर साहब से दूसरे साझीदार का नाम बताऊँगा रायसाहब।' यह कहकर उसने गम्भीरलाल की ओर देखा। गम्भीरलाल ने आँखें नीची कर लीं। उन्हीं को नम जाना पड़ा। अपना गौरव रखने के लिए मोघाराम को वह समझाने लगे।

'मोघाराम ! तू बेकार जिद कर रहा है। इस लड़की को क्या मैं मार डालूंगा ? मैं तो उसे ऐसे स्थान पर रखना चाहता हूँ जहाँ उसे सुख मिले।'

'इस समय जहाँ वह है वह बड़े सुख में है। इससे बढ़कर अच्छा ठिकाना उसे मिल नहीं सकता।'

'उसकी माँ कहाँ है यह तो मुझे बता दो।'

'मुझे पता नहीं।'

'तुम झूठ बोलते हो !' थाह लेने की इच्छा से गम्भीरलाल ने कहा।

मोघाराम ने इसका कुछ भी उत्तर नहीं दिया। थोड़ी देर ठहरकर उसने कहा—'हजूर ! अब आज्ञा हो तो चलूं। नमस्कार !'

मोघाराम चला गया। उसे गम्भीरलाल का डर लगा। वह सही-सलामत उसे रहने देगा, यह विश्वास उसे नहीं हुआ।

तीसरे ही चौथे दिन कलेक्टर का हुक्म आया कि मोघाराम नौकरी से अलग कर दिया गया है। गंभीरलाल पर दाँत पीसता हुआ मीठाकुआँ से वह शहर आया; वहाँ भी उसके लिए फौजदारी का वारंट तैयार था।

गत वर्ष घूस लेने के अभियोग में उस पर सरकार की ओर से लम्बा मुकदमा चला। मदनलाल मारुति ने उसे बचाने का जी तोड़ प्रयत्न किया, परन्तु व्यर्थ। सेशन्स जज ने उसे तीन वर्ष कठोर कारावास का दण्ड दिया।

मोघाराम को किसी बात की चिन्ता नहीं थी अतः उसने हँसते हुए, इसे भी किस्मत का एक खेल समझ कर दण्ड स्वीकार कर लिया।

गम्भीरलाल को शान्ति मिली। मोघाराम के जाने से लड़की का पता देने वाला कोई न रहा और मणि का भी कहीं ठौर-ठिकाना नहीं था जिससे अपने मार्ग का सब कंटक दूर कर अपने भविष्य जीवन के सुधार में वह लगे। उनका विवाह भी थोड़े ही दिनों बाद एक धनाढ्य की कन्या के साथ हो गया।

: २४ :

समाज के उद्धारकगण उस दिन उठकर अपने-अपने घर चले गये परन्तु समाज का उद्धार करने का उनका उत्साह पहले के समान ही बना रहा, वह कम नहीं हुआ। धनेशचन्द्र अवश्य ही तनिक नरम पड़ गये थे; 'वास्तविक' कार्य करने की लगन जरा भारी पड़ गई थी। मदनलाल मारुति भी मणि के इतिहास से कुछ निराश हो गये थे। उन्हें मणि बहुत याद आती थी, परन्तु वह गई कहाँ यह उनकी समझ में न आता था।

पर 'मार्तण्ड प्रकाश' के विद्वान् संपादक महोदय के मस्तिष्क में उद्धार करने के अनेकों विचार चक्कर काट रहे थे। समाज उद्धार का काम ढीला पड़ जाने से उनके सामने दो कठिनाइयाँ आ खड़ी हुई। वह स्वयं सभा के कोषाध्यक्ष थे जिससे सभा का पैसा उनके पास रहता था। अब वह आमदनी रुक जाने से 'मार्तण्ड प्रकाश' का बैंक खाली हो गया। इसके अलावा जो प्रसिद्धि प्राप्त होने की आशा थी वह भी नष्ट होती जा रही थी। घर की आय बढ़ती हुई नहीं दिखाई दी। किसी प्रकार कोई नया आडम्बर रचने के लिए वह छटपटा रहा था। पहली बार धनेशचन्द्र और मारुति ने उसे पीछे रख कर सब मान स्वयं अपने हिस्से रखा यह तरफड़दास को बहुत ही कष्ट दे रहा था। यही सब विचार उनके अनिश्चित मस्तिष्क में चक्कर काटा करते थे।

एक दिन ऐसे ही विचार बड़ी तेजी से उनके मस्तिष्क को मथ रहे थे—सागर-मंथन से जैसे रत्न निकले थे वैसे ही मस्तिष्क मंथन से उनकी विचार-धारा के अनेक अंश टूट-टूट कर व्यर्थ हो रहे थे। इन विचारों का कैसे उपयोग किया जाय इसी का मार्ग वह ढूंढ़ रहे थे। कोई रास्ता नहीं सूझा। इतने ही में तरफड़दास की धर्मपत्नी उधर से निकली। उनके पैरों की पायलों की झंकार तरफड़दास के कान में पड़ी। बस अब क्या था, मार्तण्ड प्रकाश के ब्रह्मा के अंधारग्रस्त मस्तिष्क में नवीन प्रकाश फैल गया और उस प्रकाश में से एक योजना साक्षात् सरस्वती के समान ऊपर आई। तरफड़दास 'धत् तेरे की !' कहते हुए एकदम खड़े हो गये।

उनके चेहरे पर उनकी धारणा के अनुसार इस दैवी तेज विराज रहा था। विद्युत की शोध करते समय फ्रेंकलिन के और निर्वाण का मंत्र हाथ लग जाने पर भगवान बुद्ध के मुंह पर जैसी कांति छा गई थी वैसी ही प्रभा उनके मुंह पर छा गई। कैसी सुन्दर योजना ? इतने दिनों तक यह कहाँ छिपी पड़ी थी।

'डियर ? जरा यहाँ तो आओ !' तरफड़दास ने अपनी धर्मपत्नी को संबोधन करते हुए कहा। उनकी धर्मपत्नी ने हिन्दी की दूसरी पुस्तक तक केवल अभ्यास किया था, परन्तु जब तरफड़दास स्वयं आनन्द से ओत-प्रोत होते तो उसे 'डियर' कह कर पुकारते थे। उनकी अर्द्धांगिनी भी उन्हीं के योग्य थीं। कद में ऊँची ताड़ जैसी, सूखी सपाट, रंग में कोयले जैसी काली, नाक छोटी और चपटी और कपोल चिपके हुए होने पर भी कपड़ा पहनने की ठसक और नखरे के साथ धीरे-धीरे बोलने की चतुराई उसके व्यक्तित्व में चार चाँद लगा देती थी। 'मार्तण्ड प्रकाश' की बहुत कुछ आय प्रकाशक महोदय की पत्नी के लिए सस्ते, भड़कीले और 'फैशनेबुल,कपड़े और जम्फर आदि के खरीदने में उड़ जाती थी; और ललिता की संपूर्ण बुद्धि और समय उन सब कपड़ों को कला के साथ उपयोग कर अपने लकड़ी के घोड़े जैसे शरीर में अधिकाधिक छटा लाने में लग जाती थी ! जितना उसे अपनी चाल का घमण्ड था उतना ही गर्व अपनी आवाज के लिए भी था।

उसकी आवाज धीमी और मीठी थी। प्रकृति ने ऐसा शरीर और रूप गढ़ते समय उसे ऐसी आवाज क्यों दी यह कोई तत्त्वज्ञानी ही बता सकता है। इसी

'एक दूसरा लाभ भी है ?'

'वह क्या ?'

'तुम्हें खबर है या नहीं कि विलायत में पति की सहायता करने के लिए स्त्रियाँ मताधिकार की भी माँग लाती है। इस प्रकार...।'

'हाँ, समझ में आ गया, मेरे द्वारा आपका भी कुछ लाभ होगा।'

'शाबाश ! हो तुम चतुर !'

ये शब्द सुनकर, सचमुच वह चतुर हो ऐसा समझ कर वह हँसी।

'तब एक क्लब चालू करो। बम्बई में मेरे पिताजी के मालिक एक क्लब में जाते थे।'

'लो, तब तो तुम्हें उसका अनुभव भी होगा ?'

'क्यों नहीं ?' कहकर फिर उसने आँखें मटकाईं, परन्तु गहना-कपड़ा सब नया चाहिए। वहाँ तुम्हारी इन धोतियों से काम नहीं चलेगा।'

'मानता हूँ, यह तो ठीक ही है। दुनिया में रहने पर किसी बात से भला छुटकारा मिल सकता है ?'

जबानी कौल-करार हुआ। तरफड़दास ने मान-मर्यादा बढ़ाने के लिए पत्नी को आगे किया। ललिता ने बाप के मालिक के अनुभव से और नये कपड़ों की लालच से यह योजना स्वीकार कर ली।

तरफड़दास को अनुभव हुआ कि इस योजना की सिद्धि में मारुति की आवश्यकता पड़ेगी, इसलिए उसे मनाने चले। पहले तो मारुति कुछ तने; पर बाद में स्वीकृति दे दी। समाज-उद्धार में उसकी श्रद्धा अब कम हो गई थी। तरफड़दास फिर गम्भीरलाल से मिला।

गम्भीरलाल को यह योजना बहुत भाई; अतः उसने समाज-उद्धार-सभा की एक बैठक की। प्रस्ताव पास हो गया। नसरवान जी सेठ ने अपने मकान का हाल मुफ्त देने का वचन दिया। सब धीरे-धीरे अनजान में इस निश्चय पर आते गये कि समाज-उद्धार सुख से होता है, सुख मौज से मिलता है, मौज खाने-पीने और गप-शप से मिलती है और जिस संस्था में खाना मिले, पीना मिले, गप-शप करने के लिए मित्र मिलें, वह संस्था समाज का उद्धार अवश्य करेगी। इसमें लेशमात्र भी सन्देह के लिए स्थान नहीं है।

दूसरा भाग

: १ :

संध्या का समय था। आकाश में काले बादलों के समान धुआं ही धुआं दिखाई पड़ रहा था। बस्ती में रहने से यह धुआं विषाक्त हो गया था, लेकिन वहां के निवासियों को इस विष का अनुभव नहीं होता था। कीचड़ के कीड़ों को उसकी गंध नहीं मालूम पड़ती। पर विष तो चारों ओर फैलकर पुरुष, स्त्री और बालकों के जीवन को नष्ट करता ही है। यह बम्बई जैसे बड़े-बड़े शहरों की वर्तमान संस्कृति की विशेषता है।

कांदिवाड़ी नामक बड़े मुहल्ले के एक मकान के ऊपर एक छोटी-सी कोठरी में मणि लेटी थी। उसका बिछौना और गद्दा फटा-पुराना था। मुख कुम्हलाया हुआ था जिस पर निराशा और दुःख की रेखायें स्पष्ट दिखाई दे रही थीं।

मणि को नर्तकी के साथ आये तीन मास हो गये थे। इन तीन महीनों में उसने गाना-बजाना सीख लिया था; पर उसके जीवन में से रस जाता रहा। दुःख में, गर्भावस्था में जो संताप उसके मन को कभी पराजित नहीं कर सके थे वह आज उसे सता रहे थे। बिछौना, घर, तुंगभद्रा, बम्बई आदि सब उसकी निगाह में घृणित थे। यहां उसकी परिष्कृत आत्मा पर अनेक आघात लगे थे। उसमें अनेक घाव हो गये थे जिनसे सदैव रक्तस्राव होता रहता था।

तुंगभद्रा का कृत्रिम जीवन, उसके झूठे आभूषण, पाउडर का रंग, नीच संगति, यह सब उसे पीड़ा पहुँचा रहे थे। उसका गला घुटता हुआ प्रतीत होता था। नदी तालाब में डूबकर जीवन नष्ट कर देने की प्रबल इच्छा बार-बार उमड़ती थी। उसे प्रेम से भरा रसपूर्ण गाना अच्छा नहीं लगता। वह दुःखपूर्ण

गीतों को ही गाती। वस्त्राभूषणों की ओर तो वह आँख उठाकर भी नहीं देखती थी। न तो किसी के पास बैठती और न किसी से बोलती।

उसे यहाँ सब प्रकार का शारीरिक सुख था। अच्छा भोजन मिलता था, सोने के लिए स्थान था। रात्रि में संगीत सुनती थी। पर थी वह बन्दी—

सब प्रकार से बन्दी थी। अन्तरात्मा और उसके संस्कार तो बन्दी हो ही गए थे, शरीर भी कारागृह में था। तुंगभद्रा खूब प्यार का दिखावा करती परन्तु धीरे-धीरे उसने उस पर ऐसा चौकी-पहरा बैठा दिया था जिससे वह न तो बाहर निकल पाती थी, और न किसी से मिल-जुल ही सकती थी। उसके दुर्भाग्य से मिलने वाला कोई था भी नहीं। पर बन्दी बनकर रहना कौन पसंद करेगा? उसकी छत केवल चार फुट चौड़ी थी। वहीं वह अपना समय किसी प्रकार काटती थी। कालिदास की कल्पना के समान बादलों द्वारा सुरेखा के पास संदेशा भेजकर अपना जीवन व्यतीत करती थी।

तुंगभद्रा धीरे-धीरे मणि को वश में करने का प्रयत्न कर रही थी, और वह भड़कने न पावे इस विचार से बड़ी ही सावधानी से आगे कदम बढ़ाती थी। उसकी अवस्था अब उतर रही थी जिससे गाना सुनने के लिए शायद ही अब कोई उसके पास आता। तुंगभद्रा को विश्वास हो गया था कि अब उसका गला भी बिगड़ता जा रहा है। इससे वह सोच रही थी कि अपने यारों के लिए यदि कोई नई चीज वह न जुटा सकी तो घर पर पड़ी-पड़ी भूखों मरने की नौबत आ जायगी। यही कारण था जिससे वह मणि को वश में करना चाहती थी। मणि में रूप था, गुण था, मीठा राग था, चतुराई थी, यदि वह वश में हो जाय तो तुंगभद्रा का बेड़ा पार हो जाय। तुंगभद्रा के यहाँ आने वालों में सेठ चन्दूलाल मुख्य था। वह धनाढ्य था और शौकीन भी। अब वह भी पहले जैसे भाव से तुंगाभद्रा की पूजा नहीं करता था।

एक दिन ऊपर अकेली बैठकर मणि अपना जी बहलाने के लिए भगवान से प्रार्थना करती हुई एक दुःखपूर्ण गीत गा रही थी। उसी समय सेठ चन्दूलाल तुंगभद्रा के यहाँ आ पहुँचा और मणि का गाना सुनकर चौंक उठा। उसने तुंगभद्रा पर व्यंग्य कसा और गाने वाली के सम्बन्ध में पूछताछ की। तुंगभद्रा उसे ऊपर लिवा ले गई, विवश हो दूसरे की प्रसन्नता के लिए मणि को गाना

ही पड़ा । सेठ चन्दूलाल तो उस पर लट्टू हो गया । उसे मणि का राग दुनिया भर में सब से श्रेष्ठ जँचा । मणि की सुन्दर मुखाकृति उसके हृदय-पट पर ऐसे अंकित हो गई कि रात भर वह मणि का ही स्वप्न देखता रहता ।

दूसरे दिन मणि ने देखा कि तुंगभद्रा बात-बात में चन्दूलाल के धन-ऐश्वर्य आदि का बखान करती है । क्या कारण था; उसे शुरु में वह समझ भी न सकी । संध्या समय सेठ जी आये और उन्होंने फिर मणि का गाना सुना ।

तीसरे दिन तुंगभद्रा आकर कहने लगी, 'मैंने तुम्हें भूखों मरने से बचाया है, इसलिए उसके बदले तुम्हें मेरी कुछ मदद करनी चाहिये ।'

'क्या मदद करूँ ? मेरे हाथ में कुछ हो भी । तुम चाहती हो कि मैं नीचे बैठकर गाऊँ । यह एक सेठ तो ठीक है लेकिन मैं खुले आम नहीं गा सकती ।'

'यह कैसे हो सकता है ? आज नहीं तो दो दिन बाद यही करना पड़ेगा । गाये बिना काम नहीं चल सकता ?'

'नहीं, मैं तो नहीं गा सकती । तुम से मैंने क्या पहले ही वचन नहीं ले लिया था ?'

'पर मैं कह कहाँ रही हूँ ?' तुंगभद्रा जल्दी करके काम बिगाड़ने वाली स्त्री नहीं थी । 'एक इस चन्दूलाल सेठ मात्र को तू वश में करले, तो बस सारा बेड़ा पार हो जायगा ।'

'वश में कैसे करूँ ? तुम्हारे कथनानुसार मैं गाती हूँ । और क्या करूँ ?'

'क्या पागल हो गई है ? केवल गाने से कोई रीझता है ?'

'तब मुझे जाने दो ।'

'कहाँ ? दर-दर भटकने के लिए !'

'जो भी हो, मुझे तुम्हारा धन्धा नहीं करना है । मैं उससे पैसा पैदा कर के मौज उड़ाना नहीं चाहती ! मैं यहाँ कौन-सी सुखी हूँ ?'

'इतना करने पर भी तू ऐसा कहती है ? कृतघ्न है तू । मेरा अन्न तूने खाया है, वह क्या मुफ्त में ?'

मणि की आँखों से चिनगारी निकलने लगी । 'तुम्हारे बुलाने और वचन मिलने पर ही मैं आई थी । तुम्हारे आसरे थोड़े ही बैठी थी ।'

तुंगभद्रा ने हँसकर कहा—'ऐसे वचनों का पालन नहीं होता ।'

'यह तो मैं पहले से ही जानती थी। भला तुम्हारी जाति से वचन पालन की आशा की जा सकती है ? परन्तु मैं तो अपने वचन का पालन करूँगी ही।'

'क्या ?'

'अपनी इच्छा के विरुद्ध मैं किसी पुरुष के सामने कभी नहीं जाऊँगी ?'

'तब तू सीधे से नहीं मानेगी ? याद रख मेरा मिजाज बिगड़ जायगा तो मेरी जैसी खराब दूसरी नहीं होगी।'

'इसकी मुझे अधिक चिन्ता नहीं है। दुनिया भर ने मुझ पर अत्याचार किया है, तो उस में तुम एक और अधिक सही !'

'ठीक है ! आज रात में सेठ आयेगा, तब तक यदि तुम्हारी बुद्धि ठिकाने आई तो ठीक है; नहीं तो समझ रख कि···।'

'मेरी बुद्धि तो ठिकाने पर ही है।'

तुंगभद्रा आग-बबूला होकर पैर पटकती हुई वहाँ से चली गई। शाम को उस्ताद बुलाने आया तो हिम्मत बाँधकर मणि चली गई। जरा भी चल-विचल होने पर घर छोड़कर चली जाने का उसने निश्चय कर लिया था। सेठ चन्दूलाल ने आज्ञा दी। मणि ने गान शुरू किया। धीरे से उठकर तुंगभद्रा चली गई। गाना पूरा होते ही मणि भी उठकर खड़ी हो गई। वह समझ गई कि यह किसी निश्चित योजना के अनुसार हो रहा है !

'बैठो, बैठो !' सेठ चन्दूलाल ने आग्रह से कहा।

मणि उसके सामने घूमकर खड़ी हो गई; इतने ही में उस्ताद जी भी वहाँ से उठकर चले गये और बाहर से कमरे का दरवाजा बन्द हो गया।

'क्या काम है?' एक भूखी बाघिन की विकरालताके समान मणि ने पूछा।

'यह भी क्या पूछने की बात है ?'

'हाँ !' दृढ़ता से मणि ने कहा—'मैं कोई तुंगभद्रा का धन्धा नहीं करती। मेरे पीछे पड़ने से कुछ लाभ नहीं निकलना है।'

मणि का रूप और क्रोध देखकर सेठ दंग रह गया। उसने ऐसी वेश्या आज पहले-पहल ही देखी थी।

'उफ ! तेरा मिजाज तो गजब का है।'

'जो कुछ भी हो; मैंने तुंगभद्रा से पहले ही कह दिया है कि मैं अपनी

इच्छा के विरुद्ध कुछ भी करने वाली नहीं हूँ।'

'परन्तु यह कहता कौन है ? जो तेरी खुशी हो माँग !'

'मैं तो इतना ही माँगती हूँ कि आप अपने रास्ते जाइये और मुझे अपने रास्ते जाने दीजिये।'

'अरे यह भला कैसे हो सकता है ? आज मैं न सही, तो कल कोई दूसरा आयेगा ही।'

'देखती हूँ कौन आता है। सेठ जी ! यदि सीधे से मान जाये तो अच्छा है, नहीं तो लो यह खड़ी हूँ। आओ मेरे पास ! तो देखूं।'

सेठ लज्जित हो गया। इस महिषासुर-मर्दिनी जैसी तेजस्वी मूर्ति के सामने घबड़ा कर विमूढ़ हो वह खड़ा ही रह गया। उसकी आज्ञा उल्लंघन करने वाला आजतक उसे ऐसा कोई नहीं मिला था। आज वह परास्त हो गया, पर मणि को छोड़ना भी नहीं चाहता था।

'अच्छी बात है, मैं तुंगभद्रा से बात करूंगा।'

'हाँ-हाँ करना।'

सेठ जी को कोई दूसरा रास्ता नहीं सूझा, थक कर उन्होंने दरवाजा खुलवाया। मणि एकदम वहाँ से निकलकर ऊपर चली गई। उसे पूरा विश्वास था कि सेठ इस प्रकार आसानी से छोड़ने वाला व्यक्ति नहीं है, पर वह भी इसके लिए तैयार थी।

वहाँ से भाग जाने के लिए मणि रात में उतरकर दरवाजे के पास गई। रोज दरवाजा खुला रहता था। आज उसमें ताला बन्द था। पास ही में पहरे-दार घों-घों करता हुआ सो रहा था।

'जमादार साहब ! जरा ताली तो दीजिये।'

'कौन है ?'

'मैं हूँ।' मणि ने जवाब दिया। उसे ऐसा लगा कि जमादार सोने का ढोंग कर रहा है।

'इस समय ताली नहीं है, चली जा !' कहकर उसने करवट बदली।

'जमादार साहब यह मैं समझ गई लेकिन बेकार सोने का ढोंग क्यों करते हो ? नहीं खोलोगे तो सारा मुहल्ला इकट्ठा कर दूंगी, चलो उठो।'

'ऊँ-हूँ !'

'खोलते हो या नहीं ?' मणि ने ऊँचे स्वर में कहा। किसी भी तरह भाग जाने का उसने निश्चय कर लिया था।

'चुप रह बदमाश !' कह कर जमादार उठा। मणि का मुँह उसने अपने एक हाथ से दबा दिया और दूसरे हाथ से उसे गठरी की तरह उठाकर वह ऊपर ले आया। उसके हाथ में निर्बल मणि मछली के समान छटपटा रही थी।

जमादार उसे जड़ वस्तु के समान ऊपर कमरे में रखकर और उसका बाहर से दरवाजा बन्द करके चला गया।

: २ :

पता नहीं कब तक मणि इसी प्रकार पड़ी रही। अब क्या करना है ? उसकी अभिमानी आत्मा परिस्थिति से दबी जा रही थी। यहाँ भी चन्दूलाल सेठ की लिप्सा और जमादार की शक्ति इन दोनों ने उसे विह्वल कर दिया था। चाहे कैसे भी हो आधीनता स्वीकार कर यह नीच कर्म न करने का उसने दृढ़ निश्चय कर लिया था। अतः किसी भी प्रकार वहाँ से भागे बिना उसका निस्तार नहीं था।

लेटे-लेटे उसने बहुत कुछ विचार किया। वह घर अब बन्दीगृह के समान था। तुंगभद्रा मीठी-मीठी बातें कर रही थी परन्तु उसका संकल्प दूसरा ही था। वह अपनी शान्त, मीठी पर अटल रीति से उसे वश में करना चाहती थी। ऐसी परस्थिति में पड़ी रहना उसकी आधीनता स्वीकार करने के समान ही उसे प्रतीत हुआ।

रात भर वह यही विचार करती रही। दृष्टि के सामने उसका विगत जीवन आकर खड़ा हो गया। कैसे-कैसे अनुभव और कैसे-कैसे कष्ट उसे सहन करने पड़े हैं ! ये सब किसलिए ? क्या उसके लिए ईश्वर संसार में नहीं है अब क्या बाकी रह गया है ? यह स्थिति किस अपराध से प्राप्त हुई ? वह

बहुत रोई, बहुत चिल्लाई। पुत्री की याद आई, गम्भीरलाल को गाली दी। जिन माँ-बाप ने जन्म दिया उन्हें भी जी भर कोसा। जिस समाज ने उसे बाल-विधवा रखकर इस निन्दनीय, कष्टमय दशा को पहुँचाया उसका समूल नाश कर देने की भगवान से प्रार्थना की। बिछौने पर अकेली पड़े-पड़े उसने बहुत आक्रन्दन किया। उसका सन्ताप देखने वाला कोई नहीं था और न कोई उसके आँसू पोंछने वाला ही था। ईश्वर, समाज और सम्बन्धियों ने उसे बेबस बना दिया था।

आखिर आँसू सूख चले। प्रकृति के आदेश का पालन हुआ। वह सो गई। सवेरे जागने पर फिर अपनी स्थिति पर विचार करने लगी।

सभी विचार निष्फल गये। इस कारागार से छुटकारे का मौत के सिवा दूसरा कोई मार्ग दिखाई नहीं दिया। ईश्वर ने ऐसा सुगम और छोटा मार्ग दिया है, तब क्यों न उसका उपयोग किया जाय! क्यों इतना कष्ट उठाया जाय? वह डोरी खोजने लगी। न मिलने पर उसने चादर उठाई। उसे मरोड़ कर उसमें फन्दा बनाया। फन्दा गले में डालकर और उसे छत से बाँधकर चारपाई पर से जमीन पर कूद पड़ी? चादर पुरानी थी; वह फट गई। थोड़ी देर तक मणि जमीन पर पड़ी रही। इतने में तुंगभद्रा बाहर आकर दरवाजा खटखटाने लगी।

'मणि! मणि दरवाजा खोल!'

'क्यों?' मणि ने पूछा।

'क्यों क्या? नहाना-धोना, खाना-पीना नहीं है क्या?'

'नहीं, मुझे कुछ भी नहीं करना है। मुझे घर के बाहर जाने दो, मुझे तुम्हारे घर में नहीं रहना है।'

'अरे ऐसी क्या मुसीबत पड़ रही है? दरवाजा तो खोल!'

'जब तक घर से निकाल देने का वचन नहीं दोगी तब तक दरवाजा नहीं खोलूंगी?'

'खोल तो; वचन देती हूँ!' हँसकर तुंगभद्रा ने कहा।

मणि उठकर दरवाजे के पास आई तुंगभद्रा के हँसने की आवाज उसे सुनाई दी। तुंगभद्रा के वचन पर भरोसा!' मणि एकदम पीछे हट गई।

'तुंगभद्रा ! ठिठोली करती हो ? कल की तरह जमादार से फिर कोई अत्याचार कराना होगा।'

'नहीं, नहीं, पहले तू दरवाजा तो खोल।'

'नहीं खोलूंगी। चन्दूलाल सेठ के आने पर खोलूंगी ताकि वह साक्षी रहे।' मणि ने जवाब दिया। वह जानती थी कि इस प्रकार की दुर्गति तुंगभद्रा कभी भी स्वीकार नहीं करेगी। इसलिए वह कभी उन्हें साथ नहीं लाएगी और यदि लाएगी तो उनके सामने की हुई प्रतिज्ञा का पालन करेगी।

'मणि इतने दिन खिलाने-पिलाने का यह बदला ? ठीक है, पड़ी रहो। मैं जब तीसरे पहर आऊँगी तब पता चलेगा।' कहकर वह चली गई।

मणि समझ गई कि उसे भूखी रखकर वश में करने की योजना बनाई जा रही है। अब क्या उपाय किया जाय ? वह भूखी खिन्न मन से पड़ी रही। कोई रास्ता सूझता नहीं था। वह छत पर गई, वहाँ से कूद पड़ने का विचार किया। उसने चारों तरफ आंख दौड़ाई तो आसपास के मकानों के छप्पर सटे दिखाई पड़े। एकदम विचार उत्पन्न हुआ कि क्यों न इन छप्परों पर कूदकर भाग जाऊं ? यह स्थिति तो सबसे गई गुजरी है। इस समय वह अधम से अधम आदमियों के आश्रम में है। दुनिया में अच्छे आदमियों का क्या बिल्कुल ही अभाव हो गया ? मणि में जीवन की आशा दुर्जय थी। उसने कूदने का विचार स्थगित रखा। भागने का यह उपाय मन में रखकर वह नीचे उतर आई।

संध्या समय फिर तुंगभद्रा ने आकर दरवाजा खटखटाया।

'मणि ! क्या कुछ निर्णय किया ?'

'चन्दूलाल सेठ आगये ?' मणि ने प्रश्न किया।

'सेठ-वेठ कोई नहीं है। तू सीधे से मानेगी कि मुझे अब जबरदस्ती करनी पड़ेगी ?'

'क्या मुझ पर अत्याचार करने के लिए ही तुम मुझे लाई थीं ?'

'नहीं तो क्या तुझे बैठाकर खिलाने के लिए लाई थी ? तेरी नसें जरा तन गई हैं तू बाहर निकल तो; उन्हें जरा ढीली करवा दूं।'

'बाहर निकलूं तब न ? मैं छत पर से लोगों को इकट्ठा करूंगी।'

'मैं पहले ही सब से कह चुकी हूं कि मेरे घर में एक पगली औरत है,

अगर वह चिल्लाये तो कोई ध्यान मत देना।'

'ऐसा ! तब देखो तुम्हें भी अच्छा पाठ पढ़ाऊँगी।'

'क्या ?'

'जोर जुल्म से तुम मुझे वश में करना चाहती हो न ? देखें, किसकी विजय होती है।'

'चुड़ैल ! मुझे माथापच्ची करने की फुरसत नहीं है। नहीं मानती तो खड़ी रह ! अभी बढ़ई बुलवाकर दरवाजा तुड़वा देती हूँ।' कहकर तुंगभद्रा पैर पटकती हुई वहाँ से चली गई।

मणि ने तत्क्षण निश्चय कर लिया। उसने धोती का कछाड़ा मारा और छत पर चढ़ गई। घोर विपद के प्रभाव से भूख और दुःख सब कुछ काफूर हो गया। स्वातन्त्र्य ही मुक्ति का साधन है उसे ऐसा ज्ञात होने लगा। छत के छज्जे पर से पड़ोस के छप्पर पर छलांग मार कर वह कूद पड़ी।

कुछ देर बाद तुंगभद्रा बढ़ई लेकर आई दरवाजा तोड़ डालने का आदेश दिया। मजबूत दरवाजा बड़ी कठिनाई से टूटा किन्तु पिंजरे में से पंछी उड़ गया था और पिंजरा खाली था।

: ३ :

मुचकुन्द एक ग्रेजुएट था।

हिन्दु ग्रेजुएट अर्थात् एक अनुपम पुरुष। उसकी स्थिति सृष्टि में सबसे न्यारी और अद्भुत थी। न तो किसी की परवाह रहती थी और न किसी की सहायता की आवश्यकता। दुनिया उस की ओर तिरस्कार से देखती है और वह अपने मन में विशाल विश्व को तिरस्कार की दृष्टि से देखता है।

ग्रेजुएट एक प्रकार हीन से हीन व्यक्ति है। हमारी आदर्शहीन शिक्षा के पूजक कहते हैं कि हिन्दु ग्रेजुएट में कोई सार नहीं है, नवीनता नहीं हैं। स्वदेश-सेवक कहते कि उसमें सत्याग्रह नहीं है; सुधारक कहते हैं कि उसमें साहस नहीं

है; प्राचीन विचार के पण्डित कहते हैं कि वह बिगड़ गया है; राजदरबारी कहते है कि वह राजद्रोह का चिन्तन किया करता है ; ऑफिस के कार्यकर्ता कहते हैं कि वह गले में बंधे हुए एक पत्थर के समान है; और भी कितने ही उसे देश की वर्तमान दुर्दशा का कारण मानते हैं।

इतना सब कुछ होते हुए भी वह अपना काम करता चलता है। गरीब माँ-बाप के पेट से उत्पन्न होकर, अतिशय महँगी शिक्षा ग्रहण करने का प्रयत्न करता है। पेट में पट्टी बाँध कर, दुःखते हुए माथा को दबा कर अरुचिकर विद्या लाभ करता है। अपनी भावनाओं और मन के मनोराज्यमें भ्रमण करते हुए खून को पानी करके केवल नाममात्र के मूल्य की उपाधि प्राप्त करता है और असन्तोषजनक वेतन पर कार्य प्राप्त करने के लिए विकल होकर इधर-उधर मारा फिरता है। परन्तु दरिद्रता से पीसा जाने पर भी अपनी भावनाओं को उच्च बनाये रखता है, स्वयं दुःखी रहकर, आधा पेट भोजन करके कुटुम्बियों को शिक्षा देता है। चाहे कैसी भी अपढ़ स्त्री मिले, उसका निर्वाह करता है। चाहे जैसी सन्तान हो, सहनशीलतापूर्वक उसका उद्धार करने का प्रयत्न करता है।

वह स्वार्थहीन होकर समाज का उद्धार चाहता है। भारत माता की भक्ति में तल्लीन रहता है। लोगों के धिक्कारने पर हँसता है। सरकार द्वारा दबाये जाने पर भी आशावान् बना रहता है। वह अपने को भारत के भविष्य का विधाता मानता है।

वह स्वयं प्रायः रोगी और अशक्त रहता है; पर उसी बड़वानल में तिरोहित रहता है। जिस अनल ने प्राचीन ऋषियों के हृदय में रहकर हमारी अपूर्व संस्कृति को जन्म दिया, जिस अनल ने ब्राह्मणों की बुद्धि में समा कर हमारे इतिहास काल के दुःखमय दिनों में उस संस्कृति का संरक्षण किया वही अनल ग्रेजुएट स्नातक में भी विद्यमान रहता है। वर्तमान के ग्रेजुएट प्राचीन ब्राह्मणों के अवतार हैं। भविष्य के ऋषियों की ध्वज पताका हैं। हमारी संस्कृति और देश की आशा हैं!

मुचकुन्द इसी श्रेणी का ग्रेजुएट था। कांदिबाड़ी में एक छोटा-सा कमरा ही उसका भवन था। एक तीन फुट का टेबुल और काठ के तख्ते की बनी हुई

कुर्सी ही उसके पढ़ने-लिखने का स्थान था। एक कोने में छोटा-सा ट्रंक पड़ा हुआ था। कमरे में एक आला था जिस पर एक स्टोव और चाय के बर्तन पड़े हुए थे। यही मुचकुन्द की गृहस्थी थी।

टेबुल पर मिट्टी के तेल का एक छोटा-सा लैम्प जल रहा था। मुचकुन्द नीचा सिर किये हुए पढ़ रहा था 'Culpable homicide is murder !' कि इतने ही में छत पर एक धमाके की आवाज सुनाई पड़ी। मुचकुन्द ने सिर उठा कर ऊपर देखा। छत पर से एक स्त्री दौड़ती हुई आई। वह हाँफ रही थी। उसने धोती का कछाड़ा मार रखा था। मुचकुन्द कुर्सी से उठ खड़ा हुआ। चिल्लाने जा ही रहा था; पर रुक गया। आने वाली स्त्री रूपवती थी। दौड़ने और हाँफने से उसका चेहरा आरक्त हो उठा था। उसका मुख आकर्षक और परम रूपवान् था। कछाड़ा मारने से आधी जाँघ से नीचे का भाग दिखाई दे रहा था। मुचकुन्द के मन में संस्कृत कवि जो उपमा दे गये थे वह सार्थक प्रतीत हुई। वह कुछ भी बोल न सका।

'भाई ! भाई ! चिल्लाना मत, मैं एक दुःख की मारी हुई अबला हूं !'

'आप इधर कहां से आई हैं ?'

'मैं भाग कर आई हूं। मुझे पापिष्टों ने कैद कर रखा था।' मणि ने आस-पास में बैठने की जगह देखते हुए कहा—'ठहर जाइये सब बताती हूं।'

मुचकुन्द ने तुरन्त ही एक दरी बिछा दी। कछाड़े की ओर ध्यान जाते ही लज्जा से मणि नीचे देखने लगी और कछाड़ा खोल शतरंजी पर बैठ गई।

'आपके घर में क्या और कोई नहीं है ?'

'नहीं, मेरा घर है और मैं हूं।' कहकर मुचकुन्द मुस्कुराया।

'चलो, यह भी अच्छा ही है।'

'क्यों ?'

'नहीं तो कोई निकाल बाहर करता। भाई ! मुझे यहां रात भर पड़ी रहने दो। मैं निराधार हूं, न तो कोई मेरा संगी है और न सम्बन्धी, कहीं जाने के लिए स्थान भी नहीं है।'

'तब आप आई कहां से ?'

मणि को कंपकंपी छूटी। 'एक वेश्या की कैद से।'

'ऐसा ? मुचकुन्द की समझ में कुछ-कुछ बात आने लगी, 'वहाँ से आप भाग आई हैं ? शाबाश ! फिर ?'

'फिर क्या ? संसार में मेरा कोई है नहीं। सवेरे कहीं जाने का प्रबन्ध करूँगी।'

'आपका स्थान कहाँ है ?'

'भाई ! मैं देश में थी; वहाँ से यह वेश्या मुझे ले आई।'

'तब आपके भाई, बाप, पति कोई नहीं है ?'

'भाई ! पति दस वर्ष की छोड़ कर मर गया, बाप ने पुत्री को जीवित भाड़ में झोंक दिया, आखिर दुःख से थक कर भाग आई।'

'आप बाल-विधवा हैं ?'

'हाँ !'

'अररर, हम लोगों की क्या परिस्थिति है। शुभ नाम।'

'मैं ब्राह्मण हूँ; मेरा नाम मणि है।'

'परन्तु आपकी खोज खबर लेने वाला क्या कोई सचमुच ही नहीं है ? आज तक इस प्रकार किसी स्त्री को कष्ट उठा कर मारी-मारी फिरते हुए नहीं देखा।'

'लेकिन आज तो देख रहे हैं। आप घबड़ाएँ नहीं; मेरे कारण आप को किसी प्रकार का कष्ट न होगा।'

'इसकी मुझे चिन्ता नहीं है। जो कुछ आप कह रही हैं यदि वह सत्य है तो रात में यहाँ आप रह सकती हैं।'

'भाई ! झूठ बोलने से क्या मतलब है ? विपत्ति ही तो यह सब करा रही है, अन्यथा इस प्रकार भटकने से क्या लाभ ?'

मुचकुन्द का मन भर आया। एक निराश्रय स्त्री को आश्रय देने से बढ़ कर पुण्य का काम और क्या हो सकता है ?

'आपने कुछ भोजन किया है या भूखी ही हैं ?'

'कल सवेरे की खाये हूँ।'

'अच्छा। लो यह कुछ खा लो !' कह कर एक पतीली में से कुछ मीठा निकाल कर उसने दिया, 'यह थोड़ा दूध है। कहो तो चाय बना दूँ।'

'नहीं, मैं बना लूंगी, आप निश्चिन्त होकर पढ़ें।'

मुचकुन्द इतना घबराया हुआ था कि वह कुछ कह नहीं सका। किन्तु मणि ठोकर खा-खाकर साहसी बन गई थी। खाना खाकर मणि ने चाय तैयार की और मुचकुन्द के आगे एक प्याला रख दिया।

'अच्छा ! मणि बहन ! मैं भोजनालय भोजन करके आता हूँ, आपके लिए भी कुछ लेता आऊँगा।'

मुचकुन्द चला गया। मणि थक गई थी बैठ कर सस्ताने लगी।

मुचकुन्द अपने साथ कुछ भोजन लेता आया, जिसे मणि ने खाकर अपनी क्षुधा निवारण की। पीछे मुचकुन्द पढ़नेके लिए बैठ गया परन्तु मन नहीं लगा; इससे पुस्तक में आँखें गड़ाये हुए सोने का क्या प्रबन्ध होगा इस पर विचार करने लगा। अब तक पर-स्त्री से बातचीत करने का प्रसंग तक कभी नहीं आया फिर यह तो एक ही कमरे में सोने की समस्या थी। उसने बहुत विचार किया परन्तु व्यर्थ। बिछाने के लिए उसके पास एक चारपाई, एक चटाई, एक शतरंजी और एक कम्बल था। समय के साथ उलझन भी बढ़ती गई।

सोने का समय होने पर मणि के मन में भी यही विचार आया। सामान्यतः वह स्वाभाव से दृढ़ और निर्लज्ज हो गई थी, पर मुचकुन्द का निर्मल मुख, उसकी बुद्धि प्रदर्शक उज्ज्वल आँखें और निर्दोष बात-चीत देखकर उसमें भी निर्मलता आ गई थी। उसे भी ऐसा ज्ञात हुआ मानो वह अपने घर में है और मुचकुन्द उसका भाई है। वह भी लजाने लगी। कुछ निर्णय न कर सकने के कारण बार-बार मुचकुन्द की ओर देखने लगी। मुचकुन्द भी थोड़ी-थोड़ी देर में मणि की ओर देखता था। अब मुझे क्या करना चाहिए ? मामला बड़ा टेढ़ा होता जा रहा था। मुचकुन्द ने बाहर जाकर किसी होटल या मित्र के यहाँ सोने का विचार किया। दोनों एक दूसरे की दृष्टि से मानों भाव की कल्पना कर रहे हों इस प्रकार कनखी से एक दूसरे की तरफ देख रहे थे। एकाएक दोनों की नजर एक बार मिली; दोनों ने एक दूसरे की दृष्टि देखकर प्रत्येक के मानसिक विचारों का अनुमान लगा लिया। दोनों ने बिछौने की ओर देखा और एकदम खिलखिला कर हँस पड़े। मणि मानो दुःख भूल गई—उसका मधुर आकर्षक हास्य कमरे में गूंज उठा।

'क्या करियेगा ?' मणि ने पूछा ।

'मैं भी यही सोच रहा था, मैं अपने किसी मित्र के यहाँ जाकर सो रहूँगा ।'

'नहीं, यह कैसे हो सकता है ?'

'क्यों, इसमें बुराई ही क्या है ?'

'एक तो रात अधिक हो गई है, दूसरे मैं आपको कष्ट देने नहीं आई हूँ, मैं ऊपर जाकर अकेली सो रहूँगी ।'

'जी नहीं, मैं सोऊँगा, मुझे क्या कोई मार डालेगा ? आप भला इस प्रकार अकेली सो सकियेगा ?'

बहुत देर तक बक-झक के पश्चात् निर्णय हुआ कि मुचकुन्द बाहर बरामदे में चटाई पर सो रहेगा और शतरंजी एवं कम्बल पर मणि भीतर कमरे में सोयेगी ।

मुचकुन्द को इच्छा होने पर भी नींद नहीं आई। यह संयोग ही ऐसा विचित्र आ बना था कि इससे नींद न आये तो इसमें कोई आश्चर्य की बात नहीं थी। ऐसे प्रसंग साहित्य में कहाँ आये हैं और उनका क्या रास्ता साहित्य-कारों ने निकाला है इसे वह सोचने लगा। उसकी विचार-धारा सुबह तक जारी रही ।

: ४ :

मणि रात भर गहरी नींद में सोई। ऐसी नींद उसे बहुत दिनों बाद आज आई थी। उसके उठने के पहले ही मुचकुन्द नहा-धो चुका था और बैठ कर 'पीनलकोड' का अभ्यास कर रहा था ।

'ओ हो ! आप इतने सवेरे उठ गये ! मुझे तो रात कहाँ गई, इसकी खबर नहीं रही ।'

'सच ?'

'कितने दिनों बाद आज मुझे इस प्रकार सोना नसीब हुआ है, अच्छा लिपटकर चाय तैयार कर लाऊँ।'

'चाय मैं पी चुका हूं और तुम्हारे लिए ढांक कर रख दी है। मुझे ट्यूशन पर जाना है ?'

मुचकुन्द दो घण्टे लड़कों को पढ़ता और सात घण्टे आॅफिस में गधा-पचीसी करता था। एक घण्टा लॉ-कालेज में पढ़ने जाता और पांच घण्टे घर पर पढ़ता था। इससे कमाता था रुपया पैंतालीस। पैंतालीस में से बीस रुपये घर भेजता और पच्चीस रुपये से बम्बई में अपना एकान्त जीवन जैसे-तैसे व्यतीत करता था।

मणि यह सब जानकर लजा गई। ऐसा व्यक्ति उसने आज ही देखा था जिसने अनाश्रित को आश्रय दिया, साथ ही उसकी सेवा भी की।

'भाई !' मुचकुन्द चलने लगा तब मणि ने कहा 'जाने के समय ताली कहाँ रख दूं ?'

'कहाँ जाओगी ?' मुचकुन्द ने घूमकर पूछा।

'क्यों, तब क्या यहाँ रहने आई हूँ ?' मणि ने उतरे हुए चेहरे से पूछा।

'पर कहाँ जाने का निश्चय किया ?'

'जहाँ भी भाग्य ले जाय, विश्व विशाल है ?'

'ऐसे भाग्य के भरोसे कहाँ जाओगी ?'

'मुचकुन्द भाई ?' मणि की आंखों में कृतज्ञता के आंसू भर आये 'एक रात में, मैं कौन हूं, यह पूछे बिना आपने आश्रय दिया इसके लिए मैं आपकी जीवनभर ऋणी रहूँगी। किन्तु भला मैं यहाँ रह कैसे सकती हूँ ?'

'पर जाओगी कहाँ ?'

'कल मैं कहाँ से आई, यह क्या आपने पूछा था ? मैं स्वयं अपना रास्ता ढूंढ लूंगी।'

'मुचकुन्द ने सिर हिलाते हुए कहा—'यह नहीं हो सकता। हाँ यदि तुम्हारा कोई सम्बन्धी हो तो प्रसन्नता से जा सकती हो; इस प्रकार जाने की इतनी जल्दी ही क्या है !'

'भाई ! आप तो देवताओं के समान बातें करते हैं। आप नहीं जानते कि

मैं कौन हूं।'

'प्रत्येक स्त्री को मैं देवी समझता हूँ। केवल पुरुष ही उनकी अधमता के कारण होते हैं। यदि पुरुष सन्मार्ग पर चलें तो स्त्री कभी देवीपद को नहीं छोड़ सकती।'

अनुभवी मणि खिलखिला कर हँस पड़ी। भाई आपको अभी अनुभव नहीं है, दुनिया ने न कभी इस मन्त्र को स्वीकार किया और न कभी स्वीकार करेगी। पुरुषों के लिए तो स्त्री अवकाश के समय की विलास की वस्तु है; परन्तु इन बातों को जाने दीजिये, कोई लाभ नहीं है व्यर्थ की बातों में।'

'तुम तर्क भी करना जानती हो?' मुचकुन्द बोल उठा।

'बात मत उड़ाइये; आपको समझ लेना चाहिये कि जहाँ-जहाँ मैं जाती हूँ, मेरा दुर्भाग्य मेरे पहुँचने के पहले ही वहाँ पहुँच जाताहै और आश्रयदाता को व्यर्थ ही कष्ट भोगना पड़ता है।'

'मैं समझता हूं।'

'कुछ समय घर में मुझे रख लेने पर आपको विश्वास हो जायगा। पागल कुत्ते के सदृश घर से लोग मुझे ठोकर मार कर भगाते रहते हैं।'

'कोई परवाह नहीं, लोग मूर्ख हैं। यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते, रमन्ते तत्र देवता।'

'ये तो किताबी मूर्खतापूर्ण कहावतें हैं। जरा सोचिये तो!'

'क्या?'

'आप मुझे ठहरने के लिए तो कहते हैं किन्तु पछतायेंगे।'

'मणि बहन! इस प्रकार की व्यर्थ बातें करने से क्या कोई लाभ है? रात में तुम जब सो रही थीं उस समय मैं जाग रहा था—विचार कर रहा था। मैंने बहुत विचार किया, अन्त में एक ही निश्चय पर पहुँचा कि जब तक तुम्हें कोई स्थान सुखपूर्वक रहने के लिए न मिल जाय तब तक यह घर तुम्हारा है।'

'भाई! आप भी मुझे सगे भाई के समान मालूम पड़ते हैं। परन्तु मुझे विश्वाश है कि यदि मैं यहाँ दो दिन भी रही कि आपके सिर पर विपत्ति का पहाड़ टूट पड़ेगा। लोगों की जीभ में ताला बन्द नहीं किया जा सकता।

आपको पापी दुनिया का अनुभव नहीं है।'

'तो तुम्हारी ही क्या उम्र है जो बूढ़ी दादी की तरह अनुभवी हो गई हो ?' कहकर मुचकुन्द हँसा।

'अनुभव तो हजारों हैं। आपके क्या कोई भाई-बन्धु, माँ-बाप नहीं है ?'

'हैं ? सब देश में हैं। अररर ! इस बातचीत में तो पढ़ाने का समय ही निकल गया।'

'तब व्यर्थ क्यों हठ कर रहे हो ?'

'तुम तो जानती ही होगी कि पहले लोग निराश्रय नारियों का दुःख दूर करने के लिए देश-देशान्तरों का भ्रमण करते थे। तब यह तो घर बैठे गंगा आ गई है !'

'भाई ! यह सब तो किस्से कहानियों की बातें हैं।'

'क्यों ?'

'अब तो वीरत्व केवल स्त्रियों को दुःख देने में दिखाई देता है।'

'मालूम होता है तुम पर बहुत बीती है।'

'हां भाई ! परन्तु आपकी स्त्री कहाँ है ?'

'अभी केवल सम्बन्ध निश्चित हुआ है, विवाह नहीं।'

'तब मेरे यहाँ रहने से आप पर कैसे-कैसे आक्षेप होंगे क्या इसका भी ज्ञान है ?'

मुचकुन्द के अभ्यास-क्रम में कहीं भी ऐसी घटना नहीं आई थी, उसकी कल्पना-शक्ति शुद्ध और सात्विक थी, वह भला क्या समझे ? वह तो सरल मार्ग का विद्यार्थी था।

'जो भी हो, आक्षेप होंगे तो अनुभव प्राप्त होगा, इतना ही कि और कुछ ?'

'अरे मेरे भाई ! आप तो सतयुगी हैं।'

मुचकुन्द हँस कर बोला—'चलो, तुम स्वयं भोजन बनाओगी अथवा भोजनालय से मैं ले आऊँ। अब आफिस जाने का समय होने वाला है।'

'तब क्या मैं यहीं रहूँ ? हे भगवान् ! तूने क्या सोच रखा है ?'

'भगवान् इस समय दूसरे कामों में लगे हुए हैं, इसलिए हमें भी अपना

निर्धारित कार्य करना चाहिए।'

'अच्छी बात है, भोजन बनाने का क्या प्रबन्ध है ?'

'मेरा बहनोई आता था तब वह अपने हाथ से ही भोजन बनाया करता था, उस समय का थोड़ा बहुत सामान बचा पड़ा है।

'बहुत ठीक !' कहकर मणि ने अपने आँसू पोंछे। दुनिया में पहले से ही यदि ऐसे व्यक्ति से भेंट हो गई होती तो उसकी दशा आज कुछ दूसरी ही होती।

: ५ :

मुचकुन्द आफिस गया तब उसका कलेजा बाँसों उछल रहा था। एक निराश्रिता अबला को आश्रय देने से भला किसका हृदय हर्ष से परिपूर्ण न हो जायगा। फिर वह तो एक अकेला, गरीब, स्वावलम्बी विद्यार्थी का हृदय था। उसके भाई-बन्धु सभी दूर रहते थे। आज कितने ही वर्षों से कुटुम्ब-सुख उसे सुलभ नहीं था, उच्च वर्ग की अथवा किसी बुद्धिमान् स्त्री से सम्भाषण करने का कभी अवसर तक उसे नहीं मिला था। इन अपरिचित वस्तुओं के प्राप्त हो जाने पर उसके हृदय में नई-नई तरंगें उठ रही थीं। उसके जीवन में नया रस, उसकी बुद्धि में नया प्रकाश व्याप्त हो रहा था।

इस संसार के अनुभव के लिए अथवा अपने स्वभाव में होने वाले परिवर्तन के कारण अठारह-बीस वर्ष में पुरुष के हृदय में वात्सल्य के अंकुर फूटते हैं और जब तक कोई स्त्री, बालक अथवा निराधार स्त्री या पुरुष उसका आश्रय नहीं लेता तब तक उसे चैन नहीं पड़ता, उसके बाहुमें बल आता है और उसमें आत्म-निर्भर होने की शक्ति बढ़ती है। जीवन वृक्ष में शक्ति आती है, किन्तु उसी समय जब लता उसका आश्रय लेने के लिए आगे बढ़ती है।

यह उमड़ता हुआ वात्सल्य हमारे जीवन की कमजोरी नहीं है बल्कि उसका सर्वप्रथम छिपा हुआ रहस्य है। आर्य सच्चे आर्यपुत्र तभी कहे जाते हैं जब रस बरसाने वाली गृहिणी स्नेह-भार से नमकर उन्हें उस नाम से सम्बोधित करती

है। मुचकुन्द का जीवन अब तक शुष्क था। एक निराश्रय अबला ने उसका आश्रय लिया जिससे शुष्कता पर अभिवृष्टि हुई। माता-पिता को उसने छोटी अवस्था में ही छोड़ दिया था, बहन-भाई का सुख उसे मिला ही नहीं। बम्बई के घोर यांत्रिक जीवन में वह अकेला मूकवत् समय व्यतीत कर रहा था। उस यंत्र जगत में आज उसे मणि मिली। जीवन रसमय लगा। आफिस में सेठ का काम शीघ्र ही खेल ही खेल में समाप्त हो गया हो ऐसा प्रतीत हुआ। संध्या समय कानून के दर्जे में दूसरे शिक्षार्थियों के समान वह भी ध्यान-विहीन होकर स्वप्न में भ्रमण करता रहा। वहाँ से लौटते समय ट्राम में बैठकर वह घर आया जिसमें पहले शायद ही कभी बैठा था।

वह घर पहुँचा, उसकी आत्मा में शान्ति थी। उसकी इधर-उधर पढ़ी हुई पुस्तकें टेबुल पर अपरिचत सौन्दर्य से सजाकर रखी हुई थीं, उसके इधर-उधर बिखरे हुए कपड़े खूँटी पर टँगे हुए थे, कमरे में सभी वस्तुओं पर स्त्री सहज सौन्दर्य देवी के आशीर्वाद की स्पष्ट छाप थी। सुख और शान्ति की लहर में मुचकुन्द बहने लगा। यह अपरिचित व्यवस्थ मोहक लगी, बन्द हवा में रहने वाला खुली हवा का जिस उत्सुकता से स्वागत करता है वैसे ही इस व्यस्था का मुचकुन्द ने सानन्द स्वागत किया।

'मणि बहन!' मुचकुन्द ने इधर-उधर देखकर पुकारा।

थोड़ी देर में ऊपर से जवाब मिला। मुचकुन्द वहीं गया।

'क्यों भाई!' कृत्रिम हँसी से स्वागत करती हुई और अपनी आँखों के आँसुओ को सुखाने का प्रयत्न करती हुई मणि ने कहा—'आ गये?'

मुचकुन्द दो-एक पल गम्भीरता के साथ देखता रहा। उसने मणि के आँसू सुखाने के यत्न को देख लिया था, पूछा—'क्यों बहन! यह क्या? यहाँ क्या अच्छा नहीं लगता?'

'मुचकुन्द भाई! मैं क्या करूँ? मेरे भाग्य में सदैव रोना ही बदा है। इसके सिवा और क्या है? अभी आप जानते नहीं इसीलिए ऐसा प्रश्न कर रहे हैं।'

'इस प्रकार रोने से कोई लाभ है क्या?'

'भाई! मैं रोती नहीं थी। दुनिया मुझे दुःख देती और मैं उसका दृढ़ता-

पूर्वक सामना करती थी ; उस समय मेरे आँसू सन्ताप से सूख गये थे आपके आश्रय ने, आश्वासन और सात्विक भाव ने तथा आपकी सहृदयता ने उसे फिर हरा-भरा कर दिया है जिससे वे पुनः बहने लगे।'

'तब तो अपराध मेरा ही है !' हँसने का प्रयत्न करते हुए मुचकुन्द ने कहा। उसका हृदय खिन्न हो उठा।

'भाई ! ऐसा क्यों कह रहे हो ? क्या मैं आपके व्यवहार से रो रही हूँ ? एकान्त में इस प्रकार रोने का अवसर भी न जाने कितने वर्षों के बाद आज मिला है। चलूं, भोजन की तैयारी करूँ।'

'जल्दी क्या है ?' मुचकुन्द ने कहा—'जरा चित्त शान्त होने दो, पीछे हो जायगा।'

'भाई ! मेरे मन में एक बात बहुत खटकती है।'

'क्या ?'

'मैं आपके यहाँ इस प्रकार कब तक पड़ी रहूँगी ?'

'जब तक कोई दूसरा अच्छा ठौर ठिकाना न मिले, तब तक, बहन ! व्यर्थ ऐसी बातों से मुझे क्यों दुःखी करती हो ? तुम्हारे समान एक रमणी इधर-उधर भटके और उसे कोई रहने को स्थान भी न दे ?'

'आपको खबर है मैं कौन हूँ ?'

'मैं सवेरे ही कह चुका हूँ कि मेरे विचार से तो सभी स्त्रियाँ देवी हैं।'

'भाई ! मेरे भाई ! ये व्यर्थ की बातें जाने दो। मैं अधम हूँ, पापिनी हूँ। यदि मैं यहाँ रहूँगी तो आपको कष्ट उठाना पड़ेगा।'

'मैं यह सब सुनना नहीं चाहता।'

'किन्तु मैं तो कहना चाहती हूँ।'

'जैसी तुम्हारी मर्जी' कहकर मुचकुन्द बैठ गया। मणि उसे बड़ी ही व्याकुल दिखाई पड़ी साथ ही उसे यह भी मालूम पड़ा कि वह अपनी पीड़ा में किसी को साझीदार बनाना चाहती है।

'आपको खबर है कि मैं संसार में अधम—अधम से भी अधम बाल-विधवा हूँ।' यह सुनकर मुचकुन्द चौंक उठा।

'भाई ! आपने नरक के सम्बन्ध में सुना होगा परन्तु मैं तो उसका प्रत्यक्ष

अनुभव करती रहती हूँ। दस वर्ष की अवस्था में मैं विधवा हुई, मुझे साधुनी बनाने का प्रयत्न आरम्भ हुआ। कहाँ मैं अनाथ बाला, और कहाँ मुझ पर किया जाने वाला अत्याचार! भाई? मेरा हृदय फट गया—मेरा शरीर गल गया परन्तु जीने की, सुख प्राप्त करने की साध नहीं मिटी।'

'इसी से बहुत से लोग विधवा-विवाह के पक्षपाती हैं।'

'इन विधवा-विवाह के पक्षपातियों की बात जाने दो। ऐसा ही एक अधम आया और उसने मुझे स्वर्ग तुल्य भोग-विलास का स्वप्न दिखाकर फँसा लिया। वह नरक से छुटकारा दिलाने का ढोंग करने वाला एक पापाचारी निकला। उसने मुझे विवाह करने का वचन दिया। उसके दिये हुये प्रलोभन में फँसकर भाई, मैं अपना सर्वस्व गँवा बैठी।' मणि का हृदय भर आया। उसकी आँख से सावन-भादों की झरी लग गई।

'बहन! बीती हुई बात स्मरण करके बेकार क्यों दुःखी होती हो?'

'भाई! इतने वर्षों के बाद आपने आश्रय दिया—तो क्या मैं कैसी हूँ यह भी न बताऊँ। कल यदि आपने आदर से ठहरने का स्थान न दिया होता तो हृदय पर पत्थर के समान कठोर करके संसार में विचरण करती हुई होती। किन्तु आपकी भलाई, सज्जनता देखकर मेरी कठोरता जाती रही। भाई! मैं दया की पात्र नहीं हूँ। मैं समाज की अपराधिनी—कुलांगार—कुलटा हूँ।'

अवाक् होकर मुचकुन्द उसकी ओर देख रहा था। उसे संसार का अनुभव इतना कम था कि वह कुछ बोल ही नहीं सका।

मणि आगे बढ़ी—'मुझे गर्भ रह गया। जिस चण्डाल ने ठगकर मेरा धर्म भ्रष्ट किया वह अब पास भी न फटकता था। धर्म के ढोंग करने वाले बहुत से मेरे पास आये। गर्भ गिरा देने की बहुत योजनायें की गई। किसी ने कुआँ दिखाया, किसी ने विष और किसी ने गर्भपात करने का उपदेश दिया। अविचलता-पूर्वक मैं सबका सामना करती रही।' कहकर मणि ने आँसू पोंछे।

'फिर?' आतुरता से मुचकुन्द ने पूछा।

'मैंने सबका सामना किया अपने गर्भस्थ बालक के लिए! घर-द्वार छोड़कर चली आई। मेरी सुरेखा का जन्म हुआ और उसे दूसरे को सौंपकर दर-दर मारी-मारी फिर रही हूँ।'

'हे भगवान् ! यह है हमारे समाज की खूबी ! सुधार करने के लिए कहा जाता है लेकिन कोई सुनता नहीं' रानाडे और तेलंग के भाषणों से परिपुष्ट मस्तिष्क वाला मुचकुन्द बोल उठा।

'समाज का सुधार !' सिंहनी के समान गरजकर मणि ने कहा। उसकी आँखें विचित्र प्रकार से चमकने लगीं। भाई ! मैं भटकती हुई आपके धर्मधूर्तों के पास, आपके संसार-सुधारकों के पास गई। सबसे विनती की, सबका हृदय टटोला। आपके संसार की बुराई दूर करने का ढोंग रचने वालों ने मुझे और भी भटकाया। प्राचीन और अर्वाचीन दोनों पंथों के समाज-वैद्यों से मिली—दोनों की औषधि लेने की अपेक्षा रोग से मर जाना मुझे अधिक अच्छा मालूम हुआ।'

'कह क्या रही हो ?'

'बिल्कुल सच ! सभी मेरी मजबूरी से अनुचित लाभ उठाने के लिए ललचाये। मात्र अपनी टेक को मैंने नहीं छोड़ा, उसे अपने जीवन से भी अधिक चिपटाकर रखा और यदि यह अधम वेश्या न होती तो न मालूम मेरी क्या दुर्दशा होती !'

'फिर ?'

'फिर उसके साथ भागी, उसके यहाँ कुछ समय तक रही, परन्तु मेरा रूप ही मेरा शत्रु हो गया। वेश्या ने मुझे बेच देने का विचार किया। मैं दृढ़ रही। एक बार इस प्रलोभन में फँस चुकी थी।'

'वहाँ से भागकर कहाँ गई थीं !'

'यहीं आई। भाई ! यही मेरी जीवन-कथा है। मैं अच्छे घर में पैर रखने योग्य भी नहीं हूँ। इसलिए यदि मेरा कहना मानो तो कहीं मेरा प्रबन्ध कर दो। मुझ में इतना वैराग्य नहीं है कि भक्ति कर सकूँ और न भले घर में रहने लायक सदाचार ही है।'

'तब कहाँ जाओगी ?'

'जहाँ भी हो सका। मुझे कुछ संगीत का ज्ञान है—कहीं नौकरी कर लूँगी।'

'बहन ! तुम्हें कोई भाई था ?'

'नहीं।'

'समझ लो था—सगा भाई था—जिसके साथ बचपन में तुमने खेला कूदा। तुम्हारी इस हीन दशा पर तरस खाकर यदि तुम्हें बुलाकर वह अपने यहाँ आदर के साथ रखना चाहे तो क्या तुम उस भाई की इच्छा को अनादर से ठुकरा दोगी ?'

'भाई ! संसार में मेरे लिए स्नेह और सम्बन्ध की सृष्टि ही नहीं हुई है।'

'कौन कहता है ? मान लो कि वह अपनी बाल सखी बहन को स्नेह से पूजता हो, उसके लिए रोता-बिलखता हो और वह भाई तुमसे कहे कि बहन यह घर तुम्हारा है, एक जननी की आँखों के हम दो तारे हैं, एक उदर से जिस प्रकार हम एक साथ निकले हैं, वैसे ही एक साथ जीवन व्यतीत करेंगे तो तुम क्या उत्तर दोगी ?'

'मैं कहूँगी कि भाई ! तुम्हारी पवित्र आत्मा को कलुषित एवं कलंकित करने की अपेक्षा मुझे मृत्यु अधिक प्यारी है ! मुचकुन्द भाई ! आपका वाक्-चातुर्य मैं समझती हूँ किन्तु आशा-रूपी रोटी से मेरी तृप्ति नहीं होगी।'

'भाई की रोटी क्या ऐसी हो सकती है ?'

'भाई ! उफ ! क्यों उपकार के बोझ से दबा रहे हो मुझे ? मैं आपकी दयालुता की आभारी हूँ, उसे मैं अच्छी तरह जानती हूँ। किन्तु यदि आप मेरे लिए आजीविकोपार्जन का कोई साधन ढूंढ़ निकालने का वचन दें तब तो मैं रह सकती हूँ भार-स्वरूप होकर रहना मैं नहीं चाहती।'

'अच्छी बात है ! यदि तुम्हारी ऐसी ही हठ है तो यही सही, पर अभी तो यहाँ ठहरो।' खिन्नता से कह कर मुचकुन्द उठ गया। तुरन्त मणि ने कुछ सोचा और वह मुचकुन्द के पास आई।

'भाई ! एक बात कहती हूँ, मैं बड़ी ही विचित्र हूँ, मेरा स्वभाव स्वच्छंदी है ; जो मन आता है बक जाती हूँ। यदि आपको कुछ कष्ट पहुंचा हो तो क्षमा कीजियेगा।'

'यह बात ही अब जाने दो। तुम यहाँ रहो। कोई काम ढूंढ़ने का प्रयत्न करूंगा, लेकिन तब तक मैं भाई और तू मेरी बहन !'

'तब तक ? अच्छा !' मणि ने जवाब दिया और उसकी आँखों से टप-टप आँसू गिरने लगे।

× × ×

मुचकुन्द और मणि सगे भाई-बहन के समान रहने लगे। मुचकुन्द अधिक उत्साह से पढ़ने लगा। उसका स्वामी म्युनिसिपैलिटी का सदस्य था। उससे मुचकुन्द ने मणि को किसी कन्या पाठशाला में एक अध्यापिका का स्थान दिला देने की प्रार्थना की। मणि के सौभाग्य से उसे सफलता प्राप्त हो गई और उस सेठ की कृपा से मणि को जगह मिल गई।

मणि तीस रुपये मासिक पर अध्यापिका हो गई और एक मास इसी प्रकार बीत गया।

: ६ :

एक महीने में मुचकुन्द और मणि एक दूसरे के स्वभाव से पूर्ण परिचित हो गये, एक दूसरे के रहन-सहन को भी अच्छी तरह समझ गये। इतना अनुभव प्राप्त, ऐसा सरल पर विद्वान् ऐसा बुद्धिशाली पर निर्दोष व्यक्ति मणि को आज तक नहीं मिला था। कभी वह उसकी प्रभावशाली बुद्धि से परास्त हो जाती, कभी उसकी भलमनसाहत पर हँसती, सदैव उसे प्रसन्न रखने का प्रयत्न करती और प्रायः बहुत से कामों में उसे प्रोत्साहित करती थी। मुचकुन्द को भी भिन्न-भिन्न प्रकार के अनुभव होने लगे। घर का उसे एक अनुपम अनुभव हुआ। स्वच्छ टंगे हुए कपड़े, सजा कर रखी हुई पुस्तकें और रसमय भोजन-सामग्री से उसका छोटा-सा कमरा स्वर्ग के समान शान्तिमय वातावरण से भरा मालूम पड़ने लगा। उसका आज तक किसी स्त्री से सम्पर्क नहीं हुआ था, अब प्रतिदिन एक युवती स्नेह से उसका अभिवादन करती। मणि की तत्परता, बुद्धिमत्ता, उसकी ओजस्विनी भाषा आदि उसे चकित कर देती थी। वह प्रतिदिन हँसता हुआ अपने काम पर जाता था।

स्त्री के हास्यरूपी मद से ऐसा कौन पुरुष है जो मदान्ध न हो जाय? माता, बहन, स्त्री या पुत्री के स्नेह से किसका पाषाण-हृदय नहीं पिघल जाता? कौन इस प्रकार का शुद्ध प्यार पाकर अपने को श्रेष्ठ न समझे? जब यह प्यार

पारस में परिवर्तित हो जाता है तभी नर-पुंगव इसके स्पर्श से गरीब गाय जैसा बन जाता है। नीचा सिर कर ठण्डा गरम जो कुछ मिले, खाकर तृप्त हो जाता है।

पर मणि के सिर पर मंडराने वाला शैतान उसे छोड़ने वाला न था। भला वह मणि को इस प्रकार सुखपूर्वक जीवन व्यतीत करते हुए कैसे देख सकता था ? मुचकुन्द अकेला था वह सहसा दुकेला कैसे हो गया, यह बात उसके पड़ोसियों की समझ में नहीं आई। मणि का सौन्दर्य इतना दीप्त था कि जो कोई भी उसे देखता वह उसकी ओर आकृष्ट हुए बिना न रहता और उस व्यक्ति की, उसके सम्बन्ध में पूछताछ करने की प्रबल इच्छा जाग्रत हो उठती। इसी कारणवश उसके पड़ोसी मुचकुन्द का पूरा नाम ठिकाना न जानते हुए भी उसके जीवन में दिलचस्पी लेने लगे और उसके सम्बन्ध में अनेक प्रकार की किंवदन्तियाँ उड़ाने लगे।

संसार की दयालुता का लम्बा अनुभव होने से मुचकुन्द ने कल्पना भी न की थी कि इस प्रकार का निर्दोष जीवन व्यतीत करना भी समाज की नजरों में घोर पाप है। उसे इस प्रकार के जीवन में किसी प्रकार का कलंक अथवा दोष दिखाई नहीं देता था।

एक दिन रविवार को वह बरामदे में खड़ा था ; उससे थोड़ी ही दूर पर मणि भी खड़ी थी। दोनों इस प्रकार खड़े हुए सड़क की एवं आसपास के मकानों की शोभा देख रहे थे।

नीचे मुचकुन्द के दो परिचित जा रहे थे। एक ने सिर ऊपर उठा कर देखा और अपने साथी को सम्बोधन करते हुए कहा—'गमनलाल ! यह तो अपना मुचकुन्द पंड्या ही है न ?'

'हाँ !' धीरजलाल ने ऊपर देखते हुए जवाब दिया, 'अपना साथी ! भाई, यह तो बड़ा गुरुघंटाल निकला। इसके साथ में स्त्री कौन खड़ी है ? ऐसी रूप-वती यह कहाँ से ले आया ?'

'स्त्री कैसी ! अभी इसका विवाह कहाँ हुआ है ? पिछली छुट्टियों में इसके पिता मिले थे, वह तो अभी विवाह करने की चर्चा कर रहे थे।'

'तब यह किसे उड़ा लाया है ?'

'कौन जाने, यह तो छिपा रुस्तम निकला ! मुझे मालूम पड़ता है कि भाई साहब एक भाड़े की स्त्री लाकर गृहस्थी जमाना चाहते हैं।'

'ऐसा ! तब तो इस बात का पता लगाना चाहिये।' धीरजलाल ने भी अपनी कल्पना शक्ति दौड़ाते हुए उसमें इतना और जोड़ दिया ; 'मैंने भी सुना था किन्तु भला मुचकुन्द के सम्बन्ध में ऐसा कौन विश्वास करेगा ? मुझसे तो कोई यह भी कह रहा था कि इसके दो-एक बच्चे भी हैं।'

'धत् तेरे की ! तब तो अवश्य ही इस सब भेद का पता लगाना चाहिये। चलो एक काम किया जाय, अभी ऊपर चलें। मैं बन जाता हूँ बीमार और तुम मुझे सहारा देकर ले चलो ऊपर।'

'यदि तुम बीमार थे तो इस प्रकार घूमने कैसे निकल पड़े ?'

'अजी कह देना कि एकाएक पेट में पीड़ा प्रारम्भ हो गई, पंड्या डाक्टर थोड़े ही हैं।' कह कर गमनलाल आगे बढ़ कर ऊपर चढ़ने लगा।

'पंड्या ! पंड्या ! ओ पंड्याजी !' धीरजलाल ने जोर से पुकारा।

'क्या है ?' दरवाजा खोलते हुए मुचकुन्द बोला।

'अरे यह गमन मर रहा है।'

'ऐं ! क्या हो गया ?' मुचकुन्द ने घबराहट के साथ पूछा।

'अरे. अ—ओ ओ—' गमनलाल ने ढोंग रचते हुए कहा। 'हाय पीड़ा, प्राण निकले जाते हैं। यह अभी-अभी हो गई है। अरे, जरा लेटने दो, ओ—क्षमा करना—तुम्हें—ओ—ओ—ओ—' कह कर वह फर्श पर ही लेट गया। मुचकुन्द और भी घबरा कर बोला—'धीरजलाल कहो तो डाक्टर को बुलावें ?'

'ऊँ हुँ हुँ—' गमन ने रोका। उसने चारों ओर नजर दौड़ाई। लेकिन कोई दिखाई नहीं दिया, क्योंकि मरिण बरामदे में से भीतर नहीं आई थी। 'यह तो मुझे अक्सर हो जाया करती है ; अभी ठीक हो जाऊँगा। मित्र ! बगल से जरा चाय ले आओ न, उससे दर्द मिट जाएगा ओ—ओ—'

धीरजलाल ताड़ गया। चारों तरफ देख कर बोला—अरे आओ न वह स्टोव !'

'अरे हाँ !' मुचकुन्द ने कहा, लाओ हम सभी चाय पीयें। कहकर बरामदे में जाकर मरिण से उसने पूछा कि दूध है या नहीं। 'हाँ' कहकर वह स्टोव

जलाने लगी।

जमीन पर से फिर आवाज आई, 'ओ, धीरजलाल···ओह !'

मुचकुन्द बेचारा सेवा-सुश्रूषा में लग गया।

'मिसेज पंड्या को कष्ट दे रहा हूँ। क्षमा करना !' धीरजलाल ने वाक्य-बाण छोड़ते हुए कहा।

मुचकुन्द यह सुन कर तिलमिला गया, उसका मुख लाल हो गया किन्तु मित्र बिचारे क्या जानें।

'यह तो मेरी बहन है !' उसने उत्तर दिया।

'अरे ! भाई माफ करना, भूल हो गई। बेकार में उन्हें कष्ट दे रहा हूँ !'

'इसमें कष्ट की कौन-सी बात है ?'

'गमन की पीड़ा थोड़ा-थोड़ा अब कम हो रही है।' धीरज ने कहा।

'हाँ ! अब जरा कम है ; पर इसका कुछ कहा नहीं जा सकता। ओ···ओह···अरे !' जल्दी चाय लाने के लिए मुचकुन्द दौड़ा। गमन ने आँख मारी।

'लो खोदा पहाड़ और···।' धीरे से धीरज ने कहा।

'तेरा सिर।'

'क्यों ?'

'इसकी इतनी बड़ी बहन है कहाँ ?'

'ओह ! समझ गया।'

इसी समय मुचकुन्द आ गया जिससे इनकी बात अधूरी ही रह गई। सबने मिल कर चाय पी।

'प्राण शंकर पंड्या कैसे हैं ?' गमन ने पूछा।

'अच्छी तरह हैं, अभी पत्र आया था।'

'सब कुशलपूर्वक हैं न ?'

'हाँ ! अब तुम्हारा दर्द कैसा है ?'

'अब जरा ठीक है। धीरज ! चलो अब चला जाय। नीचे एक गाड़ी कर लेंगे।'

'नहीं, नहीं। अभी थोड़ा और ठहर जाओ न ?'

'नहीं, अब जाऊँगा।'

दोनों मित्र बाहर निकले। दिखाने के लिए नीचे गाड़ी कर ली गई। गाड़ी के रवाना होते ही गमन खिलखिला कर हँस पड़ा।

'मित्र अब दिल्लगी देखना। चोर चालाक बन कर कैसी लम्बी-चौड़ी बातें बना रहा था!' कहकर उसने गाड़ी रुकवाई और चार आने देकर गाड़ीवान को विदा किया। वे दोनों पास ही के एक डाकघर में गये। गमनलाल ने कार्ड लेकर और उस पर कुछ लिखकर उसे धीरजलाल को दिखाया।

दोनों पेट पकड़ कर खूब हँसे। पत्र लेटरबक्स में छोड़ दिया गया।

और...... !

इस परिहास के कारण-रूप निर्दोष दो व्यक्ति—मणि और मुचकुन्द—अज्ञानतावश जीवन को आनन्दपूर्ण समझते रहे। पर व्योम में बिना बादल का वज्र गरजा था। उसमें से बस तूफान का फटना ही बाकी था।

: ७ :

पाणु-पंड्या चबूतरे पर बैठे हुए भृगु-संहिता का पाठ कर रहे थे। गाँव वाले उन्हें पाणु पंड्या कहकर पुकारते थे, परन्तु उनका असली नाम प्राणशंकर पंड्या था। इनका काम पुरोहिताई का था और इसी के परिणाम-स्वरूप यजमान राजाओं की कृपा से उनका सकुटुम्ब सुख-पूर्वक रहने का प्रबन्ध हो गया था। इनका प्रमुख अधिकार सरदारी का था। वह अपनी जाति के चौधरी सरदार थे। कभी अपने गाँव के वह पटेल भी रह चुके थे। थोड़ी बहुत विद्वत्ता से और यजमानों की कृपा से अपने घर में भी प्रभुत्व करने का उन्हें अधिकार प्राप्त हो गया था। वे अभिमानी थे, उनके चौड़े, रोबीले चेहरे, बड़े कन्धे, भूदेव सदृश गर्व आदि अनेक तत्वों से उनकी लोगों पर इतनी धाक जमी हुई थी कि उनका अभिमान अकारण ही नहीं मालूम पड़ता था।

इनके गाँव में अभी नवीन सुधारों ने प्रवेश नहीं किया था; इससे जब पाणु पंड्या बीच के चौतरे पर बैठते थे तब किसी का साहस नहीं था कि उन्हें

प्रणाम किये बिना उधर से निकल जाय और किसी स्त्री में साहस नहीं था कि उस तरफ से गुजर जाय। पंड्या जी गाँव के प्रत्येक व्यक्ति को, यहाँ तक कि उनके पूर्व इतिहास तक को जानते थे। लोगों को सन्मार्ग पर चलने के लिए विवश करते थे और अपनी सत्ता जमाते थे। प्रत्येक गाँव में प्रायः ऐसे पंड्या मिलते हैं।

पाश्चात्य विद्या में पारंगत इन्हें ब्राह्मणों की स्वार्थपरता का एक उदाहरण बताते हैं। सुधारक सब दोष इनके सिर मढ़ते हैं। हमारे उत्तेजित नवयुवक इनका जड़मूल से नाश करने की योजनायें रचते हैं और स्वार्थान्धता, नीचाशयता, मदमस्ती और दुर्गुणों से युक्त ऐसे देश के कलंक रूप व्यक्तियों से मानो वे लज्जित हों इस प्रकार पाण्डु पंड्या जैसे लोगों के सम्बन्ध में वे ऐसी बातें किया करते हैं।

यह क्या सच है? ऐसे कलंकित व्यक्ति इस प्रकार समाज की सत्ता प्राप्त कर देश में भला क्यों जड़ जमाकर बैठ हुए हैं? वर्तमान काल में पश्चिम की कसौटी पर कसे जाने पर ये कैसे दिखाई पड़ेंगे? इस समय हम इस वर्ग का मूल्यांकन नहीं कर सकते, यह हमारी मूर्खता है। दूसरे जो लोग मूल्य आँक दें उसी मूल्य को हम अंगीकार कर लेते हैं। यही हमारी बुद्धि के सत्यनाश का प्रथम उदाहरण है।

ऐसा कहा जाता है कि वर्तमानकाल के पाण्डु पंड्या अज्ञानी, मूर्ख और दंभी हैं। अज्ञानी इस अर्थ में हैं कि उन्होंने कालेजों में शिक्षा ग्रहण नहीं की; पर हमारे आजकल के कालेजों की शिक्षा न तो राष्ट्रीय है और न सम्पूर्ण इसका विस्तार अभी हमारे देशरूपी समुद्र में कुछ बिन्दु तक ही सीमित है। पंड्या यदि कालेज में पढ़ते तो संभव है वह भी रानाडे, मदनमोहन, सुरेन्द्रनाथ बन कर निकलते और संसार को उज्ज्वल करते परन्तु कालेज में शिक्षा ग्रहण न करने पर भी उन्होंने क्या नहीं किया?

इन जैसों ने भूतकाल में आर्य संकृति का विस्तार किया। संस्कृति, भाषा और रीति-रिवाज को देश के कोने-कोने में, छोटे से छोटे गाँव में ले जाकर इतने बड़े देश को राष्ट्रीय एकता दी। महाभारत और रामायण की कथाएँ स्थान-स्थान पर कहकर देश के आदर्शों को महाकष्टप्रद स्थिति में भी सुरक्षित

रखा। शास्त्र और संस्कार की शिक्षा दी। अनीति, मदिरापान व्यभिचार आदि दुर्गुणों से रक्षा करके आज भी उनके आदर्श को उच्च रखा और इस सेवा के लिए उन्हें मिला क्या ? एक मुट्ठी चावल, एक पैसा और एक सुपारी दक्षिणा।

किस देश में ऐसी सदियों की परंपरा से चला आता हुआ भगीरथ, एक-निष्ठ प्रयत्न देखा जाता है ? किस प्रजा में इतने विदेशीय आक्रमणों के होने पर भी ऐसे उच्च वर्ग का आत्म-त्याग, ऐसी सेवा-भावना देखी जाती है ?

पर पाण्डु पंड्या इसका विचार किये बिना कि उनका मूल्य लोग तुच्छ समझते हैं, वे संहिता का पाठ कर रहे थे। युवावस्था में काशी जाकर इसे पढ़ना सीखा था। आज साठ वर्ष की अवस्था में भी वह उनकी सतत सहचरी है।

गौरीशंकर गोटली नामक गाँव का एक युवक जोशी, जो जरा शरीर का नाटा, मोटा और काला था उधर से चला आ रहा था। पंड्या जी के पाठ में विघ्न पड़ गया।

'गोटली; जरा इधर आओ इधर !' पंड्याजी ने चिल्लाकर पुकारा।

गौरीशंकर और पंड्याजी में कुछ षड़ाकष्ट योग पड़ा था।

पंड्या जी वृद्ध-पक्ष के नेता और प्रभुता प्राप्त करने के आकांक्षी थे, जोशी युवकों का नाम था।

'ओहो ! पंड्या जी ! कैसे हैं ? नमस्कार !'

'क्यों बेटा ! तू बड़ा बुद्धिमान् बन गया है क्या ? अपनी मोटी तोंद पर से पसीना पोंछते हुए पंड्या जी ने चिल्लाकर पूछा—'उस रामशंकर तिवारी के लड़के को जाति में लेने का प्रयत्न कर रहे हो ? क्यों ! मैंने तुझसे क्या कहा था ?'

'पंड्या जी ! कौन कहता है ?'

'कौन ? इस प्रकार मुझे नहीं ठग सकोगे ?' सिर हिलाते हुए पंड्या जी ने कहा। 'इन विलायत जा कर भक्ष्य-अभक्ष्य सब कुछ खा-पीकर आने वालों को क्या हम जाति में शामिल कर लेंगे ?'

'पर कहता कौन है ? पंड्याजी ! जहाँ आपका पसीना गिरे वहाँ मैं अपना खून गिराने के लिए तैयार हूँ। आपके पीछे मैं हूँ !' गोटली ने कहा।

'शास्त्र स्पष्ट कहता है कि विदेश-गमन का प्रायश्चित है ही नहीं।'

'बिल्कुल ठीक है महाराज ! परन्तु····।'

'परन्तु क्या ? मैंने सुना है कि तू कहता है कि जाति तो गंगाजी का प्रवाह है।'

'बल्कुल ठीक तो है, पंड्या जी ! जिस प्रकार दक्षिणा।'

'दक्षिणा ! दक्षिणा क्या ? यह नरदेह एक बार नष्ट हो जाने के पश्चात् भवोभव नरक की अधिकारी है भाई ! मेरी मृत्यु के पश्चात् जो कुछ तुम्हें करना हो करना ! अपनी जाति की पंचायत कब होने वाली है ?'

जाति के मुखिया तो आप हैं, बुलाओ न पंचायत।'

हाँ ! आज ही; पर सावधान ! देख, तू लड़कपन मत करना।' कह कर पंड्या जी ने गोटली को चेतावनी दी।

गोटली नमस्कार कर वहाँ से चला गया। उस ठिगने के मन में पंड्या जी के प्रति द्वेष दिन-प्रतिदिन बढ़ता जाता था; जिससे येन-केन प्रकारेण उनका घमंड तोड़ने के मौके को बराबर ढूंढता रहता था।

पंड्या जी ने पुनः पुस्तक पर दृष्टि डाली। इतने में लकड़ी ठोंकता हुआ डाकिया पहुँचा।

'पंड्या जी ! राम राम !

'कोई पत्र है क्या ?'

'है महाराज ! एक कारड है। देखूं, भाई कहाँ से होय, मुंबई से।'

'दो देखूं।' कहकर पंड्या जी पत्र लेकर पढ़ने लगे।

'क्यों भाई तुम्हारी ही होय न ?' डाकिया ने पूछा, परन्तु पंड्या जी के तो आँख के सामने अंधेरा छा गया था उनका सिर चक्कर खा रहा था।

उनका ओंठ पत्र से भिड़ा हुआ था। डाकिया यह देख कर घबड़ाया और प्रश्न का उत्तर लिये बिना ही वहाँ से चलता बना।

पत्र निम्नलिखित था:—

'कृपानिधान राजश्री पंतिवर पंड्याजी !

आप समझते होंगे कि आपका पुत्र विद्याभ्यास कर रहा है; किन्तु ये भाई साहब यहाँ विवाह करके मौज उड़ा रहे हैं। ऐसा सुनने में आता है कि दो-

एक बाल-बच्चा भी हो गया है। इसलिये नरक में से तरने के लिये आप सावधान हो जायें।

भवदीय—

रामजी सामाजी भट्टाचार।

कुछ देर तक तो पंड्या जी की समझ में कुछ आया ही नहीं; पर पत्र का आशय समझ में आते ही उनके उग्र स्वभाव की उग्रता जाती रही। कुछ विचार के बाद धीरे-धीरे पत्र फाड़कर फेंक दिया।

पंड्याजी शीघ्रातिशीघ्र घर पहुँचे और बड़े पुत्र पर आया हुआ क्रोध अपने छोटे पुत्रों पर निकाला। इतने में इनकी नवीना पत्नी बाहर निकल आईं।

'क्यों, आज कुछ ज्यादा गुस्सा चढ़ गया है क्या ? इन बेचारों ने आपका क्या बिगाड़ा है जो आप इन्हें पीट रहे हैं।'

'तेरा सिर फोड़ने के लिये, जा तू अपना काम कर !' अपनी गाय जैसी पत्नी का मुंह पकड़ कर उसे चुप कराते हुए कहा।

'कौन पुराणी जी महाराज ! नमस्कार !' कहकर छोटे-छोटे बाल और लम्बी शिखा वाले एक लम्ब-तड़ंग, त्रिपुण्ड तिलक से सुशोभित महाभक्त मालूम होने वाले ब्राह्मण ने भीतर प्रवेश किया।

'पंड्याजी ! यह क्या ! आपने तो मेरे और अपने दोनों के नाम पर पानी फेर दिया।'

'किसने ? क्या बात है ?' इसे यह भेद कहां से मालूम हो गया, यह न समझ सकने के कारण पंड्याजी ने पूछा।

'आपका पुत्र और मेरा भावी जामाता ! और कौन ? कष्ट नष्टेश्वर में तो सब लोग बैठे बातें कर रहे हैं कि उसने एक मुसलमानिन को रख लिया है और उसके दो लड़के भी हैं। आप तो विवाह की बात करते थे।'

'किसने कहा ? कौन चाण्डाल, कौन पापी मेरी पीठ पीछे ऐसी-ऐसी बेतुकी बातें गढ़ा करता है ?'

'अरे भाई सच्ची बात है ! अभी-अभी बम्बई से खबर आई है। भैया मैंने क्या पहले ही नहीं कहा था कि पाश्चात्य विद्या मत दिलाओ। किन्तु आपको भला किसी की परवाह है ? लीजिये भोगिये।'

'अरे पुराणी जी ! यह तो सब गपाष्ट के विनियोग हैं। आप निश्चिन्त रहें। किसी चाण्डाल की धृष्टता है।'

'अरे धृष्टता क्या है पंड्या जी ! वे सब अभी आपके पास आते हैं। लड़के ने सीमोल्लंघन किया है। पंचायत करने की कुछ चर्चा चल रही है। यदि ऐसा हुआ तो यद्यपि हम सच्चे बालमित्र हैं फिर भी मैं अपनी पुत्री कुपात्र को नहीं दूंगा।'

'अरे क्या कहते हो पुराणी जी ! यह सब नरपिशाच हैं नरपिशाच ! सबको मैं ठिकाने लगा दूंगा। देखता हूँ कौन पंचायत करता है। जाति का चौधरी तो मैं हूँ।'

'किन्तु इस अकड़ से काम नहीं चलेगा।'

'नहीं पर मैं भी खोज करूंगा। मेरा पुत्र यदि 'अधमावस्थाम् आगतः' तो उसकी चुटिया पकड़ कर जात बाहर विसर्जयेत्।'

'कष्ट-नष्टेश्वर में सब बैठे हुए हैं; वे अभी सब ठीक-ठाक कर यहाँ आवेंगे। मैं भी नहीं समझता कि आपके पुत्र ने ऐसा काम किया होगा।'

'अरे ऐसा क्या कभी सम्भव है ? चीर डालूंगा कुलाङ्गार को !' कहकर पुराणी जी को विदा कर भीतर जाकर पत्नी से बोले—देखो, जल्दी भोजन तैयार करो।'

'क्यों, कौन-सी जल्दी आ पड़ी ?'

'जाना है। तीसरे पहर रेलगाड़ी जाती है !'

'कहाँ जाओगे ? इतनी जल्दी !'

'गुप्त रखना ! बम्बई ! यजमानराज का पत्र आया है। वहाँ शतचण्डी आरम्भ हो गई है। मेरी खास जरूरत आ पड़ी है।'

पुरोहितानी को विस्मय हुआ। उसने पुराणी जी और पंड्या जी की कुछ बात-चीत सुन ली थी। किन्तु पंड्याजी की इच्छा के विरुद्ध उनका विचार जान लेना बहुत बड़ा अपराध होने से वह चुप-चाप यात्रा की तैयारी करने लगी।

: ८ :

पागु पंड्या चर्नी रोड स्टेशन पर उतरे। बड़ी कठिनता से कांदिवाड़ी खोजते-खोजते मुचकुन्द के घर पर किसी प्रकार पहुँच ही गये। वह बम्बई पहले पहल आये थे जिससे इतने ऊँचे मकान, लम्बी-चौड़ी सड़कें और इतना जनसमूह देखकर किसी दूसरे पर क्रोध निकालने में अशक्त होने से मुचकुन्द पर ही गाली की बौछार करने लगे। अपने कपूत पर तो उन्हें झुंझलाहट थी ही और मानो बम्बई जैसे नगर को खराब बनाने का उत्तरदायित्व भी उसी पर हो इस धारणा से उनकी झुंझलाहट बढ़ती ही जा रही थी।

'मेरा ऐसा लड़का ! ऐसे पुत्र की अपेक्षा तो पुत्रहीन रहना कहीं अच्छा है।' कहकर पंड्याजी लोगों से मुहल्ला पूछने लगा। चार-पाँच आदमियों से पूछने पर मुहल्ला मिला और छठे से पूछने पर मुचकुन्द का मकान मिला। ऊपर चढ़कर वह इतनी जोर से साँकल खटखटाने लगे कि सारा मुहल्ला गूंज उठा।

धीरे से दरवाजा खुला। मणि का परम सुन्दर, तेजस्वी मुख द्वार के पीछे दिखाई दिया। उसने पूछा—'आप किसे चाहते हैं ?'

'किसे क्या ? यह घर किसका है ? मुचकुन्द पंड्या का या किसी दूसरे का ?' हाँफते हुए रोष से पंड्या जी ने पूछा।

'जी, उन्हीं का है ! पधारिये, मुचकुन्द भाई पढ़ने गये हैं।'

पागु पंड्या सोच रहा था कि मुचकुन्द-सम्बन्धी बात झूठी होगी, नहीं तो वह छिपा रहता। लेकिन यह क्या ? पागु पंड्या ने एक गहरी साँस ली। ऐसा लज्जाहीन, अपवित्र, चाण्डाल, अधम और पाषाणवत् पुत्र किस घोर पाप के परिणाम से उसके वीर्य से उत्पन्न हुआ। वह क्रोध और तिरस्कार से आँखें फाड़-फाड़कर मणि की ओर देखने लगे।

'तू कौन है ?' लाल-पीले होते हुए पंड्या जी ने पूछा।

'मणि को नहीं सूझ पड़ा कि क्या उत्तर दे और न वह यह समझ सकी कि वृद्ध है कौन ? उसने बहुत बार मुचकुन्द से सुना था कि उसकी एक बहन है। इसलिये उसने कहा—'मैं मुचकुन्द भाई की बहन होती हूँ।'

इस विकराल स्वरूप वाले वृद्ध को देखकर मणि को कुछ भावी विपद की पूर्व सूचना मिल गई थी। पाण्डु पंड्या के क्रोध का ठिकाना न रहा। जोर से झोली फेंक कर वह जमीन पर बैठ गये।

'कैसी बहन ? क्या मुचकुन्द की माँ के पेट से जन्मी हुई ? मैं कौन हूँ; तुझे ज्ञात है ?' वृद्ध ने चीत्कार कर कहा।

'जी नहीं !' मुचकुन्द के किसी मित्र या सम्बन्धी का दिल न दुःखे, इस विचार से शान्तिपूर्वक मणि ने कहा।

'मैं उसका बाप होता हूँ; परन्तु तू उसकी बहन कैसे हुई यह तो बता ?'

मणि ने देखा कि यह भूल गहरी हो गई, 'क्षमा कीजिये ! मैं मुचकुन्द भाई की धर्म की बहन हूँ।'

'अरे धर्म की या कर्म की। तू यहाँ आई कब से है ?'

'डेढ़ महीना हो गया। आप कपड़े उतारें, मैं चाय तैयार करके लाती हूँ। आप थक गये होंगे।'

वृद्ध का ध्यान सर्व प्रथम मणि के मोहक रूप और उसके कोकिल कंठ पर गया एवं उसका असर जादू-सा वृद्ध पर भी होने लगा।

'तू किस जाति की है ?'

'ब्राह्मण ! आप दाँतुन आदि से निवृत्त हो चुके हैं ?'

'नहीं करना है।'

मणि ने दाँतुन-पानी लाकर दिया। वृद्ध मणि के मोहक सौन्दर्य को देखता रहा।

'तेरा पति क्या करता है ?'

'मेरा कोई नहीं है।' मणि ने दुःखपूर्ण स्वर में उत्तर दिया।

'किं वदसि ?' संस्कृत में स्वभावानुसार उन्होंने पूछा।

मणि इसका कुछ उत्तर न दे सकी।

'तेरा बाप ब्राह्मण था या स्वयंभू है ?' वृद्ध ने कटाक्ष करते हुए पूछा।

मणि चुप रही।

'कहाँ से आकर तूने मेरे पुत्र को भ्रष्ट किया ?'

'पंड्याजी ! आपको किसी ने व्यर्थ भ्रम में डाल दिया है।'

'हाँ रे हाँ, तेरा यह रंग-ढंग ही सब कुछ बता रहा है। उस कम्बख्त लड़के को आने तो दे। तुझ से कोई झगड़ा-टंटा मुझे नहीं करना है। तू जहाँ से आई हो वहाँ चली जा।'

'मुझे कुछ इंकार नहीं है। आपके पुत्र के बहुत उपकारों से मैं लदी हुई हूँ, अतः उन्हें आजाने दीजिये मैं चली जाऊँगी।'

वृद्ध ने कुछ विचार किया, उसके आने तक क्यों ? मैं उसका बाप हूँ, मैं कहता हूँ कि तू जा, गच्छ !'

'आप भले ही कहें। उपकार किया है आपके पुत्र ने न कि आपने। उनके आते ही मैं चली जाऊँगी।'

'तू समझती है कि मैं कुछ नहीं हूँ, उसके आने तक मेरा कहना नहीं मानेगी।'

मणि ने गौरव से सिर ऊंचा कर कहा—'नहीं !' उसका भी क्रोध भड़क उठा।

'अर्थात् !'

'मैं उन्हें जानती हूँ, आपको नहीं।'

गाँव के पुरोहित और अपनी जाति के चौधरी, जिनकी मर्यादा पर आज-तक किसी ने आक्षेप नहीं किया था और न आज्ञा का उल्लंघन किया था वह इस छोकरी की धृष्टता देखकर स्तब्ध हो गये।

'तू मुझे अभी पहचान जायगी। मेरी इज्जत पर पानी फेरने के लिए तू पैदा हुई है ?'

'नहीं !' मणि का नथुना गर्व से फूल उठा। दूसरे ही क्षण अपनी पिछली जीवन-कथा उसे याद हो आई। लज्जा से अपना सिर उसने नीचा कर लिया। अभी यह वृद्ध जानता न था। किसी भले मानस के यहाँ रहने का—उसके मकान में पैर रखने का उसे अधिकार ही क्या है ?

'तब किसलिए हठ करती है ? मेरे पुत्र को किसलिए बिगाड़ती है ?'

'मैं कब नहीं करती हूँ ? मैं तो जैसी हूँ, वैसी हूँ। मुचकुन्द भाई के आ जाने पर निर्णय हो जायगा। मैं उन्हें वचन दे चुकी हूँ।'

'क्या ?'

'यही कि उनकी आज्ञा बिना यहां से नहीं जाऊँगी।'

'बड़ी आई वचन की पालन करने वाली! तू इस तरह नहीं मानेगी!'

'नहीं!'

'बहुत ठीक।' कहकर पैर पर पैर रखकर पाण्डु पंड्या बैठ गये और झोले में से सरौता सुपारी निकाल कर पान लगाने के लिए सुपारी कतरने लगे।

मणि को उस दिन ही कुछ-कुछ आभास हो गया था, भविष्य में आने वाले तूफ़ान की भयंकर गर्जना सुनाई देने लगी थी। इस समय गर्जन के साथ वर्षा भी प्रारम्भ हो गई और उसकी छोटी-सी सुख स्वप्नों की झोंपड़ी उसी में टूट-फूटकर गिरने और बहने लगी।

जब उस पर दुःख के पहाड़ टूट रहे थे तभी से उसका हृदय वज्र सदृश कठोर हो गया था। उसकी लालसा मिट चली थी। गत मास ने भूतकाल पर पर्दा डाल दिया था और हृदय की कठिनता वासना की निष्ठुरता अदृश्य हो गई थी। प्राकृतिक कोमलता आने लगी थी कि फिर आघात होने लगे। पहले साहस से उसने दुःख सहन किया था वह साहस उस में अब है या नहीं इसमें भी मणि को संशय होने लगा।

वह जिस घटने वाली घटना का विचार करके, डर से मुचकुन्द से पहले ही यहां रहने में अपनी अस्वीकृति प्रकट कर रही थी; उसका वह विचार, वह भय आज सच निकला। उसका दुर्भाग्य अभी पीछा नहीं छोड़ रहा है इसका उसे विश्वास हो गया। किस लिए वह मुचकुन्द के साथ रही? किस लिए उसके निर्दोष, पवित्र, विद्वत्तापूर्ण जीवन को कलंकित किया? उस समय भी भाग जाने का विचार उठा। किसी का जीवन नष्ट होने से बचाने के सामने वचन-पालन करना क्या अधिक महत्व रखता है? वह भोजन बनाना छोड़कर उठ खड़ी हुई।

'पंड्या जी! मेरे ही कारण तो आपको तथा आपके पुत्र को ये सब दुर्वचन सहने पड़ रहे हैं?'

'नहीं तो किसके कारण?' पंड्या जी ने प्रश्न से ही उत्तर दिया।

'यदि आप ऐसा ही समझते हैं तो मुचकुन्द भाई से मेरा प्रणाम कहियेगा, मैं जाती हूं।' कहकर मणि जाने की तैयारी करने लगी।

पाणु पंड्या इस स्त्री को हल्की निगाह से देखने लगे थे पर उसका यह अचानक निर्णय देख उन्हें जरा अचम्भा हुआ।

'मुचकुन्द कब आयेगा ?'

'अब आते ही होंगे।' कहकर मणि अपना छोटा ट्रंक तैयार करने लगी।

पाणु पंड्या को जरा दया आ गई, कोई सगा सम्बन्धी नहीं है तब जायगी कहाँ ?'

'इस समय यह प्रश्न मेरे सामने नहीं है ?'

'अच्छा ! और कुछ कहना है ?' इतनी सरलता से विजय प्राप्त होते देख आह्लादित होते हुए पंड्या जी ने पूछा।

'कह दीजियेगा कि भेंट नहीं कर सकी, इसके लिए क्षमा कर दें।' मणि ने अपना छोटा ट्रंक उठाते हुए कहा।

: ६ :

'किससे भेंट नहीं किया ?' पूछते हुए मुचकुन्द भीतर घुसा और ट्रंक उठाकर जाने के लिए प्रस्तुत मणि और बैठे हुए अपने पिता को देखकर वह चौंक उठा। पाणु पंड्या का आह्लाद दुःख में बदल गया। मणि अस्थिर चित्त से खड़ी रही। 'ओह ! पिता जी आप यहाँ कब आए ?'

'कोई बिना काम भी आता है ? चल बेटी ! चलती बन !'

'कहाँ चलती बने ? यह है क्या ?' मुचकुन्द ने पूछा।

'मैंने आपसे क्या कहा था ? मेरे कारण यदि आप पर कोई विपद आयेगी तो मैं चली जाऊँगी। अब मैं जाती हूँ।' मणि ने कहा।

'परन्तु मेरे सिर पर कौन-सी विपत्ति आ गई ?'

'विपत्ति !' पाणु पंड्या ने गरज कर कहा, 'तुम्हारे विचार से तो यह सब खेल है, क्यों ? तुझे खबर है कि लोग क्या-क्या कह रहे हैं ! कैसा धिक्कार

रहे हैं—मेरे शुभ्र यश और कीर्ति पर कालिख पुतने का समय आ गया है। वृद्धावस्थाम् आगतोऽपि !'

'किस बात से ?'

'तेरी इस रास-लीला से ! इस स्त्री को तूने घर में क्यों रखा ? अपने गाँव में तू क्या जाने जो जिसके मुंह में आता है कह रहा है।' पाणु पंड्या ने कहा।

'उन लोगों को और दूसरा धन्धा ही क्या है ? जहाँ-तहाँ दूसरे की चुगली करना।'

'पंच तो परमेश्वर है !'

'पर पंच हैं कैसे—निठल्ले, आलसी, दुष्ट। ऐसे लोग जो जी में आवे कहें, इससे मुझे क्या ?'

'तब क्या लोक-विरुद्धम् ? धिग् मूर्ख ! अपने बाप-दादा के नाम पर पानी फेरना चाहता है ?'

'पिताजी इस बकझक का मतलब क्या है ? मेरा अपराध क्या है ? मेरा क्या दोष है ? एक आधारहीन अबला को आश्रय दे दिया तो इसमें कौन-सा घोर पाप हो गया ? लोगों के जैसे विचार होते हैं वैसा ही तर्क करते हैं। जो शुद्धता को नहीं जानता वह शुद्धता पर प्राण कैसे अर्पण कर सकता है ?'

'अरे ओ शुद्धता की पूंछ ! अपनी पुस्तकों के लम्बे कीड़ों को जरा अलग धर दे। तेरी यह दलील नहीं चलेगी।'

'क्या नहीं चलेगी ?'

'इस स्त्री को रखना। तू बड़ा संत हो तो हो, पर लोकलाज···'

'लोकलाज की मुझे परवाह नहीं है।'

'तुझे परवाह है किसकी ? छोकड़ा ! नराधम ! जरा मुंह संभाल कर बोल। मेरे सामने इस प्रकार बोलता है ! कहाँ गया तेरा शिष्टाचार ? तू ब्राह्मण-पुत्र है ! धिक्कार है तुझे !'

'पिताजी ! मैं ब्राह्मण-पुत्र हूं, इसी से कहता हूं। लोकलाज की प्रणाली भले ही टूट जाय लेकिन मैं तो करूंगा अपने मन की।'

'अपने मन की करेगा !···तू···तू देखता हूं कैसे करता है !'

पिता और पुत्र एक दूसरे की ओर क्षण भर देखते रहे। दोनों की आँखों का दृढ़ तेज प्राचीन योद्धाओं की तलवार के समान टकराया। एक दूसरे में कितना पानी है इसका अनुमान लगाने के लिए दोनों खड़े हो गये। पाण्डु पंड्या ने पहली बार पुत्र का यह रूप देखा। सदैव मुचकुन्द उसे सीधा, आज्ञा-पालक बुद्धिमान और भला लड़का लगता था। आज मालूम हुआ कि वह भी टक्कर ले सकता है। एक पुरानी कहावत वह हमेशा मुचकुन्द को सुनाया करता था, 'रोटी खाना शक्कर से और दुनिया जीतना टक्कर से!' आज अपने पुत्र में यह कहावत पूर्णरूपेण चरितार्थ होती हुई दिखाई दी।

मुचकुन्द सदैव पिता के साथ नम्रता का व्यवहार करता था। वह लज्जालु था, गम्भीर था; इस समय भी झगड़ने की आकांक्षा उसकी कतई नहीं थी। शिक्षा ने जिन संस्कारों की सृष्टि उसमें की थी उन पर आज कुठाराघात हो रहा था, जिससे जान अनजान में संस्कार तर्क-वितर्क करने के लिए उसे बाध्य कर रहे थे।

पाण्डु पंड्या ने क्रोध के प्रवाह को रोका, जरा साँस ली। उसने मणि पर दृष्टि डाली। वह किसी काम से भीतर चली गई थी। वृद्ध ने धीरे से पूछा—'तेरा क्या जाता है जो बेकार झगड़ा मोल ले रहा है? निकाल दे न अभी। जान-पहिचान वालों को जरा शान्त तो हो जाने दे!'

'किन्तु मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया है जो जाति वालों को पंचायत करने की आवश्यकता आ पड़ी।'

'तूने इसे रक्खा इससे लोग कहते हैं कि इसके दो-चार लड़के भी हैं।' धीरे से दाँत पीसते हुए पंड्याजी ने कहा।

सच्चा निर्दोषी मुचकुन्द बड़ी-बड़ी आँखें निकाल कर घूरने लगा। उसकी मुट्ठियाँ बँध गईं।

'और भी कुछ?'

'इतना ही क्या कम है? बुद्धिमान है तो इस लत को छोड़ दे।'

'मैं आपसे एक बार तो कह चुका हूँ कि मूर्खों को प्रसन्न करने के लिए मैं कुछ नहीं कर सकता।'

'बेटा! मेरा भी कहना नहीं मानेगा?'

'और सब बातें मैं मानता हूँ और मानूंगा भी, परन्तु इसमें नहीं।'

'पर जब वह जाने से लिए राजी है तो जाने दे न ? कौन है, कौन नहीं। तू तो उच्चकुलोत्पन्न है !'

'मैं जानता हूँ, वह एक निराधार विधवा है।'

'ऐं !' कहकर पारणु पंड्या उठ खड़े हुए।

'हाँ अत्याचार से सताई जाने पर घर से निकलकर वह दर-दर भटकती फिरती रही, उसे मैंने अपने यहाँ रहने का स्थान दे दिया तो यह क्या मैंने घोर पाप कर डाला ? उसका पिता क्यों चौंक कर खड़ा हो गया, इस पर लक्ष्य न कर अपना बचाव करते हुए मुचकुन्द ने कहा।

'तू विधवा को घर में रखे हुए है ? शान्तम् पापम् छोकरे ! पिशाच ! नराधम !' वृद्ध क्रोध से चिंघाड़ कर बोला, 'मेरे कुल का आर्यत्व तूने भ्रष्ट कर डाला। अब समझ में आया, तू सुधारक हो गया है !'

'पिताजी ! शान्त होइये मिजाज बिगाड़ने से क्या लाभ है ?'

पंड्याजी की चिंघाड़ सुनकर मणि फिर बाहर निकल आई।

'जा······जा ! अनार्य ! मेरी इकहत्तर पीढ़ियों को तूने नरक में डाल दिया। बोल, इसे घर से निकालता है या नहीं ?'

हठ, क्रोध एवं आग्रह से मुचकुन्द दाँत पीसने लगा। इस अनुचित क्रोध से उसका हृदय धधकने लगा। उसके सरल स्वभाव में कठोरता आ गई।

'नहीं। आप शांति से ······।'

'शांति ? अब शांति ? तू क्या करना चाहता है, मैं समझ गया ! तू विधवा से विवाह करना चाहता है।' वृद्ध ने जो कुछ समझा था, उसे स्पष्ट कह दिया।

'मेरी दृष्टि में जो उचित जंचेगा वही करूँगा। आपके इस प्रकार कहने से नहीं मानूंगा।'

'तू नहीं मानेगा ? तो बेटा ! तेरे नाम पर पानी ! तेरे नाम पर स्नान करता हूँ। आज से मैं तेरा पिता नहीं और तू पुत्र नहीं। धिक् कहकर पंड्याजी झोला उठाकर जाने के लिए उद्यत हुए।

'पर पिताजी···!'

'चल हराम'''! तेरे घर में पल भर भी नहीं रहूँगा। पापिष्ठ !' कहकर पैर पटकते हुए लकड़ी लेकर पंड्याजी वहाँ से चलते बने । क्रोध में, घबड़ाहट में क्या करना चाहिये, यह न समझ पड़ने से मुचकुन्द हतप्रभ-सा खड़ा रहा । उसका पिता इस प्रकार क्रोधित हो जायगा इसका उसने स्वप्न में भी अनुमान नहीं किया था ।

मुचकुन्द के स्वभाव में दो बातों की प्रधानता थी । एक तो सत्य हो उसे ग्रहण करने की उत्कण्ठा और किसी को दुःख न पहुँचे, इसकी चिंता । वर्त्तमान शिक्षा से उत्पन्न कर्त्तव्य-दक्षता तथा हीनबुद्धि-प्रावल्य इन दोनों का ही उसमें आधिक्य था । इससे कर्त्तव्यपरायणता के कर्त्तव्यों पर विचार करने की आवश्य-कता प्रतीत होती थी । किन्तु अनुभव प्राप्त करने की तत्परता न थी । आज ऐसे ही एक प्रसंग का अनुभव तो हुआ परन्तु उसके समाप्त होते ही वह काँप उठा । उसने क्या कर डाला ? इसका परिणाम क्या होगा ? यह अच्छा हुआ या बुरा ! यह प्रश्न एक के बाद एक उसके मस्तिष्क को झंझोड़ने लगे; उसमें उलझन पैदा करने लगे ।

पन्द्रह मिनट तक विचार के जंगल में बैठे रहने के पश्चात् उसे ज्ञान हुआ । पिता को भुला कर उसका ध्यान मणि की ओर गया । उसने विधवा-विवाह की बात स्वीकार की थी । जल्दी में अविचार से ऐसा करने की इच्छा भी प्रदर्शित की थी । मणि जिसे वह बहन के समान समझता था, जिसे बहन के समान समझने का वचन दिया था, वह इस उद्गार से क्या कहेगी ? उसके समाने अब वह सिर ऊँचा करने कैसे देख सकेगा ? यह शब्द उसके मुँह से निकल कैसे गये ? उसकी व्याकुलता और भी बढ़ गई । बाप को निकाल बाहर किया, घर में रहने वाली को उसने फँसाया । अपने हाथ पर रखे हुए सिर तक को वह ऊँचा नहीं उठा सका ।

थोड़ी देर में मणि ने उसके कन्धे पर हाथ रखा । उसे ऐसा प्रतीत हुआ जैसे किसी ने कोड़ा मारा हो । उसने चौंक कर ऊपर देखा ।

मणि खड़ी थी, उसकी आँखें डबडबाई हुई थीं ।

: १० :

'भाई ! उठो। क्या आज काम पर नहीं जाना है ? भोजन ठंडा हो जायगा।' मणि ने कहा।

'भाड़ में जाय काम और भोजन ! अब क्या होगा ?' मुचकुन्द ने पूछा।

'मैंने तो आपसे पहले ही कहा था मेरे पैर में तो शनिश्चर है। जहाँ जाती हूँ वहीं ऐसा होता है। भाई ! मेरी एक बात मानो।' मणि की आँखों से आंसू गिरने लगे।

'क्या ?'

'आपके पिता जी ठीक कह रहे थे। मेरे कारण जीवन नष्ट करने से क्या लाभ है ? सगे-सम्बन्धियों को दुःख देने से दुःख ही उपजेगा ! मुझे अपने रास्ते जाने दीजिये। आपकी कृपा से दो रोटी कमा कर खा लेती हूं। एक बार पहले भी मैंने आपसे कहा था और आज फिर कहती हूँ। आपको संसार का अनुभव नहीं है।'

'क्या होगा संसार का अनुभव करके ?' कुछ न समझते हुए मुचकुन्द ने कहा।

'पिता ने छोड़ा, जाति वाले और सगे सम्बन्धी भी छोड़ देंगे। बाहर समाचार फैल जाने पर दूसरे व्यक्ति भी छोड़ देंगे। सम्पूर्ण जीवन नष्ट हो जायगा। यह सब किसके लिए ? किसके लिए ?'

'मुचकुन्द 'तुम्हारे लिए' कहने जा रहा था लेकिन रुक गया। उसे अविचार में मुंह से निकली हुई विधवा-विवाह की बात याद आ गई।

'बहन ! तुझे पता है ? आज तक की शिक्षा के अभ्यास से चरित्रवान बनने का प्रयत्न किया। न्याय, नीति, स्वातन्त्रता एवं साहस के आदर्शों को पढ़ा और उनका अनुसरण करने के लिए तरसता रहा। उनके अनुसरण करने का यही तो मुझे आज पहला अवसर मिला है।'

'मुझे रखकर ?'

'हाँ, और दुनिया के सामने खड़े होकर। यदि मैं पीछे हट गया तो आदर्श ही कहाँ रह जायगा ? मेरे साहस की परीक्षा कैसे होगी ?'

'भाई, पढ़ी लिखी नहीं हूं पर इतना तो जानती हूं कि संसार के साथ सब लोग युद्ध करते हैं और अन्त में हारना ही पड़ता है।'

'क्या कोई विजयी नहीं हुआ है ! क्या बात करती हो ?'

'शायद ही कोई विजयी होता ! मैंने तो देखा नहीं किन्तु जितना लड़ेंगे उतना ही पीछे पछताना पड़ेगा। आपने आज प्रत्यक्ष प्रमाण देख लिया न ! अभी भी समझकर यह हठ छोड़िये। इस प्रकार हम कब तक रह सकते हैं ? जाकर अपने पिताजी को समझाइये। वे मान जायेंगे।'

मणि ने अत्यन्त विनीत भाव व नम्रतासे कहा। आज उसका हृदय निर्दोष और उच्च भावना से ओतप्रोत मुचकुन्द को देखकर भर आया था। उसकी उच्च भावना देखकर वह चकित हो गई; किन्तु स्वप्नवत् उच्च भावना रूपी प्रकाश पर पतंगे के समान जल मरने के लिए प्रस्तुत मुचकुन्द को बचाने के लिए वह व्याकुल हो रही थी। आज तक किसी मनुष्य ने उसके लिए ऐसा स्नेह प्रदर्शित नहीं किया था। आज उसका विशुद्ध प्रेम इस व्यक्ति के लिए उमड़ रहा था।

मणि द्वारा दी गई शिक्षा को मानों उनने स्वीकार कर लिया हो, इस प्रकार पराजित सा मुचकुन्द उठा। कुछ देर खड़ा रहा; फिर अत्यन्त निराशा से अपना सिर पीट कर वह बोला—'अर्थात् अपने आदर्श···आदर्श···!

'किसी का रहा है जो आप का रहेगा ?' मणि ने कहा।

'सब उच्च चारित्र्य, दृढ़ साहस, निःस्वार्थ जीवन यह सब स्वप्न हैं; असत्य है; और सत्य यह है कि मूर्खों को रिझावें, उनकी कही हुई बात का पालन करें। उसी के अनुसार आचरण करें और जिसे वे वर्जित कर दें उसे त्याग दें ! पढ़ लिख कर यह अधःपतन ! हा भगवान !'

'भाई ! यह नयी बात नहीं है !'

'क्यों ?'

'यही हम सबके जीवन की कहानी है। मुझे इसी का अनुभव हुआ है; किन्तु वह हुआ पन्द्रह वर्ष में और आज आपको हो रहा है पच्चीस वर्ष में; इससे आप भाग्यवान हैं !' मणि ने कम्पित स्वर में अपने भूतकालिक जीवन को स्मरण करके कहा।

'मेरा साहस बस इतना ही है कि पहले आघात में समाप्ति !' नीचा सिर कर मुचकुन्द ने इस प्रकार कहा मानों वह स्वयं अपने को ही सम्बोधन कर रहा हो।

मणि ने कोई उत्तर नहीं दिया

'अच्छी बात है; मैं भी देख लूंगा।' दांत पीस कर ऊपर देखते हुए मुचकुन्द ने कहा।

'क्या देखियेगा ?'

'यही क्या होता है ? मैं अपने आदर्श को कभी नहीं छोड़ूंगा।'

'नहीं, नहीं। ऐसी भूल मत कीजिएगा, जीवन भर पछता कर रहना पड़ेगा।'

'जीवन की भावना यदि सुरक्षित रखी जा सके तो पछताना किस बात का ?'

'भाई ! भाई ! अभी आपने पढ़ा है किन्तु गुना नहीं है। ऐसा मत करो, मैं नहीं करने दूंगी।' प्रभुतासूचक स्वर में मणि ने कहा।

'क्यों ? तू न करने देने वाली है कौन ?'

'अच्छी बात है, मैं चली जाऊँगी; होली के नारियल के समान आपको भस्मीभूत होने देने के पहले मैं अपनी आहुति दे दूंगी।'

'इसमें तुम्हारा क्या जाता है ?'

'मेरे ही कारण से तो यह सब हो रहा है। मैं स्वतन्त्र हूँ मेरे लिए कोई भी बाधा नहीं है, मैं ही जाती हूँ।' कह कर मणि जाने के लिए उद्यत हुई।

'नहीं-नहीं, यह क्या कर रही हो ?'

'तब क्या करूँ ?' थोड़ी दूर पर पड़े हुई ट्रंक को उठाने का प्रयत्न करते हुए मणि ने कहा। उसका जी भी दुःखी हो गया और इस दुःखद प्रसंग का शीघ्र अन्त कर देने का उसने निश्चय कर लिया।

'जा, तू भी जा !' कह कर मुचकुन्द भी व्याकुल होकर फिर कुर्सी पर धम से बैठ गया। ये शब्द कुछ ऐसे निराशापूर्ण थे कि मणि पीछे लौट पड़ी परन्तु उससे कुछ बोला नहीं गया। 'पराये की आशा सदा निराशा' कहकर कमजोर मतवाले मुचकुन्द ने फिर सिर पीट लिया। उसकी आँखें डबडबा आईं।

मणि उस निराशा की मूर्ति को देखती रही । उसके आक्रन्द शब्दों में छिपे उसके अनुताप को मणि समझ गई । 'पराये' शब्द से उसे भी धक्का लगा ।

'तब मैं क्या करूँ ? आपके भविष्य का विचार करूँ, या आपकी भावनाओं का ?' मणि ने पूछा ।

'भावना बिना भविष्य किस काम का ?'

'भाई मेरे रहने से तुम्हारा भविष्य भी नष्ट होगा और भावना भी नष्ट होगी ।'

'तुम्हारे जाने पर भावना किसके लिए ?' अनजाने ही मुचकुन्द की जबान से निकल गया, 'बहुत ठीक मैं भूल गया कि एक मास पूर्व मैं तुम्हें जानता भी न था । तू मेरी सगी नहीं, सम्बन्धी नहीं । मैं भूल गया कि तेरे जीवन में मेरा कोई स्थान नहीं है ।'

मणि की आँखों से झर-झर आँसू बहने लगे । उसने ट्रंक रख दिया । वह पास आ गई । अनेकानेक दुःखों को लगातार झेलते रहने से उसका शरीर अभ्यस्त था किन्तु मुचकुन्द की व्याकुलता देख कर वह भी अधीर हो उठी ।

'मुचकुन्द भाई ! परमेश्वर के लिए ऐसा न कहो । मैं जा रही हूँ आपके भले के लिए !'

'मेरी परवाह हो तो रहो, अन्यथा चली जाओ । दुःख के दिनों में पराये को पास में नहीं रहना चाहिये ।'

'परवाह तो है, किन्तु रहने से लाभ क्या है ?'

'भावना के लिए सब का त्याग कर सकूँगा पर उसी समय जब तू रहेगी । अकेले कुछ नहीं हो सकता । मुझ में अकेले दुःख सहन करने की शक्ति नहीं है । तेरे आने के पहले मैं अकेला था, जो कुछ मैं आज हूँ उतनी ही शक्ति उस समय मुझमें नहीं थी । मेरा हृदय, मेरी बुद्धि आज विकसित है । तुम्हारे बिना मैं निर्बल, निकम्मा और निराधार हो जाऊँगा ।'

मणि और भी पास आ गई । इस आवेश से उसका हृदय भी जोश से भर रहा था, उसकी आँखें भी तेज से चमकने लगी थीं ।

मेरे लिये आपके हृदय में ये भावनायें उत्पन्न हो रही हैं ? अपनी मीठी आवाज में अनजान में मोहक रसिकता का समावेश कर मणि ने पूछा ।

'मुझे पता नहीं।' उलझन में पड़ा मुचकुन्द बोला—'किन्तु दुःख के समय अकेले जीवन वहन नहीं कर सकूंगा। दुःख पड़ेगा तो सहन करूंगा, आघात लगेगा तो सह लूंगा परन्तु उसी समय जब तुम यहां मेरे निकट रहोगी। मणि बहन! बुरा लगे तो क्षमा करना। यदि इस प्रकार न रह सको, यदि पिताजी जैसे लोगों के वचन चुभते हों, यदि तुम्हें कलंक का अंदेशा हो तो चलो हम दोनों विवाह कर लें। पिताजी के मुंह पर तो मैंने हठवश कह दिया था परन्तु तुमसे मैं सचमुच कहता हूं।'

दोनों हाथ टेबुल पर रख कर उसी के सहारे झुक कर मणि खड़ी होगई। उसका हृदय भर आया, रोने से हिचकियां बंध गईं। बहुत देर तक उसके मुंह से एक शब्द भी नहीं निकल सका। अनुमान हुआ कि अपनी इच्छा से नहीं बल्कि उसे कलंक से बचाने के लिए मुचकुन्द इस मार्ग का अवलम्बन कर रहा है। इस निर्मल, निर्दोष, रीति से यह योजना सम्मुख रखने वाले महान् पुरुष की ओर वह श्रद्धा से देखने लगी। जरा स्वस्थ होने पर अश्रु-पूर्ण आवाज से वह बोली—'भाई? क्यों वासना को उत्तेजना देते हो? क्यों कलंकित करते हो? नहीं बोलती इसलिये दोषी मत ठहराना। मेरा हृदय बिलकुल मर गया है। इस अभागिनी बाला के भाग्य से आपसे भेंट होगी, इसे किसने सोचा था? मैं भटकती-भटकती थक गई। अन्त में देवता-सदृश आप मिले लेकिन उस समय जब मेरी समस्त भावनायें नष्ट हो चुकीं, कामनायें कुचल डाली गईं। आप विवाह करने के लिए कह रहे हैं? एक समय देव कहे जाने वाले पत्थरों से भी विनती कर मैं थक गई कि कोई मेरा पाणिग्रहण करे; कोई मुझ पतित से विवाह कर मुझे पावन करे। उनकी दासी होने के लिये तैयार थी लेकिन उन दोनों ने स्वीकार नहीं किया। आज आप विवाह करने के लिए कह रहे हैं? परन्तु कौन-सा मुंह लेकर मैं स्वीकार करूं? आप मेरे लिए ईश्वर के समान हैं। आपके भाव आदर्श योगियों जैसे हैं, आपका आचरण देवों जैसा है। कहिये तो आपकी पाद-पूजा करूं; विवाह तो नहीं कर सकती।'

'क्यों?'

'नहीं नहीं। आपके निर्मल जीवन-प्रवाह में अपने कलंक का कीचड़ उछाल

कर उसे गन्दा नहीं कर सकती ।

'कलंक ?'

'भाई ?' कलंक का एक भी ऐसा रंग नहीं है जो मेरे अंग में न लगा हो। मैं आपको कलंकित कर रही हूँ—आपके अधःपतन का कारण बन रही हूँ—'मणि रुक गई, उसका हृदय भर आया था ।

मुचकुन्द मौन धारण कर उसकी ओर देखता रहा। कुछ देर बाद बोला—'मणि ! देखो यह बात जाने दे तेरे बिना मेरा जीवन-निर्वाह होना असम्भव है। तुझे खबर है कि तेरे आने के पहले मैं शुष्क विद्याभ्यासी था। तेरे प्रफुल्लित तेजस्वी व्यक्तित्व ने मुझे मनुष्य बना दिया है। मेरे जीवन में नये रस का संचार हो गया है। काव्य में, संसार में, भावनाओं में, नया ही रंग दृष्टिगत होता है; मेरी बुद्धि में, कल्पना में अदृष्ट रत्न दिखाई देते हैं। तुझे कैसे जाने दूं ? देख, यदि मेरे लिये तेरे हृदय में तनिक भी दया ममता हो तो मत जा। एक साथ ही दुनिया का—दुःख का सम्मान करेंगे, नहीं तो साथ ही मर मिटेंगे।'

कहकर मुचकुन्द याचक वृत्ति से, दीन दृष्टि से मणि की ओर देखने लगा। मणि के हाथ पर हाथ रख कर उसने दबाया और दबाता ही गया।

'भाई ! यदि ऐसा है तो लो मैं हाजिर हूं। जैसे हम अब तक रहते आये हैं वैसे ही रहेंगे।'

'तूने मुझे बचा लिया, मैं बड़ा कृतज्ञ हूं। मुझे और कुछ नहीं चाहिए।'

'अच्छा तो उठो अब आज का भोजन तो पानी हो गया।'

: ११ :

बहुत सोच-विचार के बाद धीरे-धीरे मुचकुन्द के ऑफिस जाने के बाद भी मणि की विचार-धारा नहीं टूटी। अनेक वर्षों से पाप पंक में लिपटे हुए हृदय को निर्मल रस-तरंग में स्नान कराने का आनन्द भला किसे अमूल्य मालूम नहीं

होगा ? सीता की अग्नि-परीक्षा के सदृश रस-तरंग का स्नान पुनर्जीवन देता है। पुराने मैल को काट कर भूतकाल के कलंक को दूर करता है। मणि ने आज वही अग्नि-स्नान किया था।

बाल-विधवा होने के कारण उसने कभी कुटुम्ब-वात्सल्य का अनुभव नहीं किया था, हमारे संसार के निम्न स्तर का भी पति-प्रेम उसे प्राप्त नहीं हुआ था। युवावस्था के तूफ़ान पर चढ़े हुए सागर के बीचड़, मनुष्य प्राणियों की अशान्त, अरसिक क्रीड़ा को मर्यादा का त्याग करते हुए, मर्यादा का त्याग करने के पश्चात् पतन का नृत्य करते हुए उसने देखा था, और अन्त में प्रलय की समाप्ति पर उसी प्रलय से उत्पन्न भयंकर परिणाम को देख कर रुदन करते हुए अथवा उससे युद्ध करते हुए ही आज तक उसने जीवन व्यतीत किया था। अम्बामाता के लिये बलि चढ़ाये जाने वाले बकरे की पीड़ा वह जानती थी, पीड़ित बन्दी के त्रास और रुदन को वह जानती थी, चोरी से छुप-छिपकर घूमने वाले विषयी की वासना का भी पूर्ण अनुभव था, अन्याय और अत्याचार के नीचे रौंदे जाने वाले निरपराधी बलवाइयों का भयंकर रोष भी उसके लिये स्वाभाविक हो गया था किन्तु निर्मल स्नेह की आर्द्रता को अब से पूर्व उसने निरखा नहीं था, विषय-वासना से उत्पन्न मोह-रहित सम्बन्ध उसने नहीं देखा था, उसने मीठे, मनोहर प्रसंग, उसके अपूर्व कलंकहीन उत्साह का उसने अनुभव ही नहीं किया था। आज उन्हें उसने देखा, अनुभव किया। हृदय में छिपे हुए गोलार्ध की वह शोधक बनी। जो हर्ष कोलम्बस को अमेरिका की शोध कर लेने के पश्चात् हुआ उससे कहीं अधिक आज उसे हुआ।

वह बहुत देर तक मौन धारण करके एक ही स्थान पर बैठी रही। अपने शब्द और मुचकुन्द के शब्द उसके कान में में गूंजते रहे। मुचकुन्द के प्रत्येक शब्द की झंकार, उसके प्रत्येक दृष्टि-निक्षेप ने उसके स्मरण पट पर स्वर्ण रेखायें चित्रित कर दी थीं। आज बैठी हुई वह इन चित्रों में अनेक प्रकार के रंग भर रही थी। शीतकाल, कड़कड़ाते हुए ठंड में सूर्य-किरण प्रखर होकर जैसी शांति दायी होती हैं वैसी ही शान्ति का अनुभव उसके जलते हुए हृदय में होने लगा। मुचकुन्द पहले केवल प्रकाश करने वाला दीपक था आज अपने साहस से उसका जीवन दाता सूर्यनारायण हो गया।

सद्भाव से मुचकुन्द के पवित्र उत्साह ने उस पर भी अपना प्रभाव डाला। विषय-वासना, विवाह की कामना ये सब लालसायें जरा भी उसके मन में नहीं आई । उसके विगत सांसारिक अनुभव और वर्तमान मानसिक स्थिति के बीच में आवरण पड़ गया । वह भी मुचकुन्द के समान अनुभवहीन सरलता से दुनिया का विचार करने लगी ।

सुनहरी स्वप्न-सृष्टि में भ्रमण करते हुए समय बड़ी तेजी से व्यतीत होने लगा । सन्ध्या हो गई । मुचकुन्द आज अभी तक नहीं आया । उसके आने में देर हुई, मणि का हृदय धड़कने लगा । उसने उस छोटे से कमरे को सुघड़ता से सजाया । उसके दुःखी हृदय को किसी प्रकार की पीड़ा न पहुँचने पाये इस-लिए प्रत्येक छोटी से छोटी वस्तु, पुस्तक आदि सबको यथास्थान सजा रखा । उसके कागज-पत्रों को बार-बार नये-नये ढंग से सजाया । ज्यों-ज्यों मुचकुन्द के आने में देर होने लगी त्यों-त्यों उसकी घबड़ाहट बढ़ने लगी । मन में यह भी विचार आया कि क्रुद्ध पंड्याजी धीरे-धीरे प्रसन्न हो जायेंगे और जीवन का मार्ग सरल हो जायेगा ।

सात बज गये । वह बार-बार बरामदे में जाकर देखने लगी । अभी मुचकुन्द के आने का समय न होने पर भी उसे चिन्ता होने लगी और वह बार-बार देखती । साढ़े सात बजे किन्तु मुचकुन्द नहीं आया । उसकी काल्पनिक चिन्ता सत्य होने लगी । आठ बजे और वह कांपने लगी, शंकाओं के विशाल दैत्य सामने खड़े होने लगे और किसी प्रकार भी वे दूर न हो सके, क्षण-प्रतिक्षण वह अधिकाधिक अधीर होती गई । आखिर सीढ़ी पर दो-चार आदमियों के चढ़ने की आवाज सुनाई दी, उसके जी में जी आया । वह सांस बन्द कर एकाग्रता से दरवाजे की ओर देखती हुई खड़ी रही ।

'आप यहाँ खड़े रहें, मैं दस मिनट में आता हूँ ।'

मुचकुन्द को किसी से कहते हुए सुना । परन्तु उसकी आवाज में इतना अन्तर क्यों ? मणि का हृदय फटने लगा । यह भय दूसरे ही क्षण सच निकला । मुचकुन्द की आकृति कांतिहीन और आँखें निकली हुई प्रतीत होती थीं, उसका अंग-प्रत्यंग कांप रहा था । वह आया और 'मणि !' मणि बहन ! कहकर कुर्सी पर बैठ गया ।

'क्यों भाई ? यह क्या ?'

'क्यों क्या ? मुझे पुलिस ने पकड़ लिया है।'

'एं !' मणि ने घबरा कर कहा।

'हां पिताजी की कारगुजारी ! मेरे मालिक मेरे दूर के रिश्तेदार लगते हैं। पिताजी उनके पास जा पहुंचे होंगे। तीसरे पहर सेठ ने बुला कर मुझे डराया धमकाया, नौकरी छुड़ा देने की धमकी दी, पर मैंने इसकी कुछ भी परवाह न की।'

'पर कारण क्या है ?'

'कारण क्या, यही कि तुम्हें छोड़ कर जिस लड़की के साथ पिताजी ने मेरा विवाह निश्चित किया है उसके साथ विवाह कर अपना जीवन व्यतीत करूं, मेरे अस्वीकार करने पर पहले वेतनवृद्धि कर देने का लालच दिया और जब उस पर भी दाल न गली तो मुझे बरबाद कर देने की धमकी दी।'

'आपने क्या कहा ?' मणि के सब सुख-स्वप्न टूट गये और दुनिया की क्रूरता का दृश्य फिर उसकी आंखों के सामने नाचने लगा, जिससे उसका जी व्याकुल हो उठा।

'मैंने ? तुमने समझ क्या रखा है। मैंने साफ कह दिया कि आप मेरे स्वामी हैं, मेरी तन सेवा के मालिक हैं, मेरे मन के मालिक नहीं हैं। यह कह कर मैंने उनके प्रस्ताव को अस्वीकार कर दिया।'

'भाई ! यह आपने क्या किया ?'

'वह सब क्या जानें ? संसार में केवल पैसा और अत्याचार की ही क्या प्रभुता रहेगी ? संध्या समय टेलीफोन कर अपने जान पहचान के एक पुलिस सुपरिटेण्डेन्ट को सेठ ने बुलाया, उसी ने मुझे अपनी हिरासत में ले लिया है।'

'हाय, हाय ! अब क्या होगा ? आप ऐसी हठ क्यों कर रहे हैं ?'

'हठ नहीं है ! जो भाग्य में बदा है वह होगा। अब तो अपने सिद्धान्तों पर दृढ़ रहने की बात है। मुझे तुमसे मिलना था इससे बहाना निकाल कर चला आया।'

'क्या !'

'मैंने उनसे कहा है कि तुमसे सलाह करके जवाब दूंगा इससे मुझे यहां

आने दिया गया है।'

'मेरी तो राय है कि अब इस प्रकार के दुस्साहस का समय नहीं है। मुझे जाने दीजिये, मैंने भी निश्चय कर'''मणि आगे न बोल सकी।

'पर मेरा भी निश्चय सुनोगी या नहीं ?' मुचकुन्द ने पूछा।

'क्या ?'

'मेरा सब कुछ चला गया, मेरी आशा गई, पढ़ाई गई, सम्बन्धी छूटे'''' मुचकुन्द का गला बोलते-बोलते भर गया। इस विनाश के विचार मात्र से उसका हृदय उमड़ आया, 'परन्तु मैं अपना निश्चय बताने आया हूं कि मेरा कोई अपराध तो है नहीं जिससे दण्ड मिले। शीघ्र ही मैं लौटूंगा, और यदि दण्ड मिला भी तो वह बहुत थोड़ा होगा छः मास या एक वर्ष। इसके बाद लौट कर आऊंगा ही। घबराना मत !' मुचकुन्द एक सांस में कह गया।

'नहीं भाई ! नहीं'''

'नहीं कहने की जरूरत नहीं है। थाने में बैठ कर मैंने सब कुछ अच्छी तरह सोच-विचार किया है।

'अरे ! किन्तु कैद'''।'

'जो भी हो, मैं जाता हूँ। मैं इस अत्याचार से पराजित नहीं होऊँगा। अच्छा जाता हूं; हिम्मत रखना।' कहकर मुचकुन्द जाने लगा। उसकी आँखें डबडबा आईं। मणि भी रोने लगी परन्तु दुःख के साथ उसकी गाढ़ी मैत्री थी जिससे अपने पराने मित्र के आकर खड़े हो जाने पर उसे अधिक व्यग्रता नहीं होती थी, उसकी बुद्धि यथावत् कुशाग्र एवं सतेज रहती। उसने पूछा— 'आपके सेठ का नाम चन्दूलाल है न ?'

'हाँ, क्यों ?'

'कहाँ रहते हैं ?'

'भुलेश्वर में''''''महाल के पास।' कहकर मुचकुन्द चला गया। जाते-जाते दोनों की आँखों ने फिर विदाई ली।

महाल का नाम सुन कर मणि चौंक उठी। मणिकर्णिका द्वारा दिया हुआ उसकी बहन का पता याद आया : इस समय मणि घबरा कर बिलकुल चेतना-हीन नहीं हो गई थी। उसने देखा कि मुचकुन्द बिलकुल सीधा-सादा है।

पुस्तकों में पढ़े आदर्शों के पीछे जीवन की आहुति देने के लिए प्रस्तुत है; इस कैद के भयंकर दुष्ट परिणाम का ज्ञान उसे नहीं है। ऐसे उदीयमान और चतुर युवक के जीवन को एसी मूर्खता की देवी पर बलि देने से भला क्या लाभ? वह भी किसके लिए? मेरे समान अकिंचना, कुटुम्ब-रहिता, कुल-कलंकिनी समझी जाने वाली स्त्री के लिए! उसमें निश्चयात्मक बुद्धि अधिक मात्रा में थी। तुरन्त कपड़े बदले और घर में ताला बन्द कर वह भुलेश्वर चली।

मुचकुन्द से जब पहले पहल उसने चन्दूलाल सेठ का नाम सुना था तब उसके मन में संदेह हुआ कि तुंगभद्रा के मकान पर आने वाले सज्जन यही तो नहीं हैं। पर ऐसे न जाने कितने चन्दूलाल बम्बई में होंगे ऐसा सोच कर पहले तो वह कुछ निश्चिन्त हो गई थी किन्तु जब उसने पता सुना तब उसे एक उपाय सूझा। मणिकर्णिका की बहन इसी पते पर रहने वाले चन्दूलाल सेठ की पत्नी थी। यदि ऐसा हुआ तो किसी प्रकार चन्दूलाल सेठ की पत्नी को मना कर उसे बीच में डालकर अपना मनोरथ सिद्ध करने का उसने संकल्प किया। इससे उसे कुछ ढारस बँधा।

: १२ :

चन्दूलाल सेठ का मकान तलाश करने में मणि को जरा विलम्ब हुआ और अन्त में मिल ही गया। वह उस मकान की अन्तिम मंजिल पर रहते थे। धड़कते हुए हृदय को कठिनता से शान्त कर उसने सेठानी कहाँ हैं पूछा। एक दरवाजे में से एक दुबली-पतली, कम आयु होते हुए भी बूढ़ी-सी लगती हुई स्त्री ने निकलकर पूछा—'आप कौन हैं? किसे चाहती हैं? सेठजी अभी घर में नहीं हैं।'

'मुझे आप ही के दर्शन करने थे, सेठजी से कोई काम नहीं है। आप ही सेठानी जी हैं न?'

इतने ही में एक पाँच छः वर्ष का बालक इस स्त्री का कपड़ा पकड़ कर

मुंह पर एक हाथ रखे हुए उसके पीछे-पीछे रोता हुआ आकर खड़ा हो गया। मणि ने उसे देखा। मणिकर्णिका की मुख आकृति से इस लड़के का चेहरा बहुत कुछ मिलता-जुलता लगा।

'जी हाँ, मैं ही हूँ। क्या काम है ?' जरा रईसी के दम्भ से कर्कश आवाज में सेठानी ने पूछा।

'मैं आपकी बहन की परिचिता हूँ।'

'श्रीमतीजी ! आप भूलती हैं। मेरे कोई बहन नहीं है ?

तनिक क्रोध से सेठानी ने कहा।

'यह आपका भान्जा है न ? मैं आपकी बहन का समाचार लाई हूँ।'

'मेरी बहन तो कभी की मर चुकी है। आप बेकार क्यों इस प्रकार झूठ बोल रही हैं ? आपको क्या चाहिए ?'

मणि ने समझ लिया कि सीधी उँगली से घी नहीं निकलेगा।

'तब आप जानिये ! मुझे तो आपकी बहन मावजी के यहाँ मिली थी। उसने...'

ऐं...ऐं !' यह नाम सुनकर सेठानी का रूप बदलने लगा और वह बिलकुल नम्र पड़ गई। 'भीतर आइये' वह बोली।

'मणि ने समझा कि अब वह सीधे तरीके से बात करेगी, किन्तु इतने ही में सीढ़ी पर किसी के चढ़ने की आवाज सुनाई दी और भीतर जाने के पहले ही वह व्यक्ति ऊपर आ गया। उस व्यक्ति को देखने के लिए मणि घूमी और उसे ऐसा जान पड़ा मानो उसका कंपित शरीर अभी ठंडा पड़ जायगा। उसके माथे पर पसीना चुहचुहाने लगा। आने वाला व्यक्ति तुंगभद्रा के यहाँ जाने वाला चन्दूलाल सेठ ही था—जिस व्यक्ति ने म्युनिसिपैलिटी के सदस्यों से कह कर, नौकरी तलाश कर उसे घर पर बुलाया था वह इस स्त्री का ही पति है, दो दिन पहले घर आने के निमंत्रण को ठुकरा दिया था और आज वही निर्लज्ज स्त्री की तरह उसके घर पर माथा टेक रही थी। भाग जाने की इच्छा हुई, उसे यह अधमता की परिसीमा प्रतीत होने लगी, पर मुचकुन्द के सरस दयापूर्ण तेजस्वी मुख की छवि उसके सामने आकर खड़ी हो गयी। उसे क्या वह दुःखी होने दे ? उसे बन्दी-गृह में जाने दे ? मुचकुन्द की चतुराई, उसकी

बड़ी-बड़ी आशाएँ, उसका भविष्य आदि का विचार पल मात्र में उसके स्मृति-पटल में दौड़ गया। साहसपूर्वक वह खड़ी रही। गम्भीरलाल और महात्मा महायोगी ने जिस भयंकर परिस्थिति में उसे डाल दिया था उसके समक्ष इसकी क्या बिसात !

मणि को देखकर सेठजी भी चौंके। हर्ष की किरण उनके चेहरे पर प्रकट हुई। आनन्द से काँपते हुए स्वर में उसने पूछा—'कौन ? पंडिताइनजी ! स्वयं आप ! कैसे कष्ट किया ?'

'जी हाँ, मैं आपसे मिलने आई हूँ।' जरा तिरस्कार से हँसकर मणि ने कहा।

'आइये ! बड़ी प्रसन्नता हुई। उस दिन जरा आप नाराज थीं।' कहकर सेठ अपनी स्त्री की तरफ गया। मणि को समझने में देर न लगी कि पति-पत्नी का सम्बन्ध एक दूसरे के साथ कैसा है। उसने धीरे से सेठानी से कहा—'बहिनजी, मैं सेठ जी से बातें करके आपसे मिलूंगी।'

सेठजी अपने ऐश आरम के साधनों से पूर्ण, सुसज्जित बैठक में गये। उसने बिजली के तीन-चार लट्टू जला दिये। कमरा चकाचौंध करने वाले प्रकाश से जगमगा उठा; एक पंखा भी खोल दिया और आराम कुर्सी पर बैठकर छोटी-सी पर सुन्दर कुर्सी अपने पास खींचते हुए, मणि से उस पर बैठने का संकेत किया।

मणि उस पर बैठ गई। सेठ की आतुर आँखें उसके मुख पर पड़ीं। उसने कहा—'कहिये ! आखिर हम लोग मिल ही गये !'

'भाग्य में मिलना ही बदा रहा होगा।'

'क्यों, मुझ से मिलने में बहुत दुःख मालूम होता है क्या ?'

'जो भी हो, मैं यह बात करने नहीं, बल्कि आपसे प्रार्थना करने आई हूँ।'

'क्या ?'

'यही कि आज आपने अपने जिस कर्मचारी को बन्दी कराया है उसे छुड़ा दें।' मणि ने धीरे से कहा।

सहसा चन्दूलाल सेठ आरामकुर्सी पर लेटकर खिलखिला उठे, दो मिनट तक यही दशा रही। इस हँसने का कारण मणि की समझ में कुछ भी

नहीं आया, फलस्वरूप हक्की-बक्की होकर उसकी ओर देखती रही। हँसी का वेग कुछ कम होने पर जेब से सिगार निकाल कर जलाते हुए उसने कहा—'यह तो बड़ी विचित्र बात हुई।'

'क्यों ?'

'मैंने तो समझा था कि तुम कोई सती सावित्री होगी।' कहकर फिर हँसी न आने मे सेठ उठ कर बैठ गया।

मणि की आँखों में विष उतर आया और वे चमकने लगीं।

'यह भी भाग्य की बात है सेठजी !' बड़ी कठिनता से अपना स्वर नम्र बनाते हुए मणि ने कहा—'अब मैं सब कुछ समझ गई। आपका दो बार तिरस्कार करने के पश्चात् भी आपके एक तुच्छ कर्मचारी के पीछे-पीछे मेरा पागल होकर घूमना भला आपको कब सहन हो सकता है ?' सेठ फिर हँसा। मणि रुकी नहीं, 'आपने पंड्याजी की बात सुनी होगी ? आप भला कहाँ से विश्वास कर सकते हैं कि मैं मुचकुन्द को अपना सगा भाई समझती हूँ।'

'सगा भाई ! !' ओहो सेठ फिर हँसा, 'तुम्हारी जैसी स्त्री से आज तक मेरा पाला नहीं पड़ा।'

'हो सकता है, किन्तु मुझे भी ऐसा मालूम होता है। भले ही आप मानें या न मानें। आप जैसे व्यक्ति जिसके हाथ में संसार पर प्रभुत्व करने की शक्ति है, जिसके हाथ में शासनाधिकार है, भला वह कहाँ से इसे स्वीकार कर सकता है ?'

सेठ ने हँस कर कहा—'तब आप मुचकुन्द को मुक्त कराने आई हैं, किन्तु कारण ?'

'कारण ? कारण यह है कि वह निर्दोष है। केवल उसके पिता के कहने से आपने उस पर अत्याचार करने के लिए यह झूठा अपराध उसके सिर मढ़ा है।'

'इसमें क्या अपराध है ? यदि यह बात होती तो वह पकड़ा हो जाता ?'

'उसके प्रभु को—स्वामी को —ईश्वर ने धन और सत्ता दी है, इस कारण से !'

'नहीं, इस लड़के को मूर्खता करने से बचाने के लिए।' सेठ ने शान्ति-पूर्वक कहा।

'दूसरा कारण बताऊँ? मेरे कारण उसपर दोष लगाना बिलकुल झूठ है।'

'सती माता!' कह कर सेठ पुनः हँसने जा रहा था किन्तु मणि के मुँह पर उमड़ने वाले भयंकर बादल को देखकर वह रुक गया।

'हाँ! सती माता कह लो, क्योंकि दुनिया के निकृष्ट दुराचारों में रहकर आप सब इतने पतित हो गये हैं कि सत्य क्या है और झूठ क्या है, यह आप में समझने की शक्ति ही नहीं रह गई है। पर मैं अपने प्रभु की शपथ खाकर कहती हूँ कि आप सब भूल कर रहे हैं और बिना किसी अपराध के एक निर्दोश व्यक्ति पर सन्देह कर रहे हैं।'

यह आवेश, यह तेज देखकर चन्दूलाल सेठ जरा शरमिन्दा हो गया। उसके कठोर हृदय में भी मणि के हृदयस्पर्शी शब्दों ने कुछ असर किया, किन्तु वेश्या के यहाँ देखी हुई इतनी कम उम्र वाली और सुन्दर स्त्री निर्दोष हो यह बात उसको कुछ जँची नहीं।

'माना! पर छोकरा समझता ही नहीं, इसका क्या उपाय होगा?'

'क्या नहीं समझता?'

'तुम्हारे साथ उसे कैसे रहने दिया जा सकता है? पंड्याजी कह रहे थे कि तुम बाल-विधवा हो। तुम्हारे साथ इस प्रकार खुले आम रहने से भविष्य में इसका फल क्या होगा?'

'यह मैं भी समझती हूँ। मुचकुन्द भाई दुनिया के तूफान और छल-कपट से अभी अनभिज्ञ हैं, किन्तु मैं नहीं हूँ। मैंने उनसे पहले ही कहा था कि मुझे साथ रखने में उन्हें हानि ही उठानी पड़ेगी।'

'हाँ' किसी ऐसे व्यक्ति की संगत खोजनी थी जो तुम्हें दूर रख सके!' चन्दूलाल ने जरा हँस कर कहा।

यह प्रश्न मणि ने मानो सुना ही न हो इस प्रकार उसका जवाब न देते हुए कहा—'पर उन्हें लोगों की निर्मलता पर श्रद्धा थी।'

'अब तो मालूम हो जायगा। जब तक ऊँट पहाड़ पर नहीं चढ़ता तभी

तक बहुत बिलबिलाता है। पर निर्मलता....' कटाक्ष से इस शब्द पर सेठ ने ज़ोर देकर कहा--'की पूँछ ! वह तो तुम से विलग होना चाहता ही नहीं, मैंने उसे बहुत समझाया।'

'हाँ, परन्तु मैं तो स्वीकार करती हूँ। मुझे उनका भविष्य बिगाड़ना स्वीकार नहीं है।'

'बहुत ठीक, तब तो कुछ हो सकता है ! उसके बाप को बुलाऊँ ? परन्तु...।'

'परन्तु क्या ?' मणि ने पूछा।

'पर मैं यह सब कष्ट क्यों उठाऊँ ?'

'जाति के अपने एक सम्बन्धी की रक्षा के लिए। आपने उसे पकड़वाया है इसलिए।' मणि ने कहा। वह सेठ के प्रश्न का मर्म समझ गई ? सेठ को एक तमाचा मारने की उसे इच्छा हुई; किन्तु उसने अपने आपको किसी प्रकार सँभाला।

सेठ उत्तर सुनकर हँस पड़ा। 'यह मानो सतयुग चल रहा है ! तुम तुंगभद्रा के मकान से भाग निकलीं। पाठशाला में जगह पाने के पश्चात् तुमने धोखा दिया। आज भगवान ने तुम्हें बिना बुलाये यहाँ मेरे घर पर भेज दिया है। हमारे भाग्य को दैव ने कैसा अच्छा रचा है !' कहकर सेठ हँसने लगा। उसके हास्य से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि मनुष्य के अधम स्वभाव और निकृष्टतम आचार के वशीभूत होकर वह इतना पतित हो गया है कि किसी भी विषय को पवित्र दृष्टि से देख ही नहीं सकता था।

'अर्थात् इतनी तुच्छ प्रार्थना का भी आप मूल्य चाहते हैं ?' मणि ने तिरस्कार से पूछा।

'बिना मूल्य भी क्या कोई कार्य होता है ?' बम्बई के लखपति सेठ ने कटाक्ष किया।

'क्या मूल्य चाहते हो ?' साहस से मणि ने पूछा।

प्रश्न में इतना गाम्भीर्यपूर्ण अर्थ भरा हुआ था कि सेठ की दृष्टि मणि के सामने टिक नहीं सकी। उसका निष्ठुर मस्तिष्क भी क्षुब्ध हो उठा। वह क्षण भर तो कोई जवाब ही नहीं दे सका। अभी वह गम्भीरलाल और महात्मा

महायोगी की सी लम्पटता की चरम सीमा तक नहीं पहुँचा था।

मणि मनुष्य स्वभाव की परीक्षा करके अच्छी पारखी बन गई थी। वह ताड़ गई कि सेठ अभी कितने पानी में है। वह अपने सम्बन्ध में सेठ के मन में उत्पन्न होने वाले विचारों और लिप्साओं को कभी की समझ चुकी थी। एक चतुर नाटककार के लिए भी अलभ्य विलक्षणता से उसने अपने चेहरे के आवेश को बदल दिया; प्रार्थी की दीनता को दूर कर दानेश्वरी के प्रताप को मुख पर धारण किया।

'मूल्य !' मणि ने तेजस्वी मुख को ऊँचा कर प्रश्नसूचक स्वर में पूछा, 'कभी किसी ने मूल्य चुका कर स्त्री का हृदय जीता है ? मूल्य देकर खरीदी हुई स्त्री को कब तक आप अपने अधीन रख सकते हो ?' पल भर मणि रुकी। उसकी तेजस्वी आँखें अपना काम करती रहीं।

सेठ उस के मुख का, आँख का, तेज देखकर कर्तव्य विमूढ़-सा हो गया। एक स्वरूपवान हिरण को पकड़ने गये थे, सामने एक सिंहनी आकर खड़ी हो गई। इस गर्जना से घबड़ा जाने पर भी उनकी लिप्सा दूर न होकर कुछ बढ़ी ही। इस महाशक्ति के विराट स्वरूप ने उसे अपने वश में कर उसे निराधार बना दिया। वह एक अक्षर न बोल सका।

'सेठ !' मणि ने कहा, 'स्त्री को जीता जा सकता है—खरीदा नहीं जा सकता।'

सेठ जरा हँसा। उसने दृष्टि दूसरी ओर घुमाई। यह तेज उसे असह्य हो रहा था। फिर भी धनवान्, आत्म-संतोषी बम्बई वालों के साहस से उसे टाल जाने का प्रयत्न करते हुए उसने पूछा—'तुमको कैसे जीता जा सकता है ?'

'मुझे ? हाँ यह भी बतलाती हूँ।' ग्रीष्मकाल की उष्णता में जिस प्रकार सन्ध्या हो जाने पर कुछ शान्ति आ जाती है वैसे ही कुछ शान्त हो मणि ने कहा—'अभी तक न तो कोई मुझे खरीद सका है और न जीत सका है। खरीदने वाले तुम्हारी तरह हाथ-पैर पटक कर मर गये, अभी जीतने वाला कोई मिला नहीं है। तुम्हें मुझको अपनी बनाना है ? इसके लिए आँखों में पानी चाहिए। इस प्रकार मूल्य आँकने से कुछ नहीं हो सकता ?' कहकर मणि फिर तिरस्कार से हँसी।

सेठ दंग रह गया। यह रूप और यह वाक्चातुर्य ! जादूगर की लकड़ी के समान उसे बेहोश कर नचाने लगा। उसमें उसके आत्म-संतोषी स्वभाव का अर्थदान हुआ; जीतने की बात उसे रुचिकर प्रतीत हुई, क्योंकि उसके समान चतुर धनी के सामने मणि के समान एक निराधार अबला का अस्तित्व ही क्या था ? इसके अतिरिक्त यह सुन्दरी भी उसे कुछ अलौकिक जँची और खरीदने की अपेक्षा जीतना ही अधिक सरल मालूम पड़ा। मणि द्वारा बिछाये हुए जाल में सेठ सीधा जाकर फँस गया।

'मैं भी यही चाहता हूँ, मैं भी कुछ-कुछ इसी मार्ग का राही हूँ।'

'अच्छी बात है, तब आप मुझ पर इतना उपकार करें; मैं आपको अपना परम मित्र समझूंगी, किन्तु कोई वचन देकर अपने को बाँधती नहीं।'

'तो मैं कहाँ कह रहा हूँ ?'

'तब मुचकुन्द भाई को बँधन-मुक्त करा दीजिए।' एकदम सातवें स्वर्ग में पहुँचे हुए सेठ को पृथ्वी पर लाकर मणि ने कहा।

'हाँ ! पर पहली शर्त यह है कि आप मुचकुन्द से मिल नहीं सकतीं। इसे स्वीकार किए बिना कुछ नहीं हो सकता।'

'स्वीकार है। और कुछ ? वह छूट जायँ बस। उनके पिता से भी उन्हें क्षमादान करा दीजियेगा।'

'खड़ी रहो, मैं वृद्ध से पूछ आऊँ।' कह कर सेठ भीतर चला गया। थोड़ी देर बाद बाहर आकर सेठ बोला—'पंड्याजी कहते हैं कि उसके विवाह में भी तुम्हें कोई रोड़ा अटकाना नहीं होगा।'

'मैं भला क्यों रोड़ा अटकाऊँगी ?'

'ठीक'''तब'''कल सवेरे''''

'नहीं, जैसे हो इसी समय छुड़ाइये। मुझसे मुचकुन्द भाई कह रहे थे कि पुलिस इंसपेक्टर आपके परिचित हैं।'

'तब तुम कहाँ रहोगी ? क्योंकि वृद्ध कह रहा था कि तुम्हें उससे मिलना-जुलना बिलकुल ही बन्द कर देना पड़ेगा।'

'मैं कल सवेरे कोई कोठरी तलाश कर लूँगी, इस समय जहाँ-तहाँ पड़ रहूँगी।'

'मेरे घर से काम चल जायगा ?' सेठ ने जरा हँस कर पूछा।

'यह मित्रता का प्रारम्भ है ? क्षमा कीजिए, मेरी एक सहेली है उसके यहाँ जाकर सो रहूँगी।'

'ठीक है तब एक-दो लाइन लिख दो, मैं मुचकुन्द को छुड़ा लाऊँ।'

'अच्छा ! यह रही उनके घर की ताली। क्या मैं भी....' मणि ने कहा।

'क्या काम है ? मैं ही जाकर उसे पहुँचा आऊंगा। मेरी मोटर नीचे ही खड़ी है।' कह कर चन्दूलाल सेठ ने फिर पगड़ी सिर पर रखी।

: १३ :

चन्दूलाल ने जाकर मुचकुन्द को हवालात से मुक्त कराया और मणि का पत्र घर की ताली के साथ-साथ 'चलो अब जरा बुद्धि से काम लेना,' का उपदेश दे वहाँ से चलते बने। मुचकुन्द बाहर निकल कर थाने की ओर बहुत देर तक पागल की भांति देखता खड़ा रहा। वह क्यों पकड़ा गया, क्यों छोड़ा गया, यह ताली और पत्र कैसा है आदि बातों का स्पष्ट विचार करने की उसमें शक्ति नहीं थी। गिरफ्तार किये जाने पर पहले वह बहुत घबराया था; बाद में जो कुछ सिर पर पड़े उसे दृढ़तापूर्वक सहने के लिए बड़े साहस के साथ उसने निश्चय किया था। परन्तु जब मणि से मिल कर लौट आने पर थाने के भीतर घोर अन्धकारमय हवालात में बन्द कर दिया गया; उस समय उसका दम घुटने लगा था। हवालात का दरवाजा बन्द होते ही, समस्त जीवन, प्रिय आदर्श, स्नेहमय स्वप्न इन सबका दरवाजा बन्द होना हुआ दीख पड़ा। उसका कृत्रिम साहस जाता रहा। वह एक कोने में पड़ा रहा। सगा बाप ही दुश्मन हो रहा है; यह विचार करके उसका हृदय फटने लगा। दुःख से उत्पन्न कल्पना ने कोर्ट, दण्ड, बन्दीगृह आदि के भयंकर प्रेतों को उसके सामने लाकर खड़ा कर दिया। उसके मित्र क्या कहेंगे, उसके प्रोफेसर कैसी कल्पना करेंगे, यह विचार आते ही वह कांप उठा। इस दुर्गति की अपेक्षा मर जाना उसे

कहीं अधिक अच्छा लगा।

उसके संस्कार में आत्मबल नहीं था। उसका स्वभाव कोमल था। उसे अभी तक दुःख किसे कहते हैं मालूम नहीं था जिससे पापी अथवा अनुभवी स्वभाव की निष्ठुरता उसमें नहीं आ पाई थी; अन्यथा से उत्पन्न क्रोध का तेज अथवा अभिमान उसमें न था। आत्मनिष्ठ प्रभावशाली स्वभाव की गौरवशील शांति की भी उसमें कमी नहीं थी। पहले उसने कृत्रिम प्रयास से उत्पन्न किये हुए वृक्ष के समान रचना की थी। इस समय उस अस्वाभाविक वातावरण के नष्ट हो जाने पर और स्वाभाविक शिक्षा के अभाव से वह वृक्ष धराशायी हो चुका था। वह रोने लगा था, दीवार के साथ माथा भी टकराने लगा।

ऐसी अवस्था में चन्दूलाल सेठ ने वहाँ पहुँच कर उसे मुक्त करा दिया। यह परिवर्तन कैसे हुआ, वह कुछ समझ नहीं सका। सेठ की मोटर चली जाने के पश्चात् उसने सिर ऊपर उठा कर देखा। चारों ओर शून्य था; मणि का स्मरण आते ही हाथ में पड़ी हुई ताली और पत्र का ख्याल आया। सड़क के लैम्प के पास जाकर वह पत्र पढ़ने लगा—

'प्रिय मुचकुन्द भाई !

विधि ने बहुत समय तक हमें एक दूसरे के साथ रहने का विधान नहीं किया है। बिना मिले जा रही हूं, क्षमा करना। अपने कारण आप का भविष्य बिगाड़ने का पाप मैं नहीं बटोरना चाहती।

आपकी ही,

मणि

मुचकुन्द को इस पत्र का अर्थ कतई भी समझ में नहीं आया। तीन बार पढ़ने पर पत्र का तात्पर्य कुछ-कुछ समझ सका और वह दाँत पीसने लगा। जिसके लिए वह सब सहने को तैयार बैठा था वह भी नमकहराम निकली ! अनजान, इधर-उधर भटकने वाली स्त्री के साथ परिचय करने की अपनी मूर्खता को भी बार-बार वह धिक्कारने लगा।

पागल के समान दौड़ते हुए आकर मुचकुन्द ने घर का ताला खोला। चारों ओर घूर-घूरकर उसने देखा परन्तु मणि का ट्रंक या उसका नामोनिशान भी

उसे कहीं दिखाई न दिया, उसका गला भर आया। उसे घर, संसार, सर-सामान सब काटने दौड़ रहे थे। बैठ गया और सिर पर हाथ रख कर रोने लगा।

मुचकुन्द यदि विलायती सभ्यता में पला होता तो दुःख भुलाने के लिए सिगरेट जलाकर आजकल की सभ्य दुनिया में समय काटने वालों की तरह धूम्रपान करता, जंगली होता तो चिल्ला-चिल्लाकर सारी बस्ती सिर पर उठा लेता, यदि अनार्य होता तो सब कुछ भुला कर सो जाता ; अगर कहीं कवि होता तो हाथ में कलम लेकर दिल हिला देने वाली कवितायें रच डालता। विदेशी शिक्षा से पूर्ण रंगा हुआ न होता तो विधि के खेल पर श्रद्धा रख कर संतोष कर लेता। प्रेम दर्द का शौकीन भी तो नहीं था जिससे रोग जगाता ; और न कर्मयोगी ही था, नहीं तो मणि को बुला कर अपनी इच्छा-शक्ति का प्रदर्शन करता। मुचकुन्द बिचारा इनमें से कुछ नहीं था। प्रत्येक का कुछ-कुछ आभास उसमें अवश्य पाया जाता था, भिन्न-भिन्न आदर्शों के कण उसके स्वभाव में भरे हुए थे। इस कारण से वह कुछ भी न कर सका। केवल घंटों आंसू बहाता, बहुत देर तक मौन धारण कर बैठा रहा और मन ही मन इस प्रकार विचार करता रहा !

'मुचकुन्द, मुचकुन्द, तू मूर्ख है ! किसलिए इस प्रकार रो रहा है ? क्यों इतना चित्त में दुःखी होता है। पराई स्त्री किसी की हुई है कि तेरी ही होगी ! जिस अचानक मार्ग से वह आई थी उसी मार्ग से चली गई। इसमें तेरा क्या ? वह तेरी थी कब ? तेरे साथ रहेगी, इस धारणा का कारण ?

'पर ऐसे ही चली जाती तो कोई बात नहीं थी, यह तो अत्याचार से पिताजी के द्वेष से भाग गई। पिता के आगे, मैं पढ़ा-लिखा होकर भी कायर साबित हुआ। वाह रे मेरा पुरुषत्व ? मैं हारा परन्तु किससे ? संसार से, रूढ़ि से ! मैं गुलाम निकला। हैं ! मेरे सब आदर्श कहाँ गये ! भगवान् बुद्ध, मार्टिन लूथर यह सब स्वप्न है। मेरा साहस पहले ही आघात से चूर-विचूर्ण हो गया। हां ! मैं जेल जाने के लिए गया किन्तु कितना डर लग रहा था ? सचमुच मैं कितना निर्बल हूँ। कहाँ जरा-सी डाँट-डपट से भयभीत हो जाने वाले हिरण के समान मैं और कहां साहस से आगे कदम बढ़ाने वाले, हँसते हुए सूली पर चढ़ने वाले वीर शहीद !

'मैं किसके लिए लड़ा ? महि के लिए या अपनी भावना के लिए ? संसार के अत्याचार ने मुझे कुचल डाला। ऐसे कितने हिन्दू रौंदे गये होंगे ? सभी प्रथा, रूढ़ि, प्राचीन रीति-रिवाज की गुलामी पर भाषण करते हैं, कोई बचा भी है ? मैंने सोचा था कि मैं बच जाऊँगा। मेरे में वीरता है, साहस है, किन्तु कब तक जब तक कि प्रचण्ड शेषनाग ने निगल जाने के लिए फुन्कार नहीं मारी तभी तक। क्या सबको मेरे ही समान अनुभव हुआ होगा ? कितने लोग मेरे समान रोते होंगे ? अब क्या है ? पढ़ाई, चारित्र्य और आदर्शों पर पानी फिर गया। अब मनुष्य-रूपेण मृगाश्चरन्ति !' गुलाम और ढोर इन दोनों में कौन अच्छा है ?

'मैं गुलाम हूँ, सभी मेरी तरह हैं। स्वयं गुलाम बन कर दूसरों को भी गुलाम बनाने का धन्धा ले रखा है। भारत एक कारागृह है ? मनु का लिखा हुआ आदेश पालन करने की आज्ञा ही नहीं है ? जन्म से लेकर मृत्यु तक रूढ़ि द्वारा दिखाये हुए मार्ग का ही अवलम्बन किया जाय ? प्रभु ! प्रभु ! यह कैसी दुनिया है ! यह मनुष्य हैं ? इनकी अपेक्षा मर जाना कहीं अच्छा है।

पर मरने का साहस ! हाँ, वह भी नहीं है। दुःख सहन करके भी जीने की लालसा है। चाहे जिस बहाने से जिया जाए, जीना ही हमारा जीवन-मंत्र है। इस समय मैं भी उन्हीं की मण्डली में मिल गया हूँ। दूसरे का क्या दोष ? पिता आयेंगे, मुझ पर अपना प्रभुत्व जमायेंगे, चाहे जैसी लड़की से मेरा विवाह होगा, लड़के वाले होंगे, पच्चीस रुपये मासिक से जीवन पूरा हो जायगा— समाप्ति ! सब आशाओं का अन्त रोना !

किसका दोष कहा जाय ? अपना या भाग्य का ? हाँ यह हाथ का सहारा ठीक है। हाथ द्वारा किये गये अपराध से यदि हृदय भग्न हो तो भाग्य का सहारा लीजिये। हमने मूर्ति बनाने का कारखाना खोला है, साँचे में यदि ठीक-ठीक न ढले तो वह कुचल डाली जाय। ठीक ! किन्तु कुचले जाने का भी साहस तो मुझ में नहीं है। मैं स्वार्थी हूँ, मुझे अपना जीवन प्यारा है। हाँ ! मैं अधम हूँ, गुलाम होने के लिए सर्वथा तत्पर हूँ। अब मेरे लिए क्या ? जैसे सारी दुनिया जीवन का भार वहन करती है वैसे ही मैं भी करूँगा।

'शाबाश मुचकुन्द ! तेरी भी आज वही दशा हुई। जहाँ इतने थे उनमें

एक संख्या की वृद्धि और सही। अब जीवन में क्या शेष रह गया है ?

मुचकुन्द कुछ इसी प्रकार विचार करता रहा। विचार और थकावट के झोंके में रात बीत गई। मुंह अँधेरे ही पाणु पंड्या आ धमके।

दुःख में, निराशा में बैठे हुए पुत्र को देखकर तनिक विजय भरे स्वर में पंड्या जी पूछने लगे—'क्यों वत्स ! क्यों ? मिजाज कैसा है ?

निःस्तेज आंखों से मुचकुन्द ने सिर उठाकर देखा परन्तु उससे कुछ उत्तर देते नहीं बन पड़ा।

'क्यों, अब समझ में आ गया ! देख, यदि अभी कुछ और मस्तिष्क में कूड़ा भरा हो तो निकाल डाल। बता ! अब क्या करना है ?'

'क्या ?' मुचकुन्द ने दांत पीसते हुए उत्तर दिया। 'अब मुझे करना क्या है ? आपने मेरा जीवन नष्ट कर दिया—अब मुझे कुछ नहीं करना है।'

'इससे काम नहीं चलेगा, चल तैयार हो। आठ बजे गाड़ी जाती है।'

'कहां ?'

'अपने गाँव ! ज्ञात भर के लोगों से चलकर कहो कि अपने मुंह में कालिख पोत लें। पाणु पंड्या को बरगलाने आये थे।'

'मैं गाँव नहीं चलूंगा, मुझे कृपा कर यहीं पड़ा रहने दीजिये।'

'यहीं पड़ा रहने दूं, क्या मेरी नाक कटानी है ?' आंखें निकाल कर पाणु पंड्या ने कहा, 'पीछे जो चाहे करना अभी चल।'

मुचकुन्द में अब सामना करने का साहस भी नहीं रह गया था। वह अपने पिता की ओर एक टक देखता रहा।

'मैं चलकर क्या करूंगा ? मुझे दुःख में यहीं पड़ा रहने दीजिये। आप बुद्धिमान हैं और मैं विक्षिप्त हूं ; परन्तु किस लिए जले को और जलाते हैं ?'

'धत्तेरे जले हुए की ! तू तो अब बहुत बोलना सीख गया है ? चल उठ, यह तेरी टें-टें मेरे सामने नहीं चलेगी।'

'लीजिए !' एक दम खड़ा होकर मुचकुन्द बोल उठा, 'जो कहिये करने के लिये तैयार हूं।'

'हां, अब समझा !' शान्ति से वृद्ध ने कहा, 'चल अपनी आवश्यक वस्तुएँ

बाँध ले ; गाड़ी का समय हो चला है ।'

लहू का-सा घूंट पीकर मुचकुन्द उठ खड़ा हुआ ।

: १४ :

तीसरे दिन रात के ग्यारह बजे के लगभग कष्ट-नष्टेश्वर महादेव के मंदिर के चबूतरे पर तीन आदमी बैठे हुए गप मार रहे थे। एक व्यक्ति रास्ते पर खड़ा था। महादेव जी के मन्दिर में नन्दी के बगल में दो दीपक टिमटिमा रहे थे। थोड़ी-थोड़ी देर पर धोती और चौड़ी पगड़ी पहने हुए एवं कन्धे पर दुपट्टा डाले हुए पाण्डु पंड्या की जाति के लोग मन्दिर में झाँक कर पूछ जाते थे कि पंचायत प्रारम्भ हो गई है या नहीं। किसी को जल्दी हो या समय के मूल्य का ज्ञान हो, यह तो मालूम ही नहीं पड़ता था। सभी रात के राजा मालूम हो रहे थे।

थोड़ी देर बाद तीन व्यक्ति आए और भीतर चले गये। सर्वप्रथम सबने महादेवजी का दर्शन किया, पार्वती को चिढ़ाने के लिए बम-बम किया, देव को जगाने के लिए घंटा बजाया, नन्दी को प्रसन्न करने के लिए उसका पुच्छ स्पर्श किया और तब दीपक के आस-पास में बैठकर मन्त्रणा होने लगी।

'क्यों जी ! चौधरी कहाँ है ? उनका समय अभी नहीं हुआ क्या ?'

'होगा—होगा नाथू शास्त्री !' दूसरी मण्डली वालों ने भी व्यंग्य कसा 'आप क्यों इतने अधीर हो रहे हैं ? उस वन-मानुष को आपने देखा क्या ?'

'कौन ?' नाथू शास्त्री ने पूछा।

'अरे वही पाण्डु पंड्या का बेटा ! बड़ा साहब मालूम पड़े इसलिए आज उसने अँगरखा पहन रखा था और उसके घमण्ड का क्या पूछना। उसका पैर ही जमीन पर नहीं पड़ रहा था। मैंने नमस्कार किया तो केवल सिर हिला दिया।'

'धनशंकर ! तू तो बस ऐसा ही रह गया।' तीसरा बीच में बोल उठा,

'दूसरों के अवगुण ही देखने की तेरी आदत सी पड़ गई है? तू भला क्या जाने? उसने तो गत वर्ष मुझे पुरुष-सूक्त का अर्थ समझाया था।'

'शांतं पापम्!' नाथू शास्त्री ने अपना अभिप्राय दर्शाया। 'वेद का अर्थ! यह सम्भव ही कैसे हो सकता है? और यदि हो भी तो क्या हमसे हो सकता है? रौरव-नरक के अधिकारी हो जायेंगे भवानी काका!'

'बस-बस रहने दे अब। विदेशी इसका अर्थ करें तो कुछ नहीं और हम करें तो बड़ा भारी अपराध हो गया!' भवानी काका ने कहा।

'इसी तरह तो सब सत्यानाश हो गया न। और अब उस रामशंकर के लड़के की शुद्धि करनी है? कैसी अधमता! अब तो आर्यसमाज में सबको मिल जाना चाहिए, ताकि ब्राह्मण बने हुए भंगियों के साथ बैठकर भोजन करने का सौभाग्य तो प्राप्त हो।'

'भंगियों को ब्राह्मण कौन कहता है?' चिल्लाकर प्रश्न करता हुआ गौरीशंकर गोटजी आया। यही गनीमत थी कि इनका परिचय वहाँ पर बैठे लोगों को पहले से था। यदि पहले से कोई उन्हें पहचानता न होता तो ऐसा आभास होता मानो पास ही के मन्दिर में से काले पत्थर के गणपति अपना सूँड दूर रखकर पिता—शिव का दर्शन करने के लिए आये हों। सभी लोग उन्हें लड़कपन से जानते थे इसलिए यह मानप्रद भ्रम उत्पन्न नहीं होने पाया। उनकी साधारण बात भी दो फर्लाङ्ग तक तो लोग आसानी से सुन ही सकते थे। गाँव के बहरे एक बार में इनकी बात सुन लिया करते थे जिससे जाति के सम्मेलन में वह अगवानी के लिए बड़े उपयुक्त थे।

'अरे यह तो नाथू शास्त्री है।' भवानी काका ने कहा—'ये रामू के लड़के को पवित्र करना नहीं चाहते।'

'क्यों, शास्त्री जी! आपको भी उस पाण्डु पंड्या ने भरमा दिया है क्या?'

'पाण्डु पंड्या में खुटाई क्या है?' शास्त्री ने पूछा।

'खटाई, खुटाई तो आज ही मालूम हो जायगी! किन्तु अभी तक कोई आया क्यों नहीं? आधी रात तो होने आयी। पंचायत की यही तो सबसे बुरी बात है कि कोई समय पर आता ही नहीं।'

'लो, यह पुराणी बाबा आ गए।' इतने में मुचकुन्द के भावी ससुर लकड़ी

टेकते हुए वहाँ आ पहुँचे।

'क्यों पुराणी बाबा ?'

'क्यों भाई, क्या है ?'

'आज आप भी पाणु पंड्या के साथ अटं-पटं में थे ?' गोटली ने आँख निकाल कर पुराणी बाबा को आड़े हाथ लेने के लिए कहा।

'अटं-पटं क्या और कैसी बात ? मुझे कुछ खबर नहीं है।'

'पुराणी बाबा ! इस साठ वर्ष की उम्र में झूठ क्यों बोल रहे हैं ? आप भी तो थे।'

'बिल्कुल झूठ—लो यह रामशंकर आ गये। क्यों आपका लड़का कहाँ है ?' पुराणी महाराज ने प्रश्न किया।

'उसका तो माथा दुःख रहा है। भाई ! आज क्या करना चाहते हो ? मुझ गरीब ब्राह्मण को क्यों सताते हो ? मैं तो जाति की गाय हूँ, जो कहो करने के लिए तैयार हूँ। पड़िया-पड़वा लड़ें और कचूमर निकले पेड़ का।' गरीब बनकर रामशंकर ने अपनी प्रार्थना सबके आगे रखी।

'पर आज चौधरी को क्या हुआ है ?' भवानी काका ने धीरे से पूछा।

'अरे कैसा चौधरी और क्या होना है ?' गोटली ने अपना मान भंग होने से मिजाज बदलते हुए पूछा।

'भाई अब तो तू भी चौधरी है ; किन्तु जो है उसे नहीं कैसे कहा जाय ?'

इतने में पाँच-सात व्यक्ति और उनके पीछे-पीछे पाँच-सात छोटे-छोटे बालक भी आ गये। इनमें से एक लड़के के सीटी बजाने पर एक नवागन्तुक ने उसका कान गरम कर दिया, जिससे वह रोने लगा।

'क्यों रे चिलबिल्ला ?' कान गरम करने वाले ने चिल्लाकर कहा, 'यह क्या नाटकशाला है ? आजकल के लड़कों से तोबा है यह !'

'अरे परभू काका ! जरा तलवार बांधो तलवार।' नाथू शास्त्री ने व्यंग्य छोड़ा।

'क्यों, इसमें तुम्हारा क्या बिगड़ा ?'

'लो, भाइयो अब क्या देर है ?' गौरीशंकर गोटली ने कहा—'इस प्रकार कब तक तपस्या करनी है। सभी लोग तो अभी ही मुंह बाने लगेंगे। जो कुछ

करना हो जल्दी करो।

'पर पाणु पंड्या कहाँ हैं ?' परभू काका ने पूछा।

'उन्हें अक्षत देने कौन जाय ? उनके बिना ही शुरू करो।' कहकर गोटली पंचायत का काम प्रारम्भ करने के इरादे से बैठ गया।

'भाई जो भी हो, पहले उन्हें बुलाओ।' पुराणी ने अनुरोध किया।

'हाँ भाई ! उन्हें बुलाने के लिए किसी को भेजो।' भवानी काका ने हामी भरी।

'तब सब लोग बिना काम-धन्धा छोड़कर हाथ पर हाथ रखकर बैठे रहें ?'

'भाई ! यह तो जैसा होता आया है वैसे ही होगा।' एक ने कहा, 'उठो, नाथू शास्त्री ! तुम पाणु पंड्या के यहाँ जाकर उनसे पधारने के लिए कहो। सब लोग आ गये हैं। उन्हीं की केवल देर है।'

नाथू शास्त्री भी पंड्या जी से सहमत थे ; इससे तुरन्त उठकर बुलाने चले गये। उस समय सब लोग हाथ पर हाथ रखे हुए दीपक की ओर दृष्टि रखकर चुपचाप ऐसे बैठे थे जैसे विग्रह के लिए सामग्री संचित कर रहे हों। इन्हें बैठा देखकर कुछ देर पर कोई न कोई आता ही रहता था।

इतने में एक भूदेव लड़खड़ाते हुए भीतर आये। उनके नेत्र में सोमरस की मस्ती स्पष्ट दिखाई पड़ रही थी। उनका पैर अँग्रेजी नृत्य करता हुआ अस्थिर पड़ रहा था। उन्हें देखकर सब लोग एक दूसरे का मुंह ताकने लगे।

'क्यों रविशंकर ?'

'हाँडी गई फूट !' सोमपान के असर से रविशंकर के मन में स्फुरित मन्त्र का उच्चारण हुआ। 'हाँ···हाँ···' उन्होंने एक तान छोड़ा, 'है—अ···तुम सब लोग क्या कर रहे हो ? हाँडी गई फूट। आज रामू के लड़के का क्या है ?'

'क्यों महाराज ! जीभ बहुत चल रही है क्या ?' गोटली ने पूछा।

'हाँडी गई फूट !' शान्ति से रविशंकर ने मन्त्र पढ़ा। इतने में बाहर से आने वाले लोगों की आवाज सुनाई दी। पाणु पंड्या और मुचकुन्द के साथ दूसरे दस-एक भूदेव पधारे।

'पधारिये', 'आइये', 'बैठिये', 'विराजिये' आदि शब्द सुनाई दिये। सब लोग शान्ति-पूर्वक बैठ गये ! पाणु पंड्या अध्यक्ष के स्थान पर बिना कहे जाकर

बैठ गये और सेनापति के समान अपनी सेना पर तीक्ष्ण दृष्टि डाल कर बोले—'कोई बाकी तो नहीं रह गया ?'

'नहीं पंड्याजी ! सब लोग आ गये हैं।' भवानी काका ने उत्तर दिया।

पारणु पंड्या ने सभा पर एक दृष्टिपात किया। दीपक के आसपास में लगभग पचास मनुष्य और तीस-चालीस लड़के बैठे हुए थे। थोड़ी-थोड़ी देर में लड़कों में कुछ बातचीत और हँसी होती हुई सुनाई पड़ती थी किन्तु पारणु पंड्या की दृष्टि पड़ते ही तूफानी छावनी में भी शान्ति विराजने लगती।

'रह···ग···ग···या···एक···जान···' रविशंकर ने आधा गाया और आधा बिना गाये ही जैसे वाक्य का उच्चारण किया।

'कौन ?' पंड्याजी ने रविशंकर का अभिनय देखकर जरा कठोरता से पूछा।'

'हाँडी गई फूट !' जवाब मिला। सभी सदस्य जरा हँस हड़े, पीछे से लड़कों ने खिलखिलाकर हँसते हुए ताली पीट दी।

'क्यों रे छोकरो ! पंचायत के भीतर ऐसी असभ्यता ! मर्यादा बिल्कुल नष्ट हो गई है क्या ?'

'अब हमें काम शुरू करना चाहिये।' गोटली ने कहा।

'हाँ महाराज !' रामशंकर ने हाथ जोड़कर कहा, 'मुझ पर दया कर मेरे पुत्र का कोई रास्ता निकाल दीजिये।'

'लड़का कहाँ है ? गंगाशंकर कहाँ है ?' दो-चार ने इस प्रकार के एक साथ प्रश्न किये। रामशंकर का चेहरा उतर गया और चारों ओर देखकर बोला, 'महाराज ! वह तो अस्वस्थ है।'

'आज सवेरे तो शाक-भाजी लेने गया था न ?' पंड्याजी ने पूछा—'उसकी अनुपस्थिति में क्या हो सकता है ?'

'किन्तु न्याय करना है या उसे दिखाना है। वह विदेश हो आया है और वहाँ से लौट आकर विधि-पूर्वक शास्त्र-विहित प्रायश्चित भी उसने कर लिया है।' सब एक साथ बोल रहे थे, उन में गोटली की आवाज सुनाई दी। 'अब क्या बाधा है ? जाति में खुले आम लोग जो चाहें करें—खायें-पीएँ—रांड रखें; उनका कुछ नहीं और यह गरीब बिचारा विद्याभ्यास के लिए विदेश गया तो उस पर यह अत्याचार टूट पड़ा !'

'हाँडी गई फूट !' धीरे से रविशंकर ने पूर्ति की ।

'किसका न्याय नहीं होता ? विदेश गमन का प्रायश्चित्त ही नहीं है।' नाथू शास्त्री बोले, किन्तु सब लोग एक साथ बोल रहे थे जिससे कौन क्या कह रहा है यह सुनाई नहीं देता था ।

'तब सबका न्याय होना चाहिए ।' पीछे से एक व्यक्ति ने कहा ।

'किसका न्याय कराना है ?' प्रचण्ड सिंह-गर्जन करते हुए पाण्डु पंड्या बोले । दूसरे लोग चुप हो गये ; 'कोई का नाम न निशान ; व्यर्थ का आक्षेप किया जाता है । नाम दो, साक्षी लाओ, अभी सबका न्याय किया जाता है । गंगा आया नहीं है इससे उसका क्या न्याय किया जाय ? यहाँ अब इस प्रकार बैठने का प्रयोजन ही क्या है ? बेकार रतजगा कराते हो ? जब तक अपराधी उपस्थित नहीं होता तब तक कुछ नहीं हो सकता । बोलो श्री हर-हर महादेव ।' कहकर पाण्डु पंड्या एकदम उठकर खड़े हो गये । आधे लोग हर-हर चिल्लाने लगे कितने ही कहने लगे—'बैठिये, बैठिये ? और कितने ही ताली पीटने लगे । रविशंकर ने जोर से चिल्लाकर कहा, 'हाँडी गई फूट ।' गोटली ने चिल्लाकर कहा—'इसका नाम पंचायत है ! अपने नीचे पानी मरा कि सब उठकर खड़े हो गये । मुचकुन्द पंड्या ने मुसलमानिन रखी है, उसका न्याय क्यों नहीं करते । पहले वह पीछे गंगा । बैठिए, बैठ जाईये सब बैठ जाइए ।'

'हाँ, मुचकुन्द पंड्या का विचार करो ।'

सभी उठकर चिल्लाने लगे । कोई किसी की न सुनता था । पीछे खड़े हुए लोग धक्का-मुक्की करने लगे । इतने में दो-चार लड़कों ने पीछे से ढकेला, जिसका प्रभाव आगे तक पहुँचा । निश्चिन्त खड़े नाथू शास्त्री धक्के की चपेट में आकर क्रोध से लाल-पीले होते हुए गणपति स्वरूप गोटली पर टूट पड़े । शास्त्री जी की पगड़ी जमीन पर आ गिरी । गोटली ने क्रोध में एक मुक्का जमा दिया । तब शास्त्री सरस्वती की शरण लेकर शब्द-प्रहार करने लगे ।

'मुचकुन्द पंड्या की बात ! एक मुसलमानिन और उसके साथ दो लड़के भी हैं ।' कोई पीछे से बोला ।

इधर शास्त्री ने गोटली की परदादी का स्मरण कराया । गोटली ने शास्त्री के बाप की जवानी के काले चिट्ठे का वर्णन किया । 'मार डालूँगा, खून बहा

दूंगा !' की आवाजें आने लगीं। पाणु पंड्या खड़े-खड़े तमाशा देख रहे थे। दो-चार व्यक्ति गोटली को छुड़ाने गये। न जाने किसने लकड़ी जमा दी और इधर किसी ने दीपक को भी बुझा दिया। मन्दिर में अन्धकार हो गया, सब एक दूसरे पर टूट पड़े, सभी जो कोई हाथ में आया उसे पीटने लगे। कुछ समय तक यही हो हल्ला चलता रहा। पश्चात् लोग छटने लगे और कुछ देर पाश्चात् मन्दिर में शान्ति होने लगी।

थोड़ी देर बाद नन्दी के पास से आवाज आई—'हांड़ी गई फूट।'

रविशंकर उठे, उन्हें लगा कि तूफान अभी चल रहा है उसे समाप्त करूँ। मन्दिरमें पड़ा हुआ ढोल उठाकर तुमुल युद्धमें नाद बढ़ाने का उन्हें शौक चर्राया। लड़खड़ाते हुए जाकर ढोल के पास बैठ गये। डोल पुराना और फटा हुआ था, उस पर उन्होंने हाथ मारा लेकिन कोई आवाज नहीं हुई। रविशंकर ने अधिक जोर से प्रहार किया, अन्दर से आवाज आई—'अरे बाप रे !'

'कौन साला है !' रविशंकर ने चिल्लाकर पूछा।

'यह तो मैं हूँ !'

'मैं कौन ? क्या कालभैरव'

'नहीं, मैं हूँ गौरीशंकर।' कष्ट से लड़खड़ाती हुई आवाज आई।

'कौन गोटली ? यहाँ ढोल में, कहाँ से ?'

'क्या करूँ ! दूसरा रास्ता नहीं सूझा तो ढोल फाड़ कर अन्दर घुस गया। भाई मुझे अपना हाथ दो ! मेरी हड्डियाँ तो चूर-चूर हो रही थीं उसे तुमने और भी पूरा कर दिया।'

'मुझे क्या पता कि तू ढोल में घुस कर बैठा है ! ले हाथ चल निकल। हांड़ी गई फूट !'

'भाई मेरी हांड़ी सचमुच फूट गई।' गोटली ने कहा।

: १५ :

मुचकुन्द के वियोग का दुःख भुला कर चन्दूलाल को दूर रखने की युक्ति मणि सोचने लगी। पहले जो व्यक्ति उसे मिले थे वे सभी सजा वाले, मध्यवृत्ति एवं गाँव के मर्यादाशील वातावरण में पले हुए थे। चन्दूलाल सेठ में इतने में से एक भी दुर्गुण नहीं था। जिससे वह मणि को सबसे अधिक भयंकर प्रतीत हुआ।

बहुत सोच-विचार के बाद एक रास्ता उसने खोज ही निकाला। दूसरे दिन सवेरे अपने आप ही वह सेठ के यहाँ गई और उनकी पत्नी से मिली। सेठानी का नाम पार्वती बाई था। वह अपनी बहन का समाचार जानने के लिए अत्यन्त आतुर हो रही थी। मणि ने उसे महायोगी महाराज की सब बातें बताई; मणिकर्णिका का दिया हुआ हार दिखाया और उसकी जिज्ञासा शान्त की। पहले तो सेठ से सब कुछ कहकर कुछ करने का विचार सेठानी के मन में उत्पन्न हुआ, पर कुटुम्ब की मर्यादा पर न आ बने, मणि की कुछ भूल हो अथवा महायोगी मणिकर्णिका को त्याग दे, इस प्रकार के संशय मन में उत्पन्न हो जाने से उसने बात जहाँ की तहाँ रहने दी और थोड़ी पूछ-ताछ करने के पश्चात् जो कुछ करना हो, उसे करने का उसने निर्णय किया।'

पर मणि का काम हो गया। सेठानी उससे प्रसन्न थी। सेठानी जी पुराने विचार की, भली, चिड़चिड़े स्वभाव की, मन्दिर की दृढ़ भक्त और भोग-विलास की परम शत्रु थी। मणि ने उसे अपना भूतकालिक जीवन न बताकर उसे सुधारने का प्रयत्न किया। धार्मिकता का ढोंग कर उसके जीवन में कुछ रस पैदा करने के लिए वह परिश्रम करने लगी।

चन्दूलाल सेठ चकित हो गया, घबरा गया जब उसने देखा कि मणि पाठशाला का समय छोड़कर बराबर वहीं रहती थी। उसकी स्त्री के साथ बहनापा जोड़ रही थी, उसके साथ बातचीत करने में जरा भी हिचकती न थी—और एकान्त में उसे मिलने का अवसर तक न देती थी। सेठ से की हुई शर्तों के अनुसार वह कार्य करती थी किन्तु सेठ की जो वास्तविक उसे इच्छा थी, उसे वह न होने देती थी।

धीरे-धीरे सेठानी की चाल-ढाल भी बदलने लगी। मणि का प्रभाव उस पर पड़ने लगा, जिससे उसका स्वभाव बदल गया। उसके रहन-सहन में कुछ अन्तर आने लगा। पहले वह बरावर मौन रहती थी। अब कुछ हँसने लगी, पहले दिन भर नौकरों कोसती रहती थी, उसके बदले में अब कुछ वार्तालाप करने लगी। ठाकुरजी के मन्दिर में जाने के बदले अब बहुत समय भुलेश्वर के कपड़ा वालों की दूकानों पर विताने लगी। ज्यों-ज्यों उसके स्वभाव का चिड़चिड़ापन कम होता गया त्यों-त्यों उसका शरीर भी सुधरने लगा और वह अपने भांजे नटवर को प्यार करने लगी।

चन्दूलाल ने इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं दिया, वह तो मणि के नाम की माला जपता और उससे मिलने के लिए छटपटाया करता था।

: १६ :

मुचकुन्द का आवेश समाप्त हो गया। उसके मन में विरागी का-सा भाव आ गया था। वह किसी बात में कुछ भी दखल न देता और जो कुछ उसका पिता कहता उसे चुपचाप कर लेता था। उसके चेहरे पर ग्लानि सदैव छाई रहती थी।

पाण्ड्या जी अवसर तरह-तरह से उसे सताने लगे। नाई को हुक्म देकर उसका सिर घुटवाकर बड़ी-सी चुटिया रखा दी। बहुत दिन से छोड़ी हुई संध्या प्रारम्भ करने के लिए कहा। उसके अस्वीकार करने पर अपने पास ही चौकी और आसन विछा कर जबरदस्ती उससे संध्या करवाना प्रारम्भ किया। इस प्रकार अनेक अत्याचारों से पीड़ित होकर वह और भी क्षुब्ध हो उठा। जीवन में उसे कोई आकर्षण नहीं रह गया था। जिस आत्मबल का अभिमान वह कर रहा था उसकी इतिश्री हो चुकी थी। जिस व्यक्ति-स्वातन्त्र्य का वह समर्थक था वह नष्ट हो चुकी थी। मणि उसकी समझ के अनुसार जीवन में रसदात्री थी। वह स्वयं चली गई थी। अब उसके लिए कुछ रह नहीं गया

था। निराधार सदैव भाग्य के आधीन हो जाते हैं। कायर का भी यही अन्तिम शरण-स्थल है, मुचकुन्द निराधार और कायर हो गया।

पाणु पंड्या ने भी समय से लाभ उठाया और बड़े ही धूम-धड़क्का से विवाह का आयोजन करने लगे। मुचकुन्द से पूछने की उन्हें कोई आवश्यकता प्रतीत नहीं हुई।

मुचकुन्द को वह स्वप्नवत् मालूम पड़ने लगा। ढोल और रणसिंघा बजे, मुहुर्त्त देखा गया। स्त्रियाँ सवेरे-शाम गीत गाने लगीं। मुचकुन्द को हल्दी चढ़ी। जामा पहन कर हाथ में नारियल लिये हुये उसे घोड़े पर चढ़ाया गया। विवाह मण्डप में जहाँ लोगों की भीड़ लगी हुई थी, वहाँ वह बैठ गया, मंत्रोच्चार के साथ कार्य-क्रम प्रारम्भ हुआ। किसी का हाथ उसे पकड़ा दिया गया। सबने कहा—'मुचकुन्द का विवाह हो गया।' यह स्वप्न-परम्परा मानो किसी दूसरे का अनुभव हो इस प्रकार वह यह सब चलचित्र की भाँति देखता रहा। अंग्रेजी लेखक और सुधारकों द्वारा प्रथा के विरुद्ध दिये गये भाषण उसे स्मरण हो आये जिससे पीढ़ा पर से विवाह के पश्चात् उठते समय वह बोल उठा—'तुम सब बकते जाओ मैं तो जैसा अपना जीवन व्यतीत करता रहा हूँ, वैसा ही आगे भी करूँगा। अन्त में भले ही देश डूब जाय।' वह हँसा। कठोर काटक्षमय हास्य उसके मुँह पर छा गया।

'मैं कह रहा था न ?' पाणु पंड्या ने वह हँसी पुराणी बाबा को दिखाते हुए कहा—'आपके घर की कन्या लेते हुए किसे नहीं रुचेगा ? पहले तो ऐसा हुआ ही करता है, अब देखना।'

पुरणी बाबा ने सन्तोष और अभिमान से पहले जामाता की ओर पश्चात् पंड्याजी की ओर देखकर कहा—'भाई ! मोर के अण्डे से कहीं तीतर भी निकल सकता है ?'

: १७ :

'देखो मणि ! अब तुम मुझे अधिक मत तरसाओ। सेठानी जी मंदिर चली गई थीं और भूल से मणि घर पर रह गई; अवसर हाथ लग जाने पर चन्दूलाल ने कहा।

'मैंने क्या तरसाया ?' नटवर का हाथ पकड़ते हुए मणि ने आकर पूछा।

'अपने वचनों का पालन तू नहीं कर रही है, मैं तेरी सब चालाकी समझ गया हूँ।'

'क्या ?'

'तू मुझे इसी प्रकार छलना चाहती है। अब तो तू सेठानी की बड़ी बहन हो गई है; क्यों ?' सेठ ने कहा।

'अभी तक आपने मुझे जीता नहीं है, जीत लेने पर आइयेगा।'

'तू तो मुझे कभी स्वीकार ही नहीं करेगीं ?'

'इसका अर्थ आप हार गये। आपकी अपेक्षा तो मूचकुन्द भाई ही अच्छे थे।' मणि हँसी किन्तु उसकी हँसी से विकलता का आभास मिल रहा था, वह बेचारा तो जेल तक जाने के लिए तैयार था।'

'और अब उसका विवाह हो गया है। अब भी वह तुम्हें बहुत याद आता है क्या ?'

क्यों न याद आवे ? मेरे लिए तो वह सगे भाई से भी बढ़कर प्रिया था।'

चन्दूलाल सेठ जवाब देने जा ही रहा था कि सहसा चौंक कर दरवाजे की ओर देखता रह गया। मणि घूम कर देखने लगी। दरवाजे पर मुचकुन्द प्रेत जैसा खड़ा था। सेठ और मणि दोनों उसे देखकर घबरा गये। मुचकुन्द का शरीर एक महीने में ही निस्तेज और बलहीन हो गया था। वह शरीर का ढाँचा मात्र रह गया था। आँखें माथे में धँस गई थीं। चेहरा पीला पड़ गया था। उसकी सफेद आँखों ने एक तेजोमय दृष्टि मणि पर डाली।

मणि उस दृष्टि का अर्थ समझ गई। उसके हृदय में आघात लगा। उसका गला रुँधता सा-प्रतीत होने लगा वह नटवर को लेकर भीतर चली गई।

मणि को देखकर मुचकुन्द ने समझा कि वह सेठ के यहाँ रहती है। वह

निराशा के सागर का थका हुआ तैराक तैरना छोड़कर इस दुःख के प्रवल तरंग के सामने अपना सिर झुका नीचे समुद्र के तल में बैठ गया।

सेठ ने स्वस्थ चित्त होकर पूछा—'कौन ? मुचकुन्द ! कब आये ?'

'अभी साहब !' खिन्न वाणी में मुचकुन्द ने कहा।

'कैसे हो ? विवाह आनन्दपूर्वक समाप्त हो गया न ?'

'बिलकुल !' जरा कठोरता से हँस कर मुचकुन्द ने कहा।

'ठीक है, भोजन हुआ ? ऑफ़िस जाओगे न ?'

'जी हाँ।' कहकर मुचकुन्द सलाम कर वहाँ से विदा हुआ।

तीसरे पहर चार बजे सेठ वापस आये। उन्हें रंगून के एक आढ़तिया ने तार देकर तुरन्त बुलाया था। उनका वहाँ जाना इतना आवश्यक था कि बिना गये काम ही नहीं बनता। सेठ अपने साथ मुचकुन्द को भी ले जा रहे थे।

मणि और सेठ एक दूसरे से दूर हो गये। मुचकुन्द को भी बम्बई से दूर जाने का अवसर मिला, जिससे दोनों को मुँह माँगी मुराद मिली। सेठ बेचारे को भी मणि को छोड़कर बाहर जाना बहुत दुःखप्रद प्रतीत हो रहा था, परन्तु करे क्या ? कोई चारा भी तो न था।

तीसरा भाग

: १ :

सेठ चन्दूलाल के जाने के बाद मणि ने छुट्टी के लिए आवेदन-पत्र दिया। अब उसे इतनी आय हो जाती थी कि वह अपना जीवन स्वतन्त्रतापूर्वक निश्चिन्तता से व्यतीत कर सके। उसे ऐसा प्रतीत होने लगा कि जिस दुर्भाग्य के कारण वह अब तक इतना दुःख झेल रही थी उसका अन्त अब निकट है। जिससे उसका चित्त सुरेखा के लिए दिनोंदिन अधिकाधिक व्याकुल रहने लगा। इसके अलावा पार्वती भी महायोगी महाराज के यहाँ जाने के लिए प्रतिदिन तकाजा किया करती थी।

किन्तु मणि एकाएक बम्बई न छोड़ सकी। दस वर्ष के वैवाहिक जीवन के पश्चात् सन्तान-हीन, शुष्क-हृदय हो जाने वाली पार्वती के जीवन-विकास में यह रस लेने लगी थी। उसके सूर्य-किरण रूपी प्रभाव से सेठानी का स्वभाव खिल कर उसमें से अद्भुत सुगन्ध निकलने लगी थी। मणि उसके मन को विकसित करने में अधिक समर्थ हो सकी। मन के साथ ही साथ कुछ बाह्य रूप में भी परिवर्तन हुआ।

मणि ने एक युक्ति सोच कर रखी थी, उसको कर्यरूप में परिणत करने के लिए सेठानी को कुछ पढ़ना-लिखना भी सिखाया। दो ही मास में पार्वती में ऐसा परिवर्तन हो गया कि उसे कोई पहचान भी नहीं सकता था कि यह वही पहले वाली पार्वती है।

दो महीने बाद सेठ का तार आया कि वे वापस आ रहे हैं। मणि ने यह समाचार सुनते ही अपने जाने का दृढ़ निश्चय कर लिया। ज्यों-ज्यों सेठानी

का मन सांसारिक विषयों की ओर आकृष्ट होने लगा त्यों-त्यों अपने पति का पत्नीव्रत के विरुद्ध आचरण उसे खलने लगा। पति-सुख प्राप्त करने की आकांक्षा भी क्रमश: उसके हृदय में बढ़ती गयी। इससे मणि जैसी स्वरूपवती बुद्धिशीला स्त्री का वहाँ न रहना ही उसे अधिक रुचा।

बम्बई सेरवाना होने पर मणि अत्यधिक प्रसन्न थी। उसकी पुत्री की सुन्दर आकृति आँखों के सामने नाचने लगी, जिससे वह अनजाने में हँसने लगी। उसके हृदय में, कष्ट सहते-सहते कठोर हृदय में भी, रस झरने लगा। कठोर से कठोर पर्वत से भी जल की चौड़ी धारा निकलती है। मणि की स्नेह आकुलता ने उसकी आँखें आर्द्र कर दीं। इसके पूर्व जब वह मीठा कुआँ गई थी यह प्रसंग याद आया, अपना गत दु:ख का समय याद आया, दु:ख कष्ट, संताप से भटकते हुए जो-जो अनुभव उसे प्राप्त हुए थे वे सब स्मरण आने लगे, वह आँसू रोक नहीं सकी। गाड़ी के बाहर सिर निकाल कर उसने आँसू बहने दिए। इसी प्रकार अपने पूर्व जीवन पर आँसू बहाते हुए वह स्टेशन आ पहुँची जहाँ जोरा भगत से उसकी पहले पहल भेंट हुई थी। स्टेशन पर उतरी, मीठा कुआँ गई। उसका हृदय कुछ तो आशा से और कुछ भय से धड़क रहा था। सुरेखा कैसी होगी ? क्या वह सुखी होगी ? उसका रूप कैसा होगा ? उसे कष्ट तो नहीं हुआ होगा ? शिवा पटेल की बहू ने उसे दु:ख तो न दिया होगा ?

वह मीठा कुआँ पहुँची पर वहाँ भी निराशा ने साथ न छोड़ा। शिवा पटेल ने कहा कि मोघाराम बम्बई का नाम लेकर लड़की को कई महीने हुए उससे ले गया। मणि का हृदय दु:ख से पहले ही दग्ध था, उसका वह घाव फिर ताजा हो गया। शिवा पटेल ने उससे कुछ दिन ठहरने की बहुत विनती की किन्तु वह उसी दिन संध्या समय जिस शहर में उसे अनेकों प्रकार के नये-नये अनुभव प्राप्त हुए थे वहाँ गई। वहाँ दूसरा प्रश्न उसके सामने आया, किसके यहाँ जाय ? मोघाराम से कैसे भेंट हो ?

आखिर साहस कर वह मारुति के यहाँ गई। मारुति पहले ही जैसा हँसमुख था। उसने मणि को बड़े ही आदर से बैठाया। उसकी स्त्री ने उसका खुले हृदय से स्वागत किया। किन्तु मोघाराम का इतिहास सुनकर उसका हृदय हाथ से जाता रहा। केवल मारुति ने सन्तोषप्रद एक बात कही कि हाईकोर्ट

में छोटी अदालत के निर्णय के विरुद्ध अपील की गई है जिससे मोघाराम के छूट जाने की बहुत आशा है। मारुति ने इसके साथ ही यह भी कहा कि अच्छा बैरिस्टर करने के लिए रुपये की जरूरत होने से मोघाराम का घर बेचने की योजना चल रही है।

मारुति ने इसके पश्चात् मोघाराम पर मुकदमा चलने का कारण भी बताया। मणि को उस भले मानस की निर्दोष और दुःखी स्थित पर दया आई। एक समय वह भी निराश्रिता थी। आज उसी के कारण मोघाराम आधारहीन हो रहा था।

अपनी पुत्री का पता पूछने के लिए मोघाराम से जेल में मिलना जरूरी था। इस विचार को भी त्याग कर मुकदमे की पैरवी के लिए मणि वहाँ ठहर गई। एक गरीब बेचारे की एक मात्र झोंपड़ी बिक जाय यह बात वह सहन न कर सकी। उसे चन्दूलाल सेठ का स्मरण आया जो पाँच सौ रुपये मासिक की सिगार फूंक डालते हैं। किन्तु उनसे रुपये कैसे माँगे ? मणि को मणिकर्णिका का दिया हुआ हार याद आ गया, उसने उसे मारुति को देकर बेच देने का आग्रह किया।

मारुति का बहुत आग्रह देखकर वह उसके यहाँ कुछ दिन रही। दूसरे परिचित लोगों के सम्बन्ध में भी उसने पूछताछ की।

डाक्टर धनेशचन्द्र यहाँ असफल ही रहे जिससे उन्होंने दक्षिण अफ्रीका में मिलने वाली एक नौकरी स्वीकार करके अपनी मातृभूमि को प्रणाम कर लिया था।

रायसाहब गम्भीरलाल रायबहादुर का खिताब पाकर विशेष परिश्रम कर बम्बई सेक्रेटेरियट में पहुँच गये थे। महायोगी महाराज आखिर एक गाँव जैसे इस नगर से ऊबकर परदेश में अधिक भोले, अधिक श्रद्धालु और अधिक धनी लोगों की खोज में वहाँ निकल पड़े थे।

मणि चारों तरफ से निराश होकर जैसे आई थी वैसे ही खाली हाथ बम्बई वापस आ गई।

: २ :

सेठ चन्दूलाल रंगून से लौटकर बोरीबन्दर पर उतरे। उनके साथ एक मित्र भी थे, मुचकुन्द भी उनके साथ लौट आया था। उन्हें कचहरी कुछ विशेष कार्य से जाना था जिससे उन्होंने मुचकुन्द से कहा—'मुचकुन्द ! मिस्टर चौधरी को घर ले जाओ; मैं जरा कचहरी और आफिस होकर आता हूँ। अपने तार का जवाब न आने से चिन्ता हो रही है।'

'बहुत अच्छा !'

मिस्टर चौधरी को विदा कर सेठ पहले आफिस गये। बम्बई में पैर रखते ही सेठ को मणि का आकर्षण सताने लगा। यात्रा में भी उसकी स्मृति ने साथ नहीं छोड़ा था। इस समय तो हृदय उसे देखने के लिए छटपटा उठा। वश चलता तो वे सीधे घर जाते; किन्तु काम कुछ आवश्यक आ पड़ा था जिससे लाचार हो गये। सेठ के हृदय में पार्वती के लिए कुछ विचार नहीं आए। उनके लिए घर एक ऐसा जंजाल था जिससे जान छुड़ाना कठिन था। गृहिणी, माँ-बाप द्वारा गले में डाली हुई तौक थी। पार्वती जब से आई उसी समय से सेठ बाहर घूमने के शौकीन हो चुके थे। सेठानी ने भी वही मार्ग ग्रहण किया, किन्तु वह अच्छे चाल-चलन की थी जिससे मन्दिर की धूल छानने लगी। ऐसे शुष्क संसार से उसका मन ज्यों-ज्यों खिंचता गया यह सेठ के मन से गिरती गई और वह उनके लिए भार स्वरूप हो गई। धीरे-धीरे सेठ ने उसे बिलकुल ही तो भुला दिया।

जो वस्तु नहीं मिलती, उसके पाने के लिए मोह अधिक बढ़ता है। जैसे-जैसे मणि सेठ को दूर रखती थी वैसे ही वह उसके पीछे पागल हो रहे थे।

कार्यालय और कचहरी का काम समाप्त कर नियमानुसार जितनी तेज मोटर चलाई जा सकती थी उतनी तेजी से चलाकर चन्दूलाल घर पहुँचे। उन्हें विश्वास था कि मणि दरवाजे पर खड़ी मिलेगी। कल्पना शक्ति द्वारा उसके पहरावा आदि का स्वप्न भी वह देख चुके थे। मोटर से उतर कर सेठ ऊपर अपने घर में गये पर वहाँ मणि नहीं मिली। अपनी बैठक में गये; वहाँ भी मणि को न पाकर वे कुछ निराश हुए साथ ही अपनी लज्जालु, गँवार

स्त्री को अपने मित्र मिस्टर चौधरी के साथ बात करते हुए देखकर उन्हें विस्मय भी हुआ। कितने ही वर्षों से पार्वती ने इस बैठक में पैर रखना ही छोड़ दिया था। चन्दूलाल क्या करते हैं, किससे मिलते हैं, इसकी भी वह परवाह नहीं करती थी। सेठजी के आश्चर्य का ठिकाना न रहा जब उसने देखा कि उसकी स्त्री पुराने पहरावे के बदले नये जमाने की वेषभूषा में थी और उसके चेहरे पर भी लाली आ गयी थी।

सेठजी के आने पर सेठानी उठकर जाने लगीं। बैठो न ?' सभ्यता के ख्याल से सेठ ने कहा।

'मैं भोजन का प्रबन्ध कराऊँ।' कहकर सेठानी चली गई। आश्चर्य के जरा कम होने पर उसका चेहरा शर्म से ढक गया। मिस्टर चौधरी ने पार्वती के साथ बातचीत कर उसके सम्बन्ध में क्या धारणा की होगी ? यह मूर्ख मन्दिर जाने वाली, चिड़चिड़े मिजाज वाली स्त्री की गँवारी बातचीत से वे अपने मन में क्या सोच रहे होंगे। वह बहुत ही लज्जित हुए और चौधरी को यहाँ भेजने पर पछताने लगे। भला अब मिस्टर चौधरी की दृष्टि में उनकी क्या इज्जत रह गई होगी ? शरमाते-शरमाते सेठजी ने मिस्टर चौधरी की ओर देखा।

'मिस्टर चन्दूलाल ! मुझे यह मालूम नहीं था कि आपकी पत्नी इतनी चतुर हैं ?'

सेठ चौधरी का मुँह ताकने लगे। उन्हें ऐसा प्रतीत हुआ मानो बंगाली उनकी हँसी उड़ा रहा है, किन्तु चौधरी के मुँह पर इस प्रकार का कोई भी चिह्न नहीं था।

'क्यों ?'

'हिन्दी-प्रचार सम्बन्धी उनके विचार सुनने लायक हैं।'

चौधरी होश में बातें कर रहा है या पागल का प्रलाप, यह सेठ समझ नहीं सके। पार्वती और हिन्दी का प्रचार ! या तो मिस्टर चौधरी पागल हो गये हैं या उसकी पत्नी ही कोई दूसरी आगई है। उन्हें और मिस्टर चौधरी को क्या खबर कि मुचकुन्द के छोटे कमरे में बिखरे हुए ज्ञान और देशभक्ति के कुछ फूलों को मणि ने बीन लिया था और उनमें से कुछ पार्वती को भी दिया

था। थोड़े ही समय में ग्रामोफोन की तरह सुनी हुई बातें दोहराना पार्वती को आ गया था।

चन्दूलाल ने अधिक कुछ पूछने का साहस नहीं किया। मित्र की यदि उनकी पत्नी के सम्बन्ध में ऐसी धारणा हो तो वैसी ही बनी रहने देना उन्होंने उचित समझा।

भोजन के समय वह दोनों को अपने सामने बैठाकर भोजन कराने लगी; यह देखकर सेठ और भी अधिक चकित हुए। निस्टर चौधरी स्त्री-सम्मान के अधिक पक्षपाती थे; जिससे वह सेठ की अपेक्षा सेठानी से ही अधिक बातें करते थे, सेठानी उनकी बातों का उत्तर देती, जरा हँसती और सेठ को भी अपनी बातों का समर्थन करने के लिए बाध्य करती थी। चौधरी सम्मान के साथ बातें करते थे। सेठ में तो बोलने की समझ ही बाकी नहीं रह गई थी जिससे मणि की तलवार के समान चलने वाली जबान की छाप पड़ी रहने से पार्वती बड़ी ही सरलता-पूर्वक बातें कर रही थी। सेठ को आश्चर्य हुआ। इस मूढ़ स्त्री की होशियारी पर मणि के प्रभाव की छाप थी। उसकी बोली, बातचीत के ढंग और शब्दों का आभास सभी कुछ मणि से प्रभावित था। इस स्त्री में होने वाले परिवर्तन और उस परिवर्तन की करने वाली—इन दोनों के सोच विचार में सेठ को कुछ और सूझ नहीं पड़ा। भोजनोपरान्त चौधरी को थकावट प्रतीत हुई। इससे वह तो सोने चले गये। सेठ को पार्वती की उपस्थिति खटकने लगी। वह बैठक में जो बैठी सो उठने का नाम ही नहीं ले रही थी। पहले के समान वह अपने कमरे में क्यों नहीं जा रही है ? सेठ ने रवाना होते ही एक तार अपनी प्रेमिका के पास भेज दिया था और उसके यहाँ जाने के लिए वह कपड़े पहनने लगे।

'अब जाओ जाकर आराम करो !' सेठ ने कहा।

सेठानी ने उसकी ओर देखा। उसकी आँखों में आज नवीन प्रकार का भाव था। बिजली के चकाचौंध करने वाले प्रकाश में सेठानी का तेजपूर्ण मुख-मण्डल आज पहली बार चन्दूलाल को आकर्षक प्रतीत हुआ। सेठ ने पतलून पहनी। कुछ देर तक पार्वती देखती रही। फिर शरमा कर केवल इतना ही बोल सकी, 'आप…।'

सेठ की भृकुटी चढ़ गई। यह बला यदि लगी तो कैसे जीवन बीतेगा? सेठ ने कोई उत्तर नहीं दिया। उन्होंने कोट पहना, मन में बाहर जाने पर जरा क्षोभ हुआ किन्तु यहाँ बैठे हुए कैसे समय व्यतीत करें? पार्वती का आचार-व्यवहार बदल गया तो क्या वह अपना नियम छोड़ दें! खूंटी पर से सेठ ने अपना हैट उठा लिया।

'मैं बाहर जा रहा हूँ।' ओंठ दबाकर दृढ़ता से सेठ ने कहा।

सेठानी कुछ कहने जा ही रही थी। उसक काँपते हुए ओठों पर कुछ शब्द आ भी गये; परन्तु वह कुछ बोल न सकी।

सेठ हाथ में हैट लेकर घुमाने लगे। उनका मन हिचकिचा रहा था। पार्वती ने शर्म और निराशा के भँवर से उभरने की चेष्टा करते हुए पूछा—'कब तक आइयेगा?'

"कुछ ठीक नहीं है!' कहते हुए सेठ जी बाहर निकल गये।

पार्वती का हृदय बैठ गया। एक आँसू टपक कर उसकी छाती पर गिर पड़ा।

जीवन में पहली बार रात्रि में घर छोड़ते समय चन्दूलाल सेठ के मन में पश्चात्ताप हुआ। पहले सदैव जब कभी थकावट अथवा बीमारी के कारण घर पर रहना पड़ जाता था तब वह पिंजड़े में बन्द जंगली तोते की तरह असन्तोष से छटपटाया करते थे। आज ऐसा मालूम होने लगा कि मानो उस जंगली तोते को पिंजड़े में रहने की आदत-सी पड़ गई है।

कार चौपाटी पर से ले चलने की आज्ञा दी। उन्हें ऐसा लगा कि खुली हवा सेवन किये बिना कांदे-वाड़ी जाना असम्भव-सा है।

वहाँ से कांदेवाड़ी गये, जहाँ पर भाड़े वाली सुन्दरी उनकी बाट जोहती बैठी होगी। यदि बाट जोहती बैठी न हो तो? पार्वती बाट देखती होगी? इतने वर्ष नहीं, आज क्यों उसे क्षोभ हुआ? क्या मेरी अनुपस्थिति में किराये की सुन्दरियाँ दुःखी होती होंगी? मैं न आता तो क्या कांदेवाड़ी वाली उसके लिए इतनी उत्सुक होती जैसे पार्वती?

तुरन्त उसका ध्यान आज पार्वती में हुए नवीन परिवर्तद की की ओर गया। वह इतनी चतुर आज ही हुई या पहले से थी? यह ज्ञान उसमें कहीं

से आया ? क्या मणि ने दिया ? मणि का स्मरण आते ही सेठ की विचार धारा दूसरी ओर बहने लगी। वह उस पर विजय प्राप्त नहीं कर सके।

आज यदि मणि को यह मालूम हो जाय कि मैं अपनी पत्नी को छोड़ कर कांदिवाड़ी में भटक रहा हूँ तो क्या कभी उस पर विजय प्राप्त हो सकेगी ? मनुष्य का स्वभाव विचित्र है। वह भूल गया कि मणि दर-दर मारी-मारी फिरने वाली विधवा है; जिसे सन्तुष्ट कर अपनी बनाने के लिए वह छटपटा रहा था, वही मणि आज उसके मन में सत्ताधारी देवी बन गई। वह क्या कहेगी ? क्या सोचेगी ? श्रद्धा, प्रेम और भक्ति लोहे को भी कंचन सा दिखाती है बनाती है; वह पत्थर को प्रतापी देवाधिदेव की महत्ता अर्पण करती है पत्थर और लोहे में इससे अन्तर नहीं पड़ता बल्कि उसे देव और कंचन मानने वाला स्वयं महत्ता प्राप्त बन जाता है। दर-दर भटकने वाली मणि को आदर्श रूप मानकर हृदय की श्रद्धाञ्जलि अर्पण करने से, देवी रूप में आराधना करने से मणि में कोई अन्तर नहीं हुआ बल्कि सेठ स्वयं सात्विक और शुद्ध बन गया।

उनकी मोटर कांदिबाड़ी में खड़ी रही। ऊपर से आने वाली तबले की ताल कान में पड़ी। एक मीठी तान सुनाई दी। वह कांप उठा। मणि क्या कहेगी ? पार्वती घर पर बैठी हुई जाने क्या सोचती होगी।

उसे याद आया कि आते समय पार्वती की आंख में से एक अश्रुबिन्दु गिरता हुआ दिखाई दिया था। वह बिंदु दृष्टि के सामने आगया, जिससे उसके हृदय में आघात लगा। सेठ का गला बैठ गया, कांदिवाड़ी मानो उसका गला घोंटने लगी।

'पेस्तन !' उसने शोफर को पुकारा।

'जी सरकार !'।

'मोटर घर ले चलो !' सेठ ने रुंधे हुए गले से कहा।

सेठ का यह आदेश सुनकर ड्राइवर पेस्तन को आज बड़ा आश्चर्य हुआ। अपनी श्रवण शक्ति पर उसे संशय भी हुआ। 'क्या कहा सरकार ने ?' वह पूछ बैठा।

'घर ले चलो।' सेठ ने झल्ला कर कहा।

पेस्तन मोटरकार को घर की ओर ले चला। मोटर के खड़ी होने पर सेठजी

विचारों से जागे, किन्तु उतरने का साहस नहीं हुआ। पार्वती क्या कहेगी ? घर कैसा लगेगा ? मोटर से उतरने की इच्छा नहीं हो रही थी। उसे वापस ले चलने का मन होने लगा।

इतने में ऊपर से पार्वती की आवाज सुनाई दी।

'पेस्तन, क्या सेठ जी नहीं आये ?'

अब बाहर निकलने के अतिरिक्त सेठ के लिए छुटकारा नहीं था। मोटर से उतर कर घर में जायें या नहीं इसका वह विचार करने लगे और बिना किसी निर्णय पर पहुँचे ऊपर चढ़ने लगे। पार्वती ने दरवाजा खोला।

'क्यों, तुम अब तक जाग रही हो ?'

'आपकी बाट जोह रही थी।' सेठानी ने उत्तर दिया।

हैट खूँटी पर टाँग कर, बिना कुछ कहे आरामकुर्सी पर सेठ लेट गये। उन्हें नहीं सूझा कि क्या कहें। घड़ी में टनटन कर बारह बजे।

'हे भगवान !' सेठ जी बोले, 'आज मुझे हो क्या गया है !'

'क्या हुआ है ?' कहकर धैर्य की मूर्ति के समान सामने खड़ी सेठानी ने पास आकर पूछा।

'तेरा सिर ! आज मैं बदल गया हूँ या तू ?'

पार्वती ने साहसपूर्वक कुछ कहना चाहा; किन्तु लज्जा ने मुँह बन्द कर दिया। आखिर काँपती हुई आवाज से वह बोली—'हम दोनों।'

सेठ उसे आँखें तरेर कर देखने लगे। काँदेवाड़ी की सुन्दरी का स्मरण कर; वहाँ अपने न जाने पर विचार करने लगे।

'चलिए उठिये, कपड़े उतारिये। रात अधिक हो गई।'

'तुमको यह मंत्र सिखाया किसने ?' बिछे हुए जाल को तोड़ना चाहता हो इस प्रकार सेठ ने पूछा।

'आपने !'

'झूठी बात है, यह उस अभिमानी की करतूत है।' कह कर सेठ जी उठे और पार्वती के पीछे-पीछे भीतर चले गये।

: २ :

मुचकुन्द इस समय अपने छोटे-से कमरे में बैठा हुआ गहरे विचार में मग्न था। वह निराशा से सामने पड़ा हुआ पत्र ठीक उसी प्रकार देख रहा था जिस प्रकार एक निराधार माता दीनता-पूर्वक अपने बालक पर पड़ने वाले क्रूर, घातक अत्याचारी की तलवार को देखती है। उसके भावनामय जीवन पर यह पत्र एक नया ही असर डाल रहा था, उसे रोकने की उसमें शक्ति या साहस न था। पत्र पाणु पंड्या का था, उसके प्रत्येक अक्षर से काल के समान मुचकुन्द भयभीत था।

'चिरंजीव बेटा मुचकुन्द लिखा…से प्राणशंकर पंड्या का आशीर्वाद बंचना। आगे यहां सब कुशलमंगल हैं, आशा है तुम भी कुशल-पूर्वक होगे। आगे समाचार यह है कि तुम रंगून से अब लौट आये होगे और सेठ वगैरह सब लोग आनन्द से होंगे! बेटा तुम्हें मालूम हो कि बहू अब बड़ी हो गई है और उसके मां-बाप विदा करा ले जाने के लिए बराबर कह रहे हैं, परन्तु तुम्हें तो यहाँ आने की फुरसत ही नहीं मिलती। इसलिए बम्बई पहुँचते ही लिखना ताकि मैं बहू को बम्बई पहुँचा जाऊँ। इति!'

केवल पिता के आधीन होकर मुचकुन्द ने विवाह किया था। इस आधीनता का भविष्य में क्या परिणाम होगा इस पर उसने कभी विचार भी नहीं किया था। पर अब वह घबरा उठा। उसे बार-बार यही विचार आ रहे थे, किन्तु वह उन्हें दूर करता जाता था।

'बहू?' जिस लड़की को उसका पिता इस नाम से सम्बोधित करता था उसे उसने केवल एक बार देखा था। शादी के समय का तामझाम में सिकुड़ कर बैठा हुआ वह गुड़िया जैसा ढांचा सजीव होकर आज उसके सामने आकर खड़ा हो गया। वह अपने अज्ञात व्यक्तित्व को विकसित कर उसके जीवन की सहचरी बनेगी। उस तेरह वर्ष की अनदेखी गँवार छोकरी के साथ बोलना पड़ेगा, बैठना पड़ेगा, इसका उसने कभी विचार भी नहीं किया था। इस विचार मात्र से मुचकुन्द के रोंगटे खड़े हो गये।

उसे स्त्री कैसी मिलेगी, इस पर उसने कभी विचार ही नहीं किया था।

अंग्रेजी लेखकों द्वारा कल्पित महान् नायिकाएँ उसके मन में घर किए हुए थीं। अपनी स्त्री का आदर्श इसी आधार पर उसने बना रक्खा था, और उसके रूप का आदर्श ग्रीक शिल्पकारों की अद्भुत मूर्तियों पर था। आज तक एक ही स्त्री से उसका संसर्ग हुआ था, वह मणि थी जो स्वरूपवती, चतुर तथा वाक्पटु थी। यह 'वहू' भी क्या वैसी ही होगी ? यह प्रश्न उसे अत्यन्त गहनतम प्रतीत हुआ।

उसके अन्तर में मणि ने स्थान बनाया था। उसके जाते ही उसके जीवन में घोर निराशा आई थी। उसके बदले में यह अनजान रास्ते ही चलने वाली जैसी छोकरी से क्या मुझे सम्बन्ध स्थापित करना होगा ? प्रेम और सह-जीवन के विचारों का यह परिणाम, यह संसार, मुचकुन्द काँप उठा। यह संयोग किसने कराया, माँ दलाल, बाप दलाल, और यह है परिणाम। क्या इसी का नाम विवाह है ? पुराना दबा हुआ जोश मुचकुन्द में फिर जोर मारने लगा। परन्तु दूसरे ही क्षण वह निराश हो गया और आत्मघात करने तक की बात सोचने लगा।

मुचकुन्द के हृदय में एक दूसरा विचार भी उठ रहा था। वह बालिका कैसी होगी ? उसके विचार कैसे होंगे ? उसकी आशाएँ क्या-क्या होंगी ? क्या वह पतिव्रता होगी ? उसे छोड़ना, दुःख देना उसकी आशाएँ भंग करना, यह क्या मुझे—एक सुशिक्षित व्यक्ति को शोभा देगा ? उसने सोचा कि पत्नी को सुख न देना धर्म-विरुद्ध होगा। मैंने अपना कर्त्तव्यपालन नहीं किया है। किन्तु भविष्य में भी न कर ऐसी भूल करके एक निर्दोष बालिका की गर्दन पर छुरी चलाना क्या उचित होगा ? इसी प्रकार के सोच-विचार में आधी रात बीत गई। आखिर थक कर, पराजित हो वह सो गया और बाकी बची हुई रात दुःखद स्वप्नों में ही बिता दी।

मुचकुन्द चाहे जो सोचता हो किन्तु पाणु पंड्या तो इसी सोच में थे कि कब उसका पुत्र बम्बई से गाँव आयेगा। मुचकुन्द के कलकत्ते से लिखे हुए पत्र से उसने अन्दाजा लगाया कि आज मुचकुन्द बम्बई पहँच गया होगा।

पाणु पंड्या में एक महान् सेनाधिपति को सुशोभित करने वाली तीव्र और तेजी से विचार करने की शक्ति थी। मुचकुन्द मूर्ख है, वह गाँव आने

वाला नहीं है। दिनोंदिन उसकी बहू बड़ी होती जायगी। मुचकुन्द के सम्बन्ध में लोगों में कुछ न कुछ गोलमाल तो चलता ही रहता है। इससे यदि मुचकुन्द आने में विलम्ब करे तो फिर कुल की इज्जत पर पानी फिर जाने की सम्भावना है। यह सब आगापीछा सोच कर बहू को लेकर वह बम्बई जाने का निश्चय करके दूसरे ही दिन रेलगाड़ी पर सवार हो गए।

और मुचकुन्द दो दिनों में भी किसी स्पष्ट निर्णय पर नहीं पहुंच सका। तीसरे दिन प्रातःकाल बिछौने पर पड़ा हुआ वह अनेक भयंकर यातनाओं का अनुभव कर ही रहा था कि इतने में किसी ने जोर से दरवाजा खटखटाया। आँखें मींचते हुए उसने दरवाजा खोला। सामने अपने पिता को खड़ा देखा। साथ में एक नाटी मोटी-सी बालिका भी थी जो घूंघट काढ़े हुए थी। मुचकुन्द काँप उठा। पहले तो उसे स्वप्न सा प्रतीत हुआ; जिससे उससे अपनी आँखें मल कर फिर ध्यान से देखा। तब उसे विश्वास हो गया कि यह सपना नहीं बल्कि कठोर सत्य है। उसका हृदय जो पहले से ही बैठा जा रहा था और भी बैठ गया।

पाराु पंड्या ने घर का प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया। बहू को यहाँ पहुँचा कर वह चन्दूलाल सेठ के यहाँ पहुँचे और सपत्नीक मुचकुन्द को भोजन के लिये निमन्त्रण दिलवा दिया। मुचकुन्द बिलकुल हतज्ञान था। केवल उसका हृदय-धड़क रहा था। उसके मस्तिष्क में दो प्रतिकूल विचारों ने भयंकर संग्राम मचा रखा था। एक ओर तो स्त्री के प्रति उसकी घृणा और दूसरी ओर थी उसकी कर्त्तव्यपरायणता।

रात में मुचकुन्द दफ्तर से थका-मांदा आया। उसे ऐसा लग रहा था कि उसके जीवन,नाटक का आज नवीन अंक प्रारम्भ होने वाला है। पहले जैसा साहस अब उसमें शेष नहीं रहा था। मणि के जाने के पश्चात् वह निराश हो गया था। फिर भी जिस प्रकार हो सके यह नया अंक आज आरम्भ न होने देने का मार्ग वह ढूंढ़ने लगा।

परन्तु मार्ग······। अन्त में केवल एक ही मार्ग दिखाई दिया—घर का। वह घर गया। पाराु पंड्या भोजन करके रात में घर वापस जाने वाले थे। सेठानी संध्या समय मुचकुन्द की बहू को घर पहुँचा गई थी।

मुचकुन्द घर आने पर घबराया। अपरिचित लड़की आज उसके घर में थी। असमंजस में ऊपर चढ़ कर उसने दरवाजा खटखटाया। उहकी बहू ने दरवाजा खोला और भय से रसोई घर में भाग गई। निर्दोष स्त्री के हृदय पर किसी तरह की भी चोट न करने का मुचकुन्द ने निश्चय कर लिया था। इसी निश्चय के साथ यह भी विचार आया कि वह विचारी किस उत्साह से, किस उत्सुकता से बैठी हुई मेरी बाट जोह रही होगी। यह विचार उसका बिलकुल भ्रममूलक प्रमाणित हुआ। कपड़ा उतारते हुए मुचकुन्द ने एक गहरी साँस ली। उसकी कुछ समझ में नहीं आ रहा था। वह पुस्तक लेकर बैठ गया। पुस्तक इसी प्रसंग पर जहरीले नाग के समान चुभने वाली थी। वह थी जान स्टुअर्ट मिल की स्त्रियों की आधीनता।,

कुछ समय तक मुचकुन्द पढ़ता रहा। फिर सिर ऊपर उठा कर उसने देखा। दरवाजे में उसकी दुल्हन खड़ी थी। भोजन का समय हो गया था; किन्तु यह कहने के लिए उसका मुँह नहीं खुल रह था।

'क्या भोजन का समय हो गया ?' मुचकुम्द ने पूछा।

कुछ हाँ जैसा उत्तर आया। वह उठा और गूंगे के सामन एक शब्द उच्चारण किए बिना भोजन करने के लिए चल पड़ा। सामने वह बालिका घूंघट काढ़े बैठी हुई भोजन परोसती गई। मुचकुन्द में बोलने का साहस नहीं था। भोजन आधा कच्चा, आधा पक्का और कतई बेस्वाद था।

मुचकुन्द उठा और अपने भाग्य को कोसने लगा। इसी का नाम कर्त्तव्यपरायणता है ! उसने क्रोध से अपना ओंठ काट लिया। इस प्राकर कैसे चलेगा ? 'कर्त्तव्यपरायणता' शब्द को अनेक बार बढ़ा-बढ़ाकर कहने लगा।

फिर एक उपन्यास लेकर घह लैम्प के निकट बैठ गया और उसे पढ़कर अपना क्षोभ कम करने का प्रयत्न करने लगा। क्षोभमें विचित्र प्रकार से उसका हृदय खिन्न होता प्रतीत हुआ। कर्त्तव्यपरायणता का मनमें से विस्मरण होता हुआ-सा लगा। पुस्तक पढ़ते हुए लेखक की समर्थ लेखनी के प्राबल्य में वह चला। पन्ने के बाद पन्ने उलटने लगा। उसका मन सच्चे संसार को भूलकर कल्पना शक्ति के रमणीय प्रदेश में पहुंच गया। भारत को छोड़कर वह विलायत में जा पहुँचा। उपन्यास-लेखक द्वारा चित्रित अद्भुत युवतियाँ उसके

मन में समाने लगीं । इंगलैण्ड का स्वतन्त्र, साहसी युवक स्वयं वह हो ऐसा भ्रम उसे होने लगा । भ्रमण के संसार में वह चक्कर लगाने लगा ।

पुराने लैम्प की बत्ती एकदम तेज हो गई और चिमनी तड़से बोली । उसके टूटने के शब्द के साथ मुचकुन्द का ध्यान फिर कल्पना-संसार से हटकर वास्तविक संसार में आ गया । उसने बत्ती धीमी की । और पुस्तक पुनः उठाने लगा था कि एक काली, मोटी-कुछ नाटी बालिका को सामने खड़ा देखकर पहले तो एकदम मुचकुन्द चौंक उठा । जिस संसार में वह पहले विचरण कर रहा था वह सच्चा था—या जो उसके सामने खड़ा था वह ?

उसका चित्त व्याकुल हो उठा । उसकी कल्पना चूर-चूर हो गई । संसार ही सच्चा है ! उसके गले में साँस जैसे रुक गई हो । बालिका हँस रही थी; हँसी दबा रही थी । उसकी छोटी-छोटी आँखें चमक रही थीं । मुचकुन्द को दुःख हुआ, आँखें भर आईं । आँखें बन्द करके वह कर्त्तव्यपरायणता को स्मरण करने लगा :

'बैठ जाओ !' मुचकुन्द बड़े परिश्रम से बोला । वह बालिका बैठ गई । बैठने में कोई लावण्य नहीं था । मुचकुन्द को मणि की याद आई जिसका उसने कुछ ही महीने पूर्व इसी घर में स्वागत किया था । उसके स्थान पर यह ! ,तुम्हारा नाम तो काशी है न ? थोड़ी देर में मुचकुन्द ने पूछा । बालिका की हँसी रुकी नहीं । मुचकुन्द को अपना नाम लेकर सम्बोधन करते हुए देखकर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ मुह पर हाथ रखकर हँसी को रोक रखने मात्र की भी शिक्षा उसे नहीं मिली थी । मुचकुन्द जरा गम्भीर हुआ । काशी ने सिर हिलाकर प्रश्न का मूक उत्तर दिया ।

मुचकुन्द ने सोचा कि शायद मेरे प्रश्न करने का तरीका उसे कुछ विचित्र लगा हो । रोने की इच्छा हो रही थी; फिर भी हँस कर उसने पूछा—'बम्बई शहर अच्छा नहीं लगता होगा क्यों ?

'आग लगे इस शहर में ! मैं तो थक गई ।'

'क्यों, इतना बड़ा है !'

'ऊँह, मुआ इतना बड़ा है !'

मुचकुन्द को इस बोलने के ढंग से कँपकँपी छूट गई । उसको आँखें डबडबा

आई । क्या यही उसकी धर्मपत्नी है ?

'तुम्हें कुछ पढ़ना-लिखना आता है ?'

'ऊँहुँ !' काशी ने सिर हिलाया ।

'किसी ने पढ़ाया नहीं ?' मुचकुन्द को लगा कि उसके हृदय की धड़कन बंद हो जायगी ।

'मेरी माँ कहती थी···।' आगे वह कह न सकी ।

'क्या ?'

'कि पढ़े तब भी बारह मन लकड़ी चाहिए और न पढ़े तब भी ।'

मुचकुन्द की तो बोलने की शक्ति ही समाप्त हो चली।

'अब तुम्हें पढ़ना चाहिए ।'

काशी ने सिर हिलाया ।

'क्यों ?'

'पढ़ी-लिखी स्त्रियाँ जल्दी रांड हो जाती हैं ।'

मुचकुन्द अपने मन में बड़बड़ाया—'यदि मैं कल मरता होऊँ तो आज ही मर जाऊँ तो अच्छा हो ।' उसके कपाल पर पसीना चुहचुहा आया । हृदय मणि को व्याकुल हो स्मरण कर रहा था । उसके चले जाने से ही यह परिणाम हुआ । इसे वह मन ही मन बड़बड़ा रहा था ।

क्या पूछा जाय और क्या उत्तर दिया जाय, यह मुचकुन्द की समझ में नहीं आया । वह व्यग्र हो उठा । यह घर, यह स्त्री, यह संसार सब छोड़ कर भाग जाने की इच्छा हुई । इस कमरे की हवा विषैली लगने लगी । इस बालिका का संसर्ग मृत्यु के समान लगा । मुचकुन्द के मन की स्थिति ठीक वैसी ही हो रही थी जैसे कि प्लेग वाले घर में से भागने वाले चूहे की होती है । बहुत देर तक वह ऊपर देखता रहा । इसके साथ क्या बातचीत की जाय और इसके साथ क्या संसार में सहजीवन और सहधर्माचरण हो सकता है ! मुचकुन्द में साहस बहुत कम हो गया था और अब तो जो कुछ था वह भी समाप्त हो गया ।

उसकी दृष्टि काशी की ओर गई । जहाँ वह बैठी थी उसी के पास एक

पेटी रखी हुई थी जिस पर सिर रखकर वह ऊँघ रही थी। मुचकुन्द यह देख नहीं सका।

मुचकुन्द भीतर ही भीतर मन में आक्रन्द करने लगा। जिस माँ-बाप ने यह तौक गले में पहना दी थी उसे शाप देने लगा। अपने भाग्य को ही दोषी ठहराया।

भयंकर प्रसंगों के आ जाने पर उसका सामना करने के लिए मुचकुन्द में कितना चारित्र्यबल था, कैसा था, इसका प्रमाण उसके मन में उठने वाले विचार थे।

इस समय वह पूर्णरूप से जड़ हो गया। न तो उससे भागा गया, न सिर उठाकर सामने देखा गया और न बुद्धिमता से काशी को सुधारने का प्रयास करने का निश्चय कर सका, बल्कि वह सचमुच रोने लगा।

सामने पिता द्वारा निकाले हुए नक्षत्रों के शुभ मुहूर्त में परिणीता धर्मपत्नी ज़मीन पर खुर्राटे ले रही थी।

: ४ :

मणि बम्बई लौट आई। उसका आना पार्वती को अधिक अच्छा नहीं लगा। स्वाभाविक ईर्ष्यावश मणि को वह दूर रखना चाहती थी। उस बेचारी को बहुत वर्षों के बाद पति-सुख प्राप्त हुआ था। इससे निर्धन यदि अपने साधारण धन की चिन्ता करे तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? किन्तु चन्दूलाल सेठ उसे भूल जाने वाले व्यक्ति नहीं थे जिससे बाध्य होकर सेठानी को उसका आदर सत्कार करना पड़ा!

मणि ताड़ गई। वह स्वयं भी रहना नहीं चाहती थी; किन्तु महायोगी महाराज के पन्जे से मणिकर्णिका को छुड़ाने के लिए उसका रहना अनिवार्य था। पार्वती भी यह जानती थी; इससे पहले जैसे ही भाव से उससे व्यवहार करने लगी।

मणि ने आकर मारुति द्वारा बैरिस्टर के पास रुपया भिजवा दिया क्योंकि मोघाराम की अपील की सुनवाई का समय नजदीक आता जा रहा था। मणि ऐसा करके स्वार्थ और परमार्थ दोनों साधने का प्रयत्न कर रही थी। जब तक वह भटकती फिरती थी, उसे प्रतिक्षण अपने विरुद्ध खड़े होने वाले नवीन शत्रु का उसे पता न था तब तक तो कोई बात नहीं थीं, किन्तु सुखमय जीवन के प्रारम्भ होने के साथ ही साथ पुत्री-वियोग का दुःख उसे कष्टप्रद प्रतीत होने लगा था। मुचकुन्द के साथ रहते समय अकेलेपन की वेदना अवश्य कम होने लगी थी, किन्तु अब फिर अकेली पड़ जाने से उसकी वेदना ने उग्र रूप धारण कर लिया था।

मणि के आने पर सेठ चन्दूलाल जरा क्रोध से मुंह फुलाकर उससे बर्ताव करने लगे। उसका तिरस्कार कर मणि ने कैसा हीरा हाथ से खो दिया है, यह बात वह मणि को जताना चाहते थे। किन्तु मणि पर इस हथकण्डे का कोई असर होते न देख वे कुछ नबे।

मणि के सामने इस समय पहला प्रश्न महायोगी महाराज से भेंट करने का था। मणि को पता लगा था कि वह महात्मा वालकेश्वर में एक धनाढ्य शिष्य के बंगले को पावन कर रहे हैं। श्रद्धालु भक्त ने पूरा बंगला उन्हें सौंप दिया था जिससे मणिकर्णिका के वहीं होने की सम्भावना थी।

मणिकर्णिका सम्बन्धी गोष्ठी में मणि भी सम्मिलित हुई। महायोगी महराज किस बंगले में उतरे हुए हैं यह खोज निकालने का भार उसने अपने ऊपरा लिया।

इसके बाद सेठ, पार्वती और मणि विचार करने लगे कि किस युक्ति से महायोगी के पंजे से मणिकर्णिका का उद्धार किया जाय। अन्त में यह निश्चय हुआ कि तीनों व्यक्ति महाराज के प्रवचन में जायें और मणि घूंघट काढ़कर बैठे ताकि महात्मा उसे पहचान न सकें। सेठ ने महायोगी से भेंट करके बातचीत करना स्वीकार किया।

यह वार्त्तालाप चल ही रहा था कि मुचकुन्द सेठ के पास किसी दफ्तर के काम से आया। मुचकुन्द जानता था कि मणि सेठ के यहाँ बराबर जाती है। इसी से वह सेठ के यहाँ बहुत कम आता था, परन्तु मणि को भुलाने में वह

समर्थ नहीं हो सका था। उसे वह रात दिन याद आया करती थी। उसे छोड़कर वह चली गई जिससे मुचकुन्द के मन में उसके प्रति क्रोध भी था। कोई मार्ग अपना क्रोध प्रदर्शन करने का उसे दिखाई नहीं दे रहा था। जिससे वह मन ही मन घुला करता था।

मुचकुन्द सीधे सेठ के पास गया और जो कुछ पूछना था वह पूछकर लौट गया। उसने मणि की ओर आँख उठाकर भी नहीं देखा परन्तु मणि ने देखा। मुचकुन्द का सूखकर काँटे के समान शरीर, उसकी निस्तेज आँखें और पुट्ठे, निकली हुई पीठ देखकर उसका कलेजा मुंह को आने लगा। काशी का आना उसे मालूम नहीं था। इससे उसे ऐसा मालूम हुआ मानों उसके ही लिए ही मुचकुन्द ऐसा घुल-घुलकर सूखा जा रहा है। यह विचार आते ही उसके हृदय में पीड़ा होने लगी, उसे मुचकुन्द की भलमनसाहत और बुद्धिमता याद आई क्यों उसने उसे छोड़ दिया ?

'क्यों मणि क्या विचार कर रही हो ? कोई नया मार्ग सूझा क्या ?' सेठ ने आकर पूछा।

'जी नहीं, मैं तो इस पर विचार ही नहीं कर रही थी। मैं तो आपके कर्मचारी को देख रही थी।'

'अभी तक तुम उसे भुला नहीं सकीं ?'

'कुछ वस्तुएँ ऐसी होती हैं जो हृदय पर अंकित हो जाती हैं। उनका केवल स्मरण मात्र ही नहीं रहता कि उन्हें भुला दिया जाय। मालूम होता है आप उचित वेतन नहीं देते। यदि इनकी तबीयत अच्छी न हो तो बाहर घूम आने दीजिए।' मणि ने कहा।

'तो मैं क्या कीर्तन करूं ?' सेठ ने पूछा।

'यह तो इसके बाप ने इस बेचारे को दुःखी किया है। न मालूम कैसी पत्नी लाकर इसके गले में मढ़ दिया है। मैं समझती हूं इसी से यह दुःखी है।' सेठानी ने सफाई दी।

मणि सेठानी का मुंह देखने लगी। आश्चर्य से उसने पूछा—'क्या इनकी पत्नी आ गई है ?

'हाँ, देखने लायक है !' सेठ ने कहा।

इसके पश्चात् बहुत देर तक मणिकर्णिका के सम्बन्ध में बातें होती रहीं, किन्तु मणि का चित्त तो मुचकुन्द के पीछे दौड़ रहा था।

मणि आत्म निन्दा करने लगी। मैं ही मुचकुन्द के दुःख का कारण हूँ, उसकी व्याधि की जड़ हूँ। मैंने ही उसके सरज विद्यार्थी जीवन में विघ्न डालकर यह भयंकर स्थिति पैदा की है। उन्हें पिता के क्रोध का पात्र बन कर उसकी आशाएँ नष्ट की हैं और स्वयं उन्हें दुःखी करके अब निश्चिन्त सुखमय जीवन व्यतीत कर रही हूँ। पुनः अपना मुख शीशे में देखकर कहने लगी—मेरे ही कारण मुचकुन्द अधमुआ हो रहा है जिस प्रकार पहले अपने भाग्य को वह कोसा करती थी वैसे ही फिर कोसने लगी।

मणि घर गई किन्तु चैन नहीं पड़ा। पहले की जलन ताजी हो गई। पहले की सदैव रहने वाली अकेलेपन की वेदना उसे पुनः सताने लगी। उसका हृदय मुचकुन्द के पीछे दौड़ने लगा, इस संसार में वही केवल उसका मित्र था। उसने मुचकुन्द को जीवन में कभी भी कष्ट न पहुँचाने का वचन दिया था। अब मुचकुन्द ने बाप की आज्ञा मानकर विवाह कर लिया है। अब उससे मिलने में क्या दोष है, उनकी पत्नी कैसी है, उसे देखकर अपनी उत्कण्ठा दूर करने में क्या पाप है ? ज्यों-ज्यों इस प्रकार, वह विचार करती गई त्यों-त्यों मुचकुन्द के प्रति आकर्षण बढ़ता गया और उससे भेंट करने में उसे कोई भी दोष प्रतीत नहीं हुआ।

: ५ :

महायोगी महाराज के बँगले पर सेठ चन्दूलाल और पार्वती के साथ मणि भी गई। गाड़ी से उतरते समय मणि ने घूंघट में मुख ढक लिया था ताकि वह पहचानी न जा सके।

यहाँ भी स्त्री-पुरुष ठसाठस भरे हुए थे। महाराज का प्रभाव बम्बई में भी ज्यों-का-त्यों बना हुआ था। मणि क्षण भर के लिए अपने होश-हवास में

नहीं रही। अनेक मास पूर्व जिस लालसा से, जिस लगन से वह महाराज के मन्दिर में बैठती थी वही लगन आज उसमें फिर उत्पन्न हो उठी बीच में हुए अनुभव स्वप्नवत् प्रतीत होने लगे। महाराज की वाट जोहते समय जैसे उसका हृदय धड़का करता था वैसे ही आज भी धड़कने लगा।

थोड़ी देर में वहाँ बैठे हुए भक्तजन शान्त हो गये और पहले के समान ही स्वस्थ, शान्त, तेजस्वी महात्मा वही खड़ाऊँ पहने हुए आये और पहले ही की तरह उन्होंने मृदु मुस्कान से भक्तों का अभिवादन स्वीकार किया। मणि घूंघट के भीतर से इस दुराचारी व्यक्ति को देख रही थी।

महाराज बैठे। उन्हें अर्घ्यदान दिया गया। हार पहनाया गया। स्थल भिन्न, समय भिन्न, भक्त भिन्न—किन्तु महाराज वही के वही थे। प्रवचन प्रारम्भ हुआ—वही उच्च विचार और वही मनुष्य हृदय पर प्रभुता का जादू! मणि निराश हुई। महात्मा को परास्त नहीं किया जा सकता। महात्मा की आँखें मानों मणि को ही देख रही थीं, उनकी आवाज मानों उसी को सम्बोधित कर रही थी! क्या सभी श्रोताजनों को ऐसा ही लगता होगा? प्रवचन पूरा हुआ। आरती हुई। महाराज अपने निजी कमरे में गये। मणि ने ध्यान-पूर्वक वहाँ बैठी हुई स्त्रियों को देखा किन्तु उनमें से कोई भी मणिकर्णिका जैसी नहीं लगी। सेठ चन्दूलाल महाराज से मिलने के लिए उनके निजी कक्ष में गये। मणि निराश होने लगी।

बड़े कमरे में अब चार पुरुष और तीन स्त्रियाँ रह गई थीं। उनकी ओर उसने दृष्टि डाली। एक परिचित पुरुष को मणि ने देखा—यही महाराज का विशेष नौकर रघुनाथ था। मणि उसके पास गई।

'क्यों रघुनाथ! अच्छी तरह तो हो न?'

रघुनाथ ने लापरवाही से ऊपर देखकर उत्तर दिया—'हाँ।'

महाराज की नौकरी करके वह भी सत्ताधारी बन गया था।

'मुझे तुमने पहचाना नहीं? मैं मणि हूं; महाराज के यहां थी! भूल गये क्या?'

'बहन! यहाँ इतने भक्त आते हैं कि कुछ याद नहीं रहता।'

मणि ने देखा कि वह सफेद झूठ बोल रहा है क्योंकि अभी उसे देख कर

वह चौंक पड़ा था।

'क्यों ? मैं तो वहाँ सात-आठ महीने रही।'

'मुझे याद नहीं है, मैं कुछ वृद्ध और भुलक्कड़ हो गया हूँ।'

सेठ चन्दूलाल बाहर आ गये और भक्तजनों को भीतर प्रवेश कराने के लिए रघुनाथ चला गया।

'सेठजी ! इस मनुष्य द्वारा कुछ काम बन सकता है।' धीरे से मणि ने कहा।

'यह कौन है ?'

यह महाराज का खास आदमी है, किन्तु यह मेरे हाथ नहीं आ रहा है।

'अच्छी बात है, सेठानी को लेकर तुम चलो। मैं इसे हिला-डुलाकर देखता हूँ।' मणि वहाँ से चली गई।

तीन घण्टे बाद चन्दूलाल वापस आये। पार्वती और मणि उनकी प्रतीक्षा में बैठी थीं। सेठ का चेहरा उतरा हुआ था।

'क्यों, क्या कर आये ?' पार्वती ने पूछा।

'कुछ नहीं, पहले तो रघुनाथ बड़ी सफाई से तोते की तरह उड़ने लगा आखिर तीन सौ रुपये पर पानी फेरने से वह हाथ में आया। तुम्हारा महात्मा पक्का धूर्त है।'

'क्यों, क्या हुआ ?' मणि ने पूछा।

बम्बई जैसे स्थान में भला वह कणिका को ला सकता है ? इसने तो उसे यहाँ आने के पूर्व ही यात्रा करने के लिए भेज दिया है। उसके साथ दो-तीन और भक्त स्त्रियाँ हैं यही वह तीन सौ रुपये के बदले बता सका।

'कहाँ यात्रा पर गई, यह कुछ पता लगा।'

'कहा कि अभी तो काशी गई हैं। पीछे महाराज जहाँ कहेंगे वहाँ जायेंगी। महाराज बड़ा ही काइयाँ आदमी है।'

'मैं पहले ही कह रही थी। उसे परास्त करना सरल काम नहीं है।'

तीनों अपनी असफलता पर एक दूसरे का मुंह देखने लगे।

: ९ :

मणि सेठजी के घर से चली तो उस समय पिछली रात्रि में उत्पन्न विचार फिर ताजे हो गये। मुचकुन्द बेचारा किस स्थिति में होगा? वह अपने घर पहुँची किन्तु उसे वही विचार सताने लगे। एक बार मुचकुन्द के घर जाना उसे उचित प्रतीत हुआ। उस दिन उसका चेहरा कैसा पीला, रक्तहीन और उदास था।

विचार कार्य में परिणत हुआ। वह मुचकुन्द के घर की ओर चली। रास्ते में पीछे लौट चलने की इच्छा होते हुए भी दृढ़ता रख कर वह पहुँच ही गई। ऊपर चढ़कर दरवाजा खटखटाया! स्थिति का स्मरण आया। यदि सभी बातें यथावत् चलती गई होतीं तो मैं इस समय इस घर की मालकिन होती और मुचकुन्द मेरा होता; किन्तु उन्हें पतित, दुःखी होने से बचाने के लिए मैं स्वयं छोड़कर चली गई। परन्तु मुचकुन्द दुःखी ही बना रहा। विधि की विडम्बना कैसी विचित्र है!

काशी ने दरवाजा खोला और सामने एक सुन्दर स्त्री को खड़ी देखकर मुँह बिचका दिया।

'मुचकुन्द भाई हैं?' मणि ने पूछा। काशी का रूप और रंग देखकर उसकी खिन्नता और भी बढ़ गई।

'नहीं, नहीं हैं।' कह कर दरवाजा बन्द करने का काशी ने प्रयत्न किया!

'मैं उनसे मिलने आई हूँ।' कहकर मणि आगे बढ़ी और दरवाजे में खड़ी हो गई। 'मैं मुचकुन्द की मित्र होती हूँ।'

काशी आश्चर्यचकित होकर देखती रह गई।

ससुराल आने के समय पीहर वालों ने उसे सब तरह से तैयार कर दिया था। उसका पति लम्पट और व्यभिचारी है, पारसिन अथवा मुसलमानिन के सम्बन्ध से उसे दो लड़के हुए हैं, जिन पर वह अपनी सब कमाई उड़ा देता है। इसी प्रकार की गाँव में अनेकों किवदन्तियाँ उसके छोटे-से मस्तिष्क में भर दी गई थीं। इसी ज्ञान-भण्डार के परिणामस्वरूप पति को किस प्रकार वश में

करना चाहिए उसकी अनेक युक्तियाँ उसके पास थीं उन्हीं युक्तियों का उपयोग मुचकुन्द पर वह करना चाहती थी ! आज मानो उसे सत्य स्पष्ट दिखाई दिया। यह सुन्दरी स्त्री मुचकुन्द की मित्र बन कर आई है। काशीकुंवर के छोटे मस्तिष्क में अभिमान की आँधी उठी। वह स्वयं गृहिणी है फिर यह आने वाली कौन ? उसने अपना तीर छोड़ते हुए कहा—'क्या काम है ?'

मणि ने अन्दर आकर चारों तरफ एक नजर डाल कर गहरी साँस ली। जिस कमरे को वह शीशे के समान स्वच्छ रखती थी आज उसकी यह दशा ?

'काम क्या है ? केवल मिलना चाहती थी। तुम्हारा नाम क्या है ?'

'काशी। तुम्हारा ?' उसने जरा तीखेपन से पूछा।

'मणि। अब मुचकुन्द भाई मालूम होता है बहुत देर करके आते हैं।'

काशी को क्रोध आ गया। मणि की चमकीली सुन्दर आँखों को फोड़ डालने की इच्छा हुई। मुचकुन्द भाई देर से आवें या जल्दी—इसमें इसके बाप का क्या जाता है ?

पति ने जिस पारसिन या मुसलमानिन को रखकर छोड़ा है, उनके मिल जाने पर किस प्रकार उसे दबाऊँगी इसका विचार काशी ने कुछ दिन पहले से ही कर रखा था। इन विचारों में से एक को प्रयोग में लाते हुए उसने कहा—'तुम्हारा पति क्या करता है ?'

मणि चौंककर उसकी ओर देखने लगी। काशी झगड़ा करना चाहती है। उसे हँसी आई। इस मूर्ख को क्या पता कि यदि वह मुचकुन्द को छोड़कर न गई होती तो वह मुचकुन्द के साथ विवाह करके भाग्यशालिनी नहीं बन सकती थी।

'बहन ! मेरे पति मर चुके हैं।' यथासाध्य नम्रता से मणि ने कहा—'तुम कब आई ?'

'बहुत दिन हुए। तुम क्या अपने पीहर में रहती हो ?'

'मेरे ससुराल या पीहर में कोई नहीं है। मैं अकेली ही रहती हूँ, और पाठशाला में पढ़ाती हूँ।' दृढ़ता से मणि ने कहा। केवल मुचकुन्द से मिलने के लिए वह समय काटना चाहती थी। 'अच्छा, किन्तु मुचकुन्द भाई की तबीयत इस समय ठीक नहीं दिखाई देती, कुछ बीमारी है क्या ?'

'कुछ तो नहीं हुआ है, बड़े यमराज के समान तो हैं।'

काशी का गंवारपन और अधमता देखकर मणि की खिन्नता और भी बढ़ गई। बेचारे मुचकुन्द की सुशिक्षित आत्मा यह भोंडा सत्य किस प्रकार सहन करती होगी! मणि इस प्रश्न का भी उत्तर देने में निष्फल रही। इससे काशी को किस प्रकार प्रसन्न किया जाय इसका विचार वह करने लगी।

'तुम बाहर निकलती हो?'

'सच्च पूछो तो यहां मुझे किसी का मुंह ही नहीं सुहाता।'

मणि का मुंह बन्द हो गया। इसका भला वह क्या उत्तर दे! इतने में किसी के पैर की आवाज सुनाई दी। 'लो, मुचकुन्द भाई आ गये।' मणि ने कहा।

'तुमने कैसे जान लिया?'

उत्तर में मणि ने केवल हंस भर दिया। उसके हंसने से काशी आपे से बाहर हो गई। इतने में मुचकुन्द ऊपर आ गया और मणि उठकर उसकी ओर देखने लगी।

'क्यों मुचकुन्द भाई! कैसे हो?'

'कौन मणि...बहन!' मुचकुन्द ने घबरा कर कहा।

'जी हां मन में आया कि बहुत दिनों से मिली नहीं हूं चलकर जरा मिल आऊं।

मुचकुन्द मणि से क्रुद्ध था; किन्तु इस समय बसे देखकर उसे ऐसी सान्त्वना मिली कि वह अपना सब क्रोध भूल गया। फिर भी उसकी आवाज में कुछ रुखाई आ गई—'अहोभाग्य!'

'इसमें अहोभाग्य किस बात का? मेरा जी तो कभी से आने को कर रहा था। मुझे काशी भाभी को देखना भी तो था।'

दरवाजे में खड़ी-खड़ी काशी बड़बड़ाई, 'मेरी तेरी भाभी और मरी तू!'

मुचकुन्द नीचे देखने लगा। मणि ने फिर पूछा—'आपकी तबीयत कुछ ठीक नहीं लगती?

'अब तो तबीयत ही नहीं रही।' मुचकुन्द ने खिन्नता से कहा।

मणि क्या उत्तर दे, यही, विचार कर रही थी कि काशी बोल उठी—

'चलो, अब खाने उठोगे कि योंहि बैठे गप्प छाँटते रहोगे।'

मुचकुन्द का रक्त खौल उठा। क्रोध से होंठ काँपने लगे, वह कुछ कहने जा रहा था; परन्तु रुक गया।

'अब मैं चलती हूँ, आपको देर हो रही है।'

'क्या भोजन किया ?'

'नहीं, अब जाकर करूँगी।'

'तब यहीं क्यों नहीं भोजन कर लेतीं ?' मुचकुन्द की आवाज में ऐसी दीनता थी कि मणि को नहीं सूझा कि क्या जवाब दे।

आज कोई तुम्हारी राह तो देखता न होगा ?' वह फिर बोला।

'मेरी राह देखने वाला कौन बैठा है ?' जरा हँसकर मणि ने कहा।

'ठहरो तब मैं कह आऊँ।' कहकर मुचकुन्द बगल की छोटी कोठरी में गया।

मणि खड़ी रही। बगल की कोठरी कोई अलग कमरा नहीं था; बल्कि बीच से काठ का टट्टर खड़ा कर एक कमरा दो भागों में विभक्त कर दिया गया था। वहाँ जो कुछ बातचीत होती, वह बाहर बिल्कुल साफ-साफ सुनाई देती थी।

मुचकुन्द भीतर गया। काशी भँवें चढ़ाकर रौद्र मूर्त्ति बनी बैठी हुई थी। उसके अपरिपक्व मस्तिष्क में एक निश्चय स्पष्ट और निश्चल था कि कोई दूसरी स्त्री घर में आये तो उसके सामने नम्र नहीं होना है। मुचकुन्द की सुशिक्षा का उसे ज्ञान नहीं था, वह उसे हर प्रकार से यथा-शक्ति तिरस्कार दिखाने का प्रयत्न करती थी। उसमें एक प्रकार की दृढ़ता थी। आगे चलकर घर वाली बनने के उसमें अनेक गुण थे। उन गुणों को वह प्रदर्शित करना चाहती थी। मुचकुन्द कुछ कहे इसके पूर्व ही वह जोर से बोल उठी।

'इस चुड़ैल के लिए मेरे घर में कोई जगह नहीं है !' काशी ने अपनी छोटी आँखों से कटाक्ष करते हुए कहा। मुचकुन्द मूढ़-सा खड़ा रहा। बाहर मणि खड़ी शब्द सुन कर अपना ओंठ चबाने लगी।

'जरा धीरे बोल।' मुचकुन्द के धीमे स्वर में दीनता थी।

'किसलिए ? मैं क्या इसकी दबैल में बसी हूँ ? मेरे घर में यह सब नौटंकी नहीं चलेगी।'

'यह तू कह क्या रही है ?' दांत पीसता हुआ किन्तु धीरे से मुचकुन्द बोला।

'नहीं, यह नहीं हो सकता। भले ही मुझे मार डालो।' काशी खड़ी हो गई हो ऐसा मणि को लगा।

'हूँ ?'

मुचकुन्द काशी के पास जाता हुआ सुनाई दिया। काशी मानो पीड़ा से 'अररर' करती हुई सुनाई दी। मणि की सांप छछुंदर जैसी दशा थी। उसे कोई रास्ता नहीं सूझ पड़ा। जिस घर में आदर न हो वहाँ ठहरना अच्छा नहीं लगा और बिना कहे हुए जाना भी उसे सभ्यता के विपरीत लगा।

थोड़ी देर में मुचकुन्द बाहर आया। उसका चेहरा अपमान और क्रोध से तमतमा रहा था। मणि तुरन्त बोल उठी—मुचकुन्द भाई ! आज मुझे जाने दो।

मणि ने उपरोक्त बात इस प्रकार अनजान बन कर कही मानो उसने कुछ सुना ही न हो 'मेरे यहां एक सज्जन आने वाले हैं, ठहरने से देर हो जायगी।'

मुचकुन्द आग्रह करने जा ही रहा था परन्तु काशी क्रोधित हो एक कोने में बैठी है इसका खयाल कर मणि से अधिक आग्रह न करना ही उचित समझा। इससे अपनी कुछ तो इज्जत बची रह जायगी। वह खिसियाकर हँसते हुए बोला—'सचमुच ?'

'हाँ, फिर किसी दिन आऊंगी। चलती हूं, बहुत देर हो गई है।'

मणि की आँखें भर आईं। मुचकुन्द की इस दीन हीन स्थिति पर उसे दया आ रही थी। उसकी सच्ची दशा का ज्ञान मणि को हो गया है जिससे वह ऐसी दया दिखा रही है। यह देखकर मुचकुन्द के मन में उसके प्रति जो प्रेम था वह और भी दृढ़तर हो गया। उसे बिदा करने वह बाहर तक आया।

'मणि बहन ! अवकाश मिलने पर फिर अवश्य आना।'

'आप ही किसी समय मेरे यहाँ आ जयें तो कैसा रहे ? इस समय निकलना मेरे लिए जरा कठिन होगा।'

'अच्छा, ऐसा ही सही।'

मणि के जाने के पश्चात् बहुत देर तक वह उसे देखता रहा। रत्न खोकर उसे पत्थर मिला। मणि के प्रति उसके मन में जो रोष था वह अदृश्य हो गया। भावना की तरंगें अधिक सबल हो गईं और अपने जीवन पर असंतोष बढ़ा।

कैसी उसकी स्थिति है—कैसी अधमता—कैसा पत्नी का सुख है ! आज उसके वैवाहिक जीवन का दुःख हजार गुना होकर उसके हृदय को बेधने लगा। खड़े-खड़े थक जाने पर उसने ऊपर जाने का विचार किया। ऊपर किसके लिए किसके…घर…कौन से सुख के लिए ? जीवन किसके लिए ? वह बड़बड़ाया, मणि, ! मणि ! यदि तूने मेरा कहना मान लिया होता…!' एक गहरी साँस लेकर ऊपर जाने का विचार उसने त्याग दिया और घूमने के लिए वह निकल पड़ा ताकि थक जाने पर रात में कम से कम नींद तो आये।

दो-तीन घंटे घूमने के पश्चात् वह घर आया। काशी दरवाजा बन्द करके सो गई थी। जिसका संस्कार तुच्छ होता है उसका जीवन सरल और सुखी होता है। निर्जीव वस्तुएँ इधर-उधर पहाड़ के समान पड़ी रहती हैं और उनमें कुछ भी विचार उत्पन्न नहीं होते ; किन्तु जीवन वाली वस्तु जब निर्जीव होती है तो उसमें कीड़े पड़ जाते हैं।

: ७ :

अब घर नरक के समान लगने लगा। पत्नी को देख कर उसे कँपकँपी आ जाती थी। उसके साथ अब एक दिन, एक रात, एक क्षण भी काटना कठिन हो गया। अब तक जैसे-तैसे वह निर्वाह करता चला जा रहा था किन्तु अब उसके धैर्य ने जवाब दे दिया। ऐसी स्त्री के साथ उठना-बैठना, खाना-पीना आदि करने की अपेक्षा मर जाना उसे हजार गुना अच्छा लगा। ऐसे ही विचारों में तल्लीन वह लेट गया, किन्तु नींद उसे जरा भी नहीं आई।

सवेरे उठते ही वही विचार फिर उठने लगे। मणि का निमन्त्रण याद आया। उसका मन मणि को देखने के लिए, उसके साथ बातचीत करने के लिए लालायित हो उठा। ज्यों-ज्यों काशी को देख करके उसके प्रति उसकी घृणा बढती गई त्यों-त्यों यह इच्छा भी प्रबल होती गई। उसे छोड़ कर मणि के पास जाने की उत्कण्ठा हुई।

जिस मनुष्य का मुंह अच्छा न लगे, जिसकी बोली विष-तुल्य लगे, जिसके साथ रहने से अंग-अंग काँप उठे उसके साथ रहना नरक के समान है। मुचकुन्द इस समय नरक में पड़ा था। कर्त्तव्यपरायणता की दृष्टि से, अपने मन में उस नरक को स्वर्ग बनाने का प्रयत्न कर रहा था। किन्तु नरक है तो आखिर नरक ही! जनक विदेह जैसे नरपुंगव तो इसे देख कर व्याकुल हो ही उठे; यह विचारा तो सीधा-सादा ग्रैजुएट था!

वह इस नरक से भागना चाहता था, मणि का सुखमय संग करना चाहता था। यह सब होते हुए भी कर्त्तव्यपरायणता की रक्षा करनी थी और नरक में रहना भी था। जीवन विचित्र है, इच्छाएँ उससे भी अधिक विचित्र होती हैं।

घर पर काशी को देखकर उसके हृदय की ज्वाला भभक उठी। इस स्त्री के साथ जीवन कैसे बीतेगा? उसने विचार किया कि थोड़े दिन के लिए इसे यदि नैहर पहुँचा दूं तो हृदय की जलन शान्त हो जायगी, किन्तु यह हो कैसे? वह निराश होकर बैठ गया।

'वह तुम्हारी···कुब्जा फिर मिली थी क्या?' घर में पैर रखते ही काशी ने प्रश्न किया।

यह सुन कर मुचकुन्द चौंक उठा। उसकी आंखें क्रोध से लाल हो गईं। टेबुल पर शीशे का कागज दबाने का पेपरवेट रखा हुआ था; उसे उठा कर उसने मारा। काशी जरा हट गई जिससे वह दीवाल में जाकर टकराया। दूसरे ही क्षण मुचकुन्द को होश आया—उसने स्त्री को मारा। उसका संस्कार, उसकी शिक्षा, स्त्रियों के प्रति उसकी श्रद्धा—यह सब कहाँ गयी? अधम के साथ वह भी अधम हो गया।

वह उठा और कपड़े पहन कर बाहर घूमने निकल गया। भूख लगने पर कुछ उसने खाया और अधिक रात तक क्षुब्ध आत्मा को शान्त करने के लिए समुद्र तट पर बैठा रहा। कुछ शांति मिलने पर घर आया।

दूसरे दिन शरीर कुछ भारी मालूम हुआ। उसका शरीर दिनोंदिन सूखा तो जा ही रहा था उसमें यह एक व्याधि और भी आ गई। काशी को उसकी कुछ भी परवाह नहीं थी। वह निश्चिन्तता पूर्वक भोजन-शयन करती और पति का दुःख देख कर उसकी विजय हुई है ऐसा समझ कर प्रसन्न होती

थी। उस दिन भी मणि की और मुचकुन्द का भयंकर आकर्षण हुआ किन्तु उस पर विजय प्राप्त कर वह घर आया। आज बाहर जाने की शक्ति बिलकुल नहीं रह गई थी। उसका अंग-अंग टूट रहा था। न तो काशी ने कुछ पूछा और न उसने कुछ कहा। मुचकुन्द ने कह दिया कि आज मैं भोजन नहीं करूँगा अतः काशी ने जाकर निश्चिन्तता-पूर्वक भोजन कर लिया।

तीसरे दिन बिछौने पर से उठने में उसे दुर्बलता मालूम हुई फिर भी अपने जीवन के प्रति घृणा हो जाने से वह दुर्बलता व कष्ट को तुच्छ समझ कर उठा। उसने समझा कि भगवान यमराज उस पर कृपा कर उसे लेने के लिए आ रहा रहे हैं। इसी समय उसे मणि का पत्र मिला।

प्रिय भाई मुचकुन्द,

दो दिन से आपकी प्रतीक्षा कर रही हूं किन्तु आप आये नहीं। आज अवश्य पधारने की कृपा करें।

आपकी—

मणि

पत्र छोटा होने पर भी मुचकुन्द को गम्भीर और अर्थ-युक्त लगा। उसकी रग-रग में रक्त अधिक प्रबलता से बहने लगा। वह अधिक समय तक दृढ़ता नहीं रख सका। निर्बलता के सामने उसकी दृढ़ता पिघल जाने की तैयारी में थी, इस पत्र ने अग्नि का काम किया। वह उठकर मणि के घर चला।

मुचकुन्द के लिए पग-पग चलना कठिन हो गया और मणि के मकान की सीढ़ी चढ़ने से तो उसके होशहवास ही जाते रहे। उसकी सांस फूलने लगी कुछ क्षण हाँफता हुआ वह वहीं बैठ गया। थोड़ी देर में दम लेकर वह उठा और मणि की कोठरी खोजते हुए उसके सामने जाकर खड़ा हो गया।

उसने दरवाजा खोला और मानो स्वर्ग का द्वार खुला हो इस प्रकार कमरे की स्वच्छता और सादापन देखकर उसे शांति मिली। मणि बैठी एक लड़की को पढ़ा रही थी।

'ओ हो हो ! मुचकुन्द भाई !' कह कर मणि खड़ी हो गई। उसके चेहरे पर लाली दौड़ गई ; उसके होंठ स्वागत के अक्षरों का उच्चारण करते हुए एक-दूसरे से दूर ही रुके रह गये । उसकी आँखें—उसकी तेजस्वी आँखें—हँस

पड़ीं। मुचकुन्द के हृदय पर अमृत की वर्षा हुई। वह थक कर चूर हो गया था जिससे कुछ कहे बिना तकिया के सहारे जाकर बैठ गया। 'विमला' मणि ने अपने पास बैठी हुई बालिका से कहा—'जा, आज छुट्टी है, अब कल आना।'

बालिका उठी और कहीं गुरुजी अपने विचार फिर न बदल दें इस डर से तुरन्त वहाँ से भागी।

'मुझे स्वप्न में भी ख्याल नहीं था कि आप अभी आ जायेंगे। क्या मेरा पत्र मिला ?' मणि ने पूछा।

जवाब में मुचकुन्द ने स्वीकृति सूचक सिर हिला दिया।

'परसों की अपेक्षा आपकी तबीयत आज अधिक खराब मालूम पड़ती है। क्या डाक्टर को दिखाया था ?' जरा चिन्ता में मणि ने पुछा।

'डाक्टर-वाक्टर किसी के पास मुझे नहीं जाना है। मैं जीवन से तंग आ गया हूँ, मुझे तो अब मरना है ? अब जीवन धारण करूँ तो किसके लिए ?'

'ठहरिये, जवाब देती हूँ, जरा चाय तैयार कर लाऊँ।' कह कर मणि उठ गई।

मुचकुन्द ने मणि को बिजली के समान चपलता से जाते हुए देखा। बहुत दिनों बाद आज उसने उसके काम करने के मोहक ढंग को देखा था। चाय मुचकुन्द के पास रख मणि उसके सामने आकर बैठ गई।

'बोलिए, अब क्या कहते हैं ? दूसरी बातें पीछे होंगी, पहले डाक्टर के पास जाकर दिखा आइये।'

'नहीं।'

'क्यों ?'

'मणि बहन, जीने की अपेक्षा मृत्यु मुझे हजार गुनी सरल मालूम पड़ रही है। तुम तो चली गईं। तुमने समझा इससे मेरा उद्धार हो जायगा। देखा ! अपने निर्णय का क्या फल हुआ ?' कटुता से मुचकुन्द ने कहा।

'हाँ, भाई ! सच है, मैंने भी इस परिणाम की कल्पना नहीं की थी।'

'परिणाम ! तुम्हारे जाते ही मेरा सब कुछ चला गया। मेरा जीवन विषमय हो गया है, मैं भावना-भ्रष्ट हो गया। इसके पश्चात् मेरे पिता ने मुझ पर जो-जो अत्याचार किये, सबको मैंने सहिष्णुता पूर्वक सहन किया। मेरी

सभी कल्पनाएँ नष्ट हो गईं, तुम चली गईं। फिर क्यों मैं किसी का सामना करूँ ? किसके लिए करूँ ?'

मुचकुन्द जरा दम लेने लगा। मणि की आँखें केवल आश्वासन देती रहीं। गहरी साँस लेकर मुचकुन्द आप-बीती स्वयं ही सुनाने लगा—

'पीछे मेरा विवाह हुआ, और यह भूत मेरे पीछे लगा। तुमने देखा—कैसा ब्रह्म राक्षस है ? मणि बहन ! मृत्यु अच्छी है। रोम-रोम में कीड़े पड़ जाएँ वह अच्छा, किन्तु ऐसी स्त्री मिलना अच्छा नहीं। मेरी संस्कृति, मेरी इच्छाएँ, मेरी आशाएँ—सभी इस धर्मपत्नी के साथ नष्ट हो गईं। इसकी अपेक्षा मर जाना अच्छा है।' काँपते हुए मुचकुन्द ने कहा।

'भाई ! इतना क्यों व्याकुल हो रहे हो ? तबियत और भी खराब हो जायगी। यह क्या अब बदल सकने जैसी बात है ? अब तो किसी प्रकार निर्वाह करने से ही काम चल सकेगा।'

'किससे निर्वाह करूँ ? वह तो जहरीली नागिन है, क्षण-प्रतिक्षण मेरा खून चूसती जाती है। देखती नहीं हो कि दिनोंदिन मैं मृत्यु के निकट पहुँचता जाता हूँ।'

मणि की आँखें डबडबा आईं। वह इस दर्द की दास्तान को न सुन सकी। 'मुचकुन्द भाई ! क्यों इतना विलख रहे हो ? यह रोग क्या छूटने वाला है ?'

'मरूँगा तब तो छूट जायगा न ? तुम्हें क्या खबर कि यह दुःख कितना दुस्सह है।'

'मुझे खबर नहीं है ? अपने विवाह से मैंने इतना मजा लूटा है कि सब कुछ समझ सकती हूँ।' मणि ने स्नेह से कहा, 'एक प्रकार से या दूसरे प्रकार से समाज ने हम दोनों को असह्य पीड़ा पहुँचाई है। पर किया क्या जाय ?'

'क्या करूँ ? मैं कहाँ जाऊँ—किससे कहूँ ? तुमसे इतना भी कह सकता हूँ, पर कोई रास्ता भी तो सुझाई नहीं दे रहा है।'

'दूसरा रास्ता ही क्या है ?' मणि ने कहा। 'जैसे भी हो निभाना तो पड़ेगा ही, इसके सिवा दूसरा कोई चारा नहीं है।'

'निभाना ! किस लिए ? क्या मैं इसके बाप का कर्जदार हूँ ? आदर्श, सुख, मेरा जीवन सब कुछ नष्ट हो जाय फिर भी मुझे निभाना पड़ेगा ?' मेरा तन

चले तो सब बन्धनों को तोड़ कर फेंक दूं।'

'भाई!' मणि ने सान्त्वना देते हुए कहा। 'मेरे भी ऐसे ही विचार थे। मैं भी ऐसा ही करने के लिए छटपटा रही थी। मैं इन सबका अनुभव कर चुकी हूं। आखिर में देखा कि सबका अन्त दुःख ही है।'

'तब जीने से लाभ? मृत्यु का समय से पूर्व ही क्यों न आलिंगन किया जाय! इन दुःखों को क्यों सहता जाऊं! काशी के साथ जीवनयापन! हे भगवन्!' इन शब्दों के साथ फिर मुचकुन्द कांप उठा।

'दूसरा मार्ग ही क्या है? भाई! मैं तो सब कुछ देख चुकी हूं! पुरुष या स्त्री—जो भी जरा सुशिक्षित हुए कि उन्हें रोग लगा। लम्पट हुए बिना छुटकारा नहीं है। दो प्रकार का जीवन अंगीकार करो, काशी से साथ काशी जैसे हो जाओ। तभी कुछ शांति मिलेगी।'

'जीवन-निर्वाह करने का मैं बहुत प्रयत्न करता हूं, किन्तु काशी के साथ रहना तो असम्भव-सा है!' कहकर मुचकुन्द अति नैराश्य से नीचे देखने लगा।

'भाई! ज्यों-ज्यों इस प्रकार विचार करोगे त्यों-त्यों दुःख अधिक ही बढ़ता जायगा।'

'भाग्य!'

'किन्तु ऐसा करने से लाभ क्या है! इसकी अपेक्षा यह कहीं अच्छा है कि साहस कर अपनी भावनाओं को प्रभावशाली बनाओ। घर की बात बिल्कुल भुला दो। अपने जीवन को एक महान् भावना से पूर्ण कर दो। ईश्वर ने क्या जीवन इसी प्रकार रोने-कलपने के लिए दिया है।

मुचकुन्द ने फीकी नीरस हंसी के साथ कहा—'अब मेरी भावना ही कहां रही! तुम्हारे साथ वह भी कब की चल बसी।'

'मैं कहां गई हूं! मैं तुम्हारी हूं, और सदैव तुम्हारी बनी रहूंगी।'

मुचकुन्द का हाथ अनजान में मणि की ओर बढ़ा; किन्तु उसने तुरन्त उसे पीछे हटा लिया। मुचकुन्द ने गहरी सांस ली, अपना हाथ दूसरे को देने का अब उसे अधिकार ही क्या था!

'बहन! अब आज्ञा दो; बहुत देर हो गई है।'

'हां, हां, पर डाक्टर के यहां जरूर जाना है।'

'देखा जायगा !'

'नहीं, देखा नहीं जायगा, तुम्हें मेरी सौगन्ध !' मणि की आँखें स्नेहार्द्र थीं। मुचकुन्द उस आर्द्रता को देखकर काँपता हुआ-सा मालूम पड़ा। वह मणि की आँख से आँख मिलाने में असमर्थ था। नीचा सिर किए हुए आज्ञा लेकर वहाँ से धीरे-धीरे चला।

मणि उसी के विचार में तल्लीन रही।

: ८ :

काशी सभी ओछी बातों में चतुर थी। उसने मुचकुन्द को पत्र पढ़ते हुए देखा था। जल्दी-जल्दी बाहर जाते हुए और वापस आने पर उसे कुछ कम दुःखी देखा। उसके वहमी स्वभाव में मणि का ध्यान आया। दो और दो चार करते उसे देर न लगी। इस परिवर्तन का कारण मणि ही है उसने उसे तुरन्त ही समझ लिया।

मुचकुन्द अस्वस्थ दिखाई देता था, इसकी उसे चिन्ता नहीं थी। वह आज कुछ कम पीड़ित दिखाई दिया उससे वह क्रुद्ध हो उठी। वह सवेरे आया हुआ पत्र खोजने लगी। मुचकुन्द भूल से उसे वहीं टेबुल की दराज में छोड़ गया था जिससे वह काशी के हाथ में लग गया। उसके लिए 'काला अक्षर भैंस बराबर' था। पड़ोस के एक लड़के को ऊपर बुलाकर उसने वह पत्र पढ़वाया। पत्र का आशय सुनकर वह आपे से बाहर हो गई। वह दुष्टा मेरे पति के साथ पत्र-व्यवहार करे। उसका इतना साहस !

तुरन्त कपड़े बदल कर वह बाहर निकली और चन्दूलाल सेठ के यहाँ पहुँची। वहाँ पार्वती से मणि का मकान दिखला देने के लिए कहा। बात को सच्ची बनाने के लिए यह भी कहा कि मुचकुन्द ही ने उसे वहाँ जाने के लिए कहा है और उसकी पूर्ति में पत्र पर दिया हुआ मणि का पता भी बता दिया। पार्वती को अचम्भा तो हुआ फिर भी उसने एक नौकर उसके साथ कर दिया।

यह मालूम करके कि मणि प्रायः साढ़े तीन बजे घर पर पाठशाला से आया करती है। काशी उसी समय मणि के घर गई।

मणि के मन की स्थिति विचित्र थी। मुचकुन्द आया तो उसका हृदय पूर्ववत् ही स्नेहपूर्ण था, यह देखकर वह प्रफुल्लित थी। परन्तु उसकी अवस्था से वह खिन्न थी। काशी के कारण उसे दुःखी देखकर दयार्द्र बन गई थी। इन सब मानसिक स्थितियों पर स्वच्छ और निर्मल प्रेम का आवरण चढ़ा हुआ था।

काशी को देखकर मणि चौंक पड़ी। इस प्रकार की मिलने की उसे स्वप्न में भी आशा न थी। मणि ने उसका सादर स्वागत किया। उसके आदर को दुत्कारकर काशी अपना क्रोध प्रकट करने लगी। काशी पूर्ण गँवार थी। साथ ही उसे सुशिक्षा भी नहीं दी गई थी जिससे शब्दकोष परिमित और गन्दा था। उसका क्रोध निर्लज्ज और भयंकर था। इन सबका प्रयोग कर उसने मणि को परास्त कर दिया। बिचारी मणि के कानों में कीड़े कुलबुलाने लगे। उसकी आँखें क्रोध और अपमान से अश्रुपूर्ण हो गईं। उसके हृदय को इस स्त्री की अधमता ने मानो दो टूक कर दिया। यदि दूसरे किसी ने इसका आधा भी कहा होता तो उसका वह मुंहतोड़ जवाब दे सकती थी। घर से निकाल बाहर कर सकती थी। किन्तु वह तो मुचकुन्द की पत्नी थी। वह कुछ भी नहीं बोली। सब कुछ चुपचाप सुनती रही और काशी के जाने के बाद जी भर कर रोई।

काशी को शांति मिली। उसने अपनी विजय-पताका फहरा दी थी। उसके मन में मुचकुन्द के प्रति एक प्रकार का तिरस्कार आ गया था जिससे उसे मुचकुन्द का तनिक भी भय नहीं रहा था। उसकी भलमनसाहत मूर्खतापूर्ण है इसका उसे पूर्ण विश्वास हो गया था। रात्रि के समय मुचकुन्द के घर आने पर काशी ने उससे अपनी दिग्विजय का इतिहास आदि से अन्त तक कह सुनाया।

मुचकुन्द दिन भर की थकावट, निर्बलता और निराशा से बिलकुल ही मृतप्राय-सा हो रहा था। उस पर यह सुनकर उसके क्रोध का पारावार नहीं रहा। उसकी सफेद आँखें भयानक प्रतीत होने लगीं। उसकी स्वांस जोर-जोर

से फूलने लगी। पहले तो वह बिना-कुछ बोले हुए दांत पीसता रहा। फिर खड़ा हो गया, उसका हाथ कांप रहा था। टेबुल पर एक रूल पड़ा हुआ था। उसे उसने देखा उठाया और काशी पर जोर से फेंक कर मारा। इस क्रोध के आविर्भाव से उसकी जीभ चुप न रह सकी बदजात! क्या मेरा जी लेने के लिए पैदा हुई है?

दूसरे ही क्षण वह वहाँ से भागा। उसका सिर घूम रहा था। मणि के लिए कहे गये अपमान के शब्द मानो उसे ही कहे गये हों ऐसा उसे प्रतीत हुआ; और काशी का मुंह अब न देखने का उसने दृढ़ निश्चय मन ही मन किया। इसके उपरान्त मणि के मन में कैसे-कैसे विचार आते होंगे, इसका विचार कर उससे क्षमा-याचना करने का संकल्प मन में लेकर वह मणि के घर की तरफ चल पड़ा।

: ६ :

दिन के दुःखद अनुभव से मणि उदास हो गई थी। मुचकुन्द से मिलकर, उसके गृहजीवन में हस्तक्षेप कर उसने उसे दुःखी किया, काशी को क्रुद्ध किया एवं मुचकुन्द के सांसारिक सुख को कलहपूर्ण कर डाला था। जिस प्रकार वह पहले स्वयं अपने को दोष दिया करती थी वैसे ही अब अपने को दोषी समझ हृदय भर जाने से बैठकर आंसू बहाने लगी।

इतने में किसी ने जोर से दरवाजा खटखटाया। उसे आश्चर्य हुआ। इस समय अब फिर कौन? मणि का निडर हृदय भी भयभीत हो गया। उसने धीरे से दरवाजा खोला। थका, हाँफता हुआ, श्मशान से लौटे हुए मुर्दे के समान मुचकुन्द भीतर आकर लड़खड़ाकर जमीन पर बैठ गया। मणि का हृदय उसकी यह दशा देखकर द्रवित हो उठा।

'यह क्या?' उसने अपनी मर्यादा भूलकर मुचकुन्द का हाथ पकड़कर उसे बैठाया। मुचकुंद जोर-जोर से हाँफता हुआ बैठा रहा। मणि ने पानी लाकर

दिया जिसे उसने पिया। कुछ स्वस्थ होने पर उसने कहा—'मणि ! वह अभागी तुम से क्या कह गई ?'

'अररर केवल इसके लिए आपने इतना कष्ट किया ? मुझे तो उसके कथन से कुछ भी कष्ट नहीं हुआ। आप व्यर्थ क्यों अपना चित्त दुःखी कर रहे हैं।'

'मणि बहन ! यह···'

'यह बात ही जाने दो।' मणि ने जरा हँसते हुए कहा। मणि की हास्य-किरणों से मुचकुन्द का क्रोध शान्त हुआ।

'जाने कैसे दूं ? वह तो मेरी जान लेने पर तुली हुई है। जहाँ जाती है वहीं विष बो आती है। ओह ! तुम्हें जाने क्या-क्या कह गई होगी।'

'उसने तो कुछ भी नहीं कहा।'

'कुछ नहीं कैसे ? तुम इसलिए हँसती हो कि मैं दुःखी होऊँगा, किंतु मुझे सब कुछ पता है।'

'क्या पता है ? व्यर्थ के बकवास से लाभ !'

'व्यर्थ ? मुझे पता है कि तुम्हारे हृदय को चोट लगी होगी। उसके शब्द विष-तुल्य रहे होंगे।'

'भाई ! ये विचार अपने मन से दूर कर दो। मुझे अपने जीवन में अनेकों प्रकार के अनुभव हुए हैं उन में एक और सही। आप ही ने न एक दिन एक कहावत कह सुनाई थी, जिसका आशय था कि मकड़ी के थूकते रहने पर भी जुगनू प्रकाश करता ही रहता है।'

'मणि बहन ! मुझे लज्जित मत करो, तुम्हारा हृदय बहुत विशाल है, तुम्हें सब कुछ शोभा देता है।'

'यह बात नहीं है। अन्तर केवल इतना ही है कि अधिक दुःख सहते-सहते मैं दुःख सहने की अभ्यस्त हो गई हूँ और आपका दुःख अभी नया है।'

'नहीं, देखो मन में कुछ बुरा मत मानना। काशी मेरी पत्नी नहीं है बल्कि मेरे पूर्वजन्म की शत्रु है। मैंने तो समझा था कि तुम मुझ से नाराज हो जाओगी और फिर मुझ से बात करना भी पसन्द नहीं करोगी।'

'पागल हो गये हो क्या ? जो कुछ काशी ने कहा, सब मैंने सुना—क्यों ? सिर्फ इसलिये कि वह आपकी पत्नी है नहीं तो क्या आप मुझे पहचानते नहीं !

झोंटा पकड़कर बाहर निकाल देती।'

'मणि बहन ! मैं झूठ नहीं कह रहा हूँ—तुम्हारे मिल जाने से हृदय को जरा शान्ति मिली नहीं तो मैं दुःखी और निराधार हुआ जा रहा हूँ।'

'किसलिए ?'

'बहन ! इस प्रेत के साथ दिन काटना ही बड़ा भयानक प्रतीत हो रहा है।' कह कर मुचकुन्द कांप उठा। कठिन पीड़ा से उसकी आँखों में आँसू भर आये, 'बहन ! लड़कपन में मैंने बहुत से स्वप्न देखे होंगे किन्तु उनमें ऐसा स्वप्न तो कभी भी नहीं देखा था।'

'यह बकझक क्या कर रहे हो ?' मुचकुन्द का ख्याल उधर से हटाने के लिए मणि जरा हँसी। फिर क्रोधयुक्त स्वर में बोली—'कह रही हूँ कि ये सब बातें जाने दीजिए; लेकिन आप सुनते नहीं ! इतना पढ़ने-लिखने के बाद भी जरा-सा साहस नहीं है, थोड़ा सा भी धैर्य नहीं है।'

पर इन शब्दों का असर दूसरा ही हुआ। मणि का तेजस्वी हँसता हुआ चेहरा और उसकी तेजपूर्ण आँखें देखकर मुचकुन्द को अपना दुःख सौ गुना अधिक मालूम पड़ने लगा। वह बोला—'पढ़ा-लिखा ? हाँ ! यदि मैं मूर्ख होता तो गाँव में पुरोहिताई कर पेट-पालन करता होता तब मुझे शायद इतना कष्ट सहन करना न पड़ता और न मुंह से एक शब्द ही निकालता। अपनी काशी बाई को बगल में बैठाकर भव-सागर जैसे-तैसे तर जाता सन्तानें पैदा करके घर भर देता; पर मैं भी पढ़ा-लिखा मूर्ख हूं और मेरा बाप भी मूर्ख है जिसने मुझे पढ़ाया; मेरे स्वप्न में नवीनतम सुन्दरियों की सृजना की। इसके पश्चात् तुम से भेंट हुई। मैं पढ़ा-लिखा हूं इसी से मुझ में साहस नहीं है, मैं सुशिक्षित हूं इसी से यह दुःख सहन नहीं हो रहा है।' बोलते-बोलते मुचकुन्द के मुंह से झाग बहने लगे।

यह शब्द सुनकर मणि को विस्मय हुआ। जैसे विचार उसके मन में उत्पन्न हुआ करते थे, जिस प्रकार स्वयं वह 'पुरुषत्व' के पीछे पागल बनी अपने लिए कोई योग्य पति ढूंढती फिरा करती थी, उसी प्रकार आज मुचकुन्द 'स्त्रीत्व' की खोज में व्यथित हो गया था। दोनों के भाव एक-दूसरे से मिल रहे थे।

मणि की दृष्टि अभी अभ्यास से अधिक पैनी नहीं थी, फिर भी जो ज्ञान उसे प्राप्त हुआ वह एक महान् विश्व-नियम का था। प्रत्येक सुशिक्षित उच्च-संस्कारी पुरुष अथवा स्त्री-हृदय समान साथी के लिए लालायित रहता है। समाज इस लालसा को नियंत्रित करने का प्रयत्न करता है, नीति नियमित करने का प्रयत्न करती है, परन्तु सभी प्रयास निष्फल होते हैं, और जब कभी ये सफल भी होते हैं तब सामान्य स्थूल हृदयों को सुख प्राप्त होता है। परन्तु सुसंस्कृत हृदयों को तो कुचल डालता है। किसे सुख बनाने के लिए? समाज के शरीर रूप केवल स्थूल हृदयों को या समाज के समृद्धि रूप सुसंस्कृत हृदयों को?

ये दोनों समाज के समृद्धि रूप थे। दोनों एक-दूसरे को पाने के लिए व्याकुल थे। नीति और मान-मर्यादा उनके मिलाप में बाधक थे। तब फिर रास्ता क्या था? बहुत सी भूल-भुलैयों में से निकलने का रास्ता नहीं होता; इस समय ये दोनों भी ऐसी ही एक भूल-भुलैयां में फँसे हुए थे।

मणि ने हृदय का क्षोभ दबाते हुए कहा—'भाई! आप काशी को कुछ दिन के लिए मायके भेज दें। इसके अलावा आपके हृदय को शांति मिलने का दूसरा मार्ग नहीं है यदि आप ऐसा न करेंगे तो अवश्य बीमार पड़ जायेंगे।'

'मुझे अब घर जाना ही नहीं है। कल सवेरे बम्बई छोड़कर कहीं चले जाने का निश्चय कर लिया है। मेरे जाने के पश्चात् जिसे जो करना होगा करेगा।'

'जाओगे कहाँ? ऐसी दशा में आपसे क्या कुछ होना सम्भव है! इसकी अपेक्षा तो जो मैंनें उपाय बताया है वह अच्छा है।'

'नहीं-नहीं, अब मैं उस घर में पैर भी नहीं रखूंगा। यह मैं दृढ़ निश्चय कर चुका हूं, अब मुझे किसी की परवाह नहीं है। 'मुचकुन्द की आवाज में बेचैनी थी।

'किसी की परवाह नहीं है?' मणि के मुँह से अचानक ही यह वाक्य निकल पड़ा।

मुचकुन्द ने मणि की ओर देखा; उसके सफेद चेहरे पर थोड़ी लाली दौड़ गई।

'मैं तो तुम्हें इस संसार का जीव नहीं समझता तुम तो मेरे लिये कल्पना-प्रदेश की देवी हो।'

'पर कल्पना-प्रदेश के निवासियों को ऊँघ भी आती है। बहुत देर हो गई, न हो तो आप यहीं सो रहें। मैं आपको कल नहीं जाने दूंगी, एक दिन आप और विचार करें।' मणि ने जरा हँसते हुए कहा।

अपने घर में पर-पुरुष को रखने से दूसरे लोगों की धारणा क्या होगी इस डर से उसने अभी तक यह नहीं कहा था; किन्तु मुचकुन्द को ऐसी मनस्थिति में जाने देना उसने उचित नहीं समझा। इसके लिए चाहे उसे कितना ही निन्दावाद क्यों न सुनना पड़े।

'तुम मुझ से ऐसी बातें न कहो, मैं निर्बल हूँ। मुझ में निश्चयात्मक बुद्धि की कमी है। बहुत विचार करने के पश्चात् मैं इस निश्चय पर पहुँचा हूँ। इस भयंकर स्थिति से छुटकारा पाने का दूसरा कोई रास्ता नहीं है। तुम भी तो एक बार घर छोड़कर भाग चुकी हो।'

मैं एक निराधार अबला थी, आप सशक्त पुरुष हैं। मुझ में और आप में आकाश पाताल का अंतर है। इन सब बातों को छोड़िये, सब का सारांश यह है कि आप शान्तिपूर्वक विश्राम करें। मुझे आपकी बात अथवा निश्चय कुछ भी सुनना नहीं है। आप यहाँ सोवें और मैं रसोई घर में। जिस प्रकार हम पहले रहते थे वैसे ही आज भी रहेंगे।'

'उन दिनों की बात याद मत दिलाओ।' एक ठण्डी साँस लेते हुए मुचकुन्द ने कहा, 'यदि तुमने मेरा कहा मान लिया होता और हम दोनों एक साथ रहते होते तो शायद आज की पीड़ा की सृष्टि ही न हुई होती। अभी-अभी······' क्षुब्ध मुचकुन्द ने डरते-डरते जरा आशा से सामने देखते हुए कहा, 'कहो तो हम दोनों एक साथ रहें और जहाँ से भूल की है वहीं से फिर सुधार लें।'

'यह असम्भव है!' खेद से सिर हिलाते हुए मणि ने कहा, 'भाई! यह नहीं हो सकता। मुझे अपने कल्पना-प्रदेश की वासी ही रहने दीजिये; जब तक मैं ऐसी हूँ तभी तक सोने की लगती हूँ। स्त्रियाँ जब तक शुद्ध रहती हैं तभी तक तो स्वर्ण की हैं, पतित होने पर वह कीचड़ के समान हो जाती हैं। मैं कीचड़ थी, क्या मुझे फिर वैसी ही बनना है!'

'नहीं···नहीं···!' मुचकुन्द बोल उठा। मेरे कहने का यह तात्पर्य कभी भी नहीं है। तुम जैसी हो, वैसी ही बनी रहो—मेरे विचार से तुम सदैव स्वर्ण-प्रतिमा हो; पर अपनी जाति में क्या दो विवाह करने की प्रथा नहीं है ?'

सिर हिलाकर मणि ने कहा—'मेरे साथ विवाह करने के बाद जात-पाँत कैसी ! और यह हो ही कैसे सकता है ! पुरुष को जैसा पतिव्रत अच्छा लगता है वैसे हम स्त्रियों को भी पत्नीव्रत की भूख होती है। अभी तो इसका ज्ञान सम्भव नहीं है पर युवावस्था के बीत जाने और अधेड़ आयु के आने पर समझ पड़ेगा। मैं तो अनुभवों से पराजित हो गई हूँ। नहीं तो मुझे अच्छा नहीं लगता ! आपके साथ रहना तो मुझे मुक्ति से भी अधिक अच्छा लगता है। नहीं-नहीं, समाज के नियम तोड़े जा सकते हैं—किन्तु भला मन के नियम कैसे तोड़े जा सकते हैं !' मुचकुन्द उसकी ओर दीनता से देख रहा था। मणि ने उसके पैर पर हाथ रखकर आश्वासन देते हुए कहा—'मुचकुन्द भाई ! खिन्न क्यों होते हो ! अपने संसार की असारता के हम लोग शिकार हो चुके हैं, पर हम एक दूसरे के हैं इसमें तनिक भी संदेह नहीं है।' मुचकुन्द ने अपने पैर पर पड़ा हुआ मणि का हाथ अपने दोनों हाथों में ले लिया वह क्या करे, उसे कुछ सूझ नहीं रहा। उसने तुरन्त उसे छोड़ दिया।

'अरे !' एकदम मणि बोल उठी। 'आप को ज्वर है। आप का हाथ तो धधकते हुए अंगारे के समान जल रहा है।'

'मुझे खबर है बहन ! मुझे खबर है। मेरे माथे में ऐसा मालूम हो रहा है जैसे कोई हथौड़ा मार रहा है, देखो !' कहकर मुचकुन्द ने मणि का हाथ पकड़कर अपने माथे पर रखा। सचमुच वह टपटप टपक रहा था।

'और ऐसी स्थिति में आप बम्बई छोड़ना चाहते हैं ? वाह जी वाह ! चलिये, बिछौना बिछा देती हूँ; इस समय सोईये।'

'नहीं···पीछे लोग···'

'झख मारेंगे। जो मैं आप से कहती हूँ वह करिये। चलिये कोट उतारिये।' मणि का जो अधिकार मुचकुन्द पर पहले था वह पुनः स्थापित हो गया। उसकी आज्ञा के सम्मुख नत हो कर उसने कोट उतार दिया।

: १० :

सो जाने के थोड़ी देर बाद मुचकुन्द बड़बड़ाने लगा, बड़बड़ाहट बढ़ी। मुचकुन्द का ज्वर तेज था जिससे वह बकझक कर रहा था।

मणि को ठेस लगी। वह तत्परता से मुचकुन्द की सेवा-सुश्रूषा करने लगी और उसके जरा-सा शान्त हो जाने पर पास ही में रहने वाले एक डाक्टर को बुला लाई। पहले उसे कुछ हिचकिचाहट हुई कि मेरी इज्जत पर पानी फिर जायगा किन्तु अपने इस विचार पर उसे हंसी छूटी कैसी मेरी इज्जत? मुचकुन्द—अखिल ब्रह्माण्ड में उसकी ओर स्नेहदृष्टि से देखने वाला एकमात्र व्यक्ति, आधारहीन इस समय मेरे घर पर पड़ा हुआ है। जब मैं भटकती फिर रही थी बिना घरद्वार के एक टुकड़ा रोटी के लिये छप्पर पर कूदी थी, उस समय उसने मुझे आदर सहित दुनियाँ के क्रोध की परवाह न करके अपने घर में रखा था इस समस्त पृथ्वी में उच्चतम निर्मल भावना से प्रेरित होकर तथा निःस्वार्थ प्रेम से मेरे हृदय को परिवर्तित करने वाला व्यक्ति एकमात्र वही था। वही इस समय मेरे घर पर अनाथ पड़ा हुआ है। इसी प्रकार अनेक विचारतरंगें उसके हृदय को उद्वेलित करने लगीं।

सवेरे तक मणि इसी प्रकार बैठी हुई मुचकुन्द की परिचर्या करती रही तत्तपश्चात एक पड़ौसी को बैठा कर वह सेठ चन्दूलाल के मकान पर गई।

अपनी स्त्री के साथ समझौता हो जाने पर सेठ चन्दूलाल का आत्म-संतोष अब बढ़ गया था। उसने यह भी अनुभव किया कि अपना मतलब साधने के पश्चात् झाँसा-पट्टी देकर मणि वहाँ से चली गई है। इससे वह मणि पर भीतर ही भीतर क्रोध से जला करता था। उसका अब उस पर पहले के समान अनुराग भी नहीं रह गया था। इन्हीं कारणों से जब मणि उसके पास मुचकुन्द की अस्वस्थता का समाचार लेकर पहुंची तब उसने उस पर अनेकों प्रकार के दोषारोपण करने आरम्भ किए। मणि ने शान्तिपूर्वक उसकी फटकार सुनने के पश्चात् बहुत अनुनय विनय कर सेठजी को काशी और पाण्डु पण्ड्या को मुचकुन्द की अस्वस्थता की सूचना देने का उत्तरदायित्व अपने सिर पर लेने के लिए विवश कर ही दिया।

वह काम समाप्त कर मणि तुरन्त वापस आ गई। इस बीच में मुचकुन्द फिर अशांत होकर बड़बड़ाने लग गया था। मणि को देखकर वह कुछ शांत हुआ।

घण्टे भर में काशी आ पहुँची और क्रोध से चेहरा बनाए हुए, मणि की ओर तिरस्कार से देखकर मुचकुन्द के बिछौने पर पैताने जाकर बैठ गई। उसकी चिन्ता किए बिना मणि पूर्ववत् उपचार में लगी रही। सन्ध्या समय भोजन बनाकर मणि ने स्वयं भोजन कर लिया किन्तु काशी से जीमने के लिए नहीं कहा। सत्याग्रही काशी ने भूखी रहकर अपना स्वत्व प्रमाणित करने का निश्चय कर लिया था।

दूसरे दिन पाण्डु पण्ड्या भी घबराये हुए, व्याकुल, गाली देते हुए आये। वह कुछ अस्वस्थ दिखाई दे रहे थे। इस वर्ष उनकी आमदनी कम हो गई थी जिससे धनाभाव की निर्बलता उनके हृदय को कष्ट पहुँचा रही थी। ऐसी स्थिति में मुचकुन्द को बीमार पड़ने का अधिकार ही क्या था? यदि बीमार ही पड़ा तो उन्हें खबर देकर बम्बई बुलवाने का ही उसे क्या अधिकार था! ऐसे विचारों में तल्लीन वह आकर मुचकुन्द के घर पहुँचा। वहाँ ताला बन्द देखकर वह और भी उलझन में पड़ा; झुँझलाता हुआ वह सेठ चन्दूलाल के मकान गया। मणि का नाम सुनते ही आगबबूला हो उठा और तुरन्त निर्णय कर लिया कि बस वही चाण्डालिन इन सब उपद्रवों की जड़ है।

सेठ चन्दूलाल का आदमी और मोटर लेकर वह तुरन्त मणि के घर पहुँचा, वहाँ न तो किसी से बोला न चाला, पुत्र की तबीयत कैसी है यह भी पूछने की आवश्यकता उसने नहीं समझी। क्रोध से भभकता हुआ वह मुचकुन्द के पास पहुँचा और सेठ चन्दूलाल के नौकर की सहायता से उसे उठाकर घसीटते हुए ले जाकर मोटर में डाल दिया, और काशी को साथ लेकर मुचकुन्द के घर पर आया। मणि इस अत्याचार से किंकर्तव्यविमूढ़ होकर हतप्रभ-सी खड़ी देखती रह गई और अपनी विवशता पर आँसू बहाती रही।

संध्या तक अपने को वह किसी प्रकार ढारस देती रही, इसके पश्चात् उसका धैर्य जाता रहा। वह उठकर मुचकुन्द के घर पहुँची। पाण्डु पंड्या को उसे बहुत ज्यादा डर लग रहा था कि कहीं वह मेरा अपमान कर घर से

बाहर न निकाल दे। उसका हृदय मुचकुन्द के पास था इसलिए वह रुक नहीं सकी।

उसे देखकर पंड्या जी और काशी दोनों ही लाल-लाल आँखें निकाल घुड़कने लगे। इसकी परवाह न कर मुचकुन्द के पास जाकर उससे जी का हाल पूछने लगी। उसकी आवाज सुनकर सन्निपात में बड़बड़ाता हुआ मुचकुन्द जरा शांत हुआ।

'मणि बहन !' वह जरा शांत स्वर में बोला, 'कौन, तुम बहन। अब, नहीं सहा जाता। तुम सुन नहीं रही हो, यह अभागी मेरा जीवन लेने पर तुली बैठी है। बहन ! यह बात झूठी है। संसार के सुधारकगण मूर्ख हैं। हम इसके बाद मुचकुन्द की आवाज ऐसी आवेशपूर्ण हो गई मानो वह भाषण दे रहा हो। हम जिसे प्यार करें उसके साथ लोग विवाह नहीं करेंगे परन्तु जिसके साथ जबरदस्ती विवाह कर दें उसे अपना प्रेम समर्पण करना ही पड़ेगा'''यह हमारा कर्तव्य है, मूर्ख। नरक के पक्षपाती'''कीड़े'''प्रेम ! आज प्रेम—बहन !' मणि की ओर बड़ी-बड़ी आँखें निकाल कर देखते हुए मुचकुन्द ने कहा, 'अब सहन नहीं होता। मुझे किसी के साथ प्रेम करने का अधिकार ही क्या है ? मैं तो दास हूँ प्रथा का—अपने बाप का—अपनी पत्नी का, मुझे प्रेम का भला क्या अधिकार है ? जिस ऐरे-गैरे के साथ विवाह कर दिया जाय उसे क्या अपना सर्वस्व प्रेम अर्पण कर देना आवश्यक है ? हा'''हा'''हा''' ' मुचकुन्द हँसने लगा।

मणि की आँखों में से छल-छल आँसू गिरने लगे। मुचकुन्द का हाथ अपने हाथों में लेकर वह बोली—'भाई ! जो कुछ आपकी समझ में आवे करियेगा। परन्तु इस समय इतना आप क्यों बोल रहे हैं !'

'बोल रहे हैं ! मैं बोलूँगा, तड़प-तड़प कर मैं क्यों मरूँ ! बहन ! तड़पते-तड़पते मेरी यह दशा हो गई है। मूर्ख—मूर्ख बहन ! तू कहाँ गई थी ?' जरा होश आने पर मुचकुन्द ने पूछा।

'कहीं तो नहीं !'

'कहीं तो नहीं कैसे ! अभी-अभी मैं उस भयानक राक्षसी का स्वप्न देख रहा था।' कह कर फिर मुचकुन्द ने बड़बड़ाना प्रारम्भ कर दिया।

'अगर आप ऐसा करेंगे तो मैं चली जाऊँगी ।'

'तब करूं क्या ?'

'चुपचाप सो जाइये ।'

'निद्रा नहीं आती बहन ! तुम चली जाओगी । मुझे डर लग रहा है । बरन ! ओ बहन ! तुम चली मत जाना ।' कह कर मुचकुन्द रोने लगा ।

मणि को कुछ सूझता नहीं था कि क्या करे । उसने पीछे देखा तो पाणु पंड्या बड़ी-बड़ी आँखें निकाल कर उसे तरेर रहे थे और भीतर खड़ी किवाड़ों की दरज में काशी वाघिन की भाँति घूर रही थी । वह निराश होकर मुचकुन्द की ओर घूमी ।

'भाई मैं नहीं जाऊँगी, अब हुआ ! लो मैं बैठ जाती हूं ।' कह कर वह मुचकुन्द के पास बैठ कर उसके सिर पर बर्फ की थैली रखने लगी । मणि के हाथ के स्पर्श ने अमृत सदृश असर किया । धीरे-धीरे मुचकुन्द का बड़बड़ाना कम हो गया, आँखें बन्द हो गई और थोड़ी ही देर में वह सो गया हो ऐसा प्रतीत होने लगा ।

पीछे से पाणु पंड्या ने मणि को उठ कर बाहर आने का संकेत किया । धीरे से मुचकुन्द का अपनी गोद में पड़ा हुआ हाथ उठा कर नीचे रख कर मणि उठ कर बाहर आई । क्रोध से पाणु पंड्या की आँखें भयंकर दीख रही थीं । वह बोले—'तूने क्या मेरा सत्यानाश करने पर कमर कस ली है ?'

'पंड्या जी ! यह समय क्या वाद-विवाद का है ?' मणि ने पूछा ।

'यह सब किया किसने ! तुझे एक बार तो निकाल बाहर किया ; पर तू तो मेरे पुत्र का पिण्ड छोड़ती ही नहीं ।'

'पंड्याजी ! पंड्याजी ! यह क्या कर रहे हैं ! क्या आप देख नहीं रहे थे । क्या मैं इनका पिण्ड पकड़े हूँ । एक बार आपने दोष लगा कर मुझे निकाल बाहर किया, परिणामस्वरूप आपके बेटे की यह दशा हो गई कि वह तड़प रहा है, फिर यदि निकालियेगा तो क्या होगा सोचा है ?'

'सोचा है, जो हो सो होगा इसमें मेरा क्या जायगा ?'

'मेरा तो जो कुछ जाना होगा जायगा, परन्तु आपका तो पुत्र ही चला जायगा ।'

'इससे तुझे मतलब ? खबरदार ! जो तूने मेरे घर में अब पैर रखा तो !'

मणि हठी थी। उसने दृढ़ता से पंड्याजी की ओर देखा। उसके मुह पर आवेश दिखाई दे रहा था।

'क्या करियेगा ? उसने शांति से पूछा।

'यह तो तुम देख लेना।'

'ऐसा ? मैं मुचकुन्द भाई को इस प्रकार घुल-घुल कर मरने नहीं दे सकती। समझे ? मैं यहीं रहूँगी। अब जो कुछ आप से हो सके कर लीजियेगा।'

: ११ :

पाणु पंड्या चौंके। उन्होंने मणि की दृढ़ आवाज में, उसकी आँख की चमक में प्रभुत्व देखा। बाल सिंह को पकड़ने के लिए आने वाले को जिस प्रकार सिंहनी देखती है वैसे ही वह पाणु पंड्या को देख रही थी। दो-चार पल तक दोनों एक दूसरे की ओर देखते रहे।

'समझे !' थोड़ी देर बाद मणि ने फिर धीरे से कहा।

'आखिर हठ का कारण क्या है ?' नम्र पड़ते हुए पंड्याजी ने मणि से पूछा ! मणि भी उनकी उलझन समझ गई।

'पंड्याजी ! आप मुझ पर व्यर्थ कुपित हो रहे हैं। आप समझ रहे हैं कि आपके पुत्र को खराब करने का मैंने बीड़ा उठा लिया है, परन्तु क्या मुचकुन्द भाई के पास पैसा है ? क्या उनके पास सम्पत्ति है ? नहीं। तब क्यों मैं उनके पीछे लगी हुई हूँ ? क्या मुझ में रूप, सौन्दर्य या चातुर्य की कमी है कि बम्बई जैसे शहर में बड़े-बड़े भावुक लखपतियों में से किसी एक को अपने वश में नहीं कर सकती ? जब मैंने समझा कि मेरे रहने से उनकी इज्जत पर आ बनेगी तब क्या मैं जाने के लिए तैयार नहीं हो गई ? उनकी मान-मर्यादा बचाने के लिए उस समय मैं चली नहीं गई ? परन्तु इस समय उनके जीवन का प्रश्न है और मैं नहीं जा सकती। उस समय इनका कहना मैंने नहीं माना और इस

समय आपका आदेश नहीं मानूंगी। मुचकुन्द भाई जितने आपके प्रिय हैं उतने ही मेरे भी हैं।'

मणि की विनती पाषाण हृदय को भी डिगा देने वाली थी। पाणु पंड्या को उसका कथन सार्थक दिखाई दिया। साथ ही स्वयं अपना भी स्वार्थ दिखाई दे रहा था क्योंकि मणि को निकाल देने से मुचकुन्द के मन पर उसका असर बुरा पड़ने की आशंका थी।

'यदि मैं तुम्हारी बात न मानूं तो तुम क्या करोगी?' पाणु पंड्या बिल्कुल ही नम जाना अच्छा न समझ कर बोले।

'क्या करूंगी? आप मुझे पहचानते नहीं हैं। मैं मुचकुन्द भाई के पास बैठी रहूंगी। फिर देखती हूं कौन मुझे हटाता है? और यदि अत्याचार द्वारा मुझे बाहर निकालोगे तो दरवाजे पर धरना देकर भूखी-प्यासी पड़ी रहूँगी।'

'तू औरत है या···?'

'आप जो भी समझें, देखिये मुचकुन्द भाई उठ गये।' कह कर वृद्ध को जरा नरम पड़ते हुए देख तुरन्त मणि वहां से जाकर बिछौने पर बैठ गई।

पंड्या जी आगे कुछ भी नहीं बोले। वह चुपचाप देखते रहे। एक ही दिन में, कमरे में, मुचकुन्द में और उसकी परिचर्या में इतना अन्तर हो गया कि मणि को निकाल बाहर करने की बात ही उन्होंने भुला दी। काशी तो भीतर ही भीतर कुढ़-कुढ़ कर मरी जा रही थी; पर स्वसुर की उपस्थिति से वह कुछ बोल नहीं सकी।

इसी प्रकार दो-चार दिन बीत गए, परन्तु मुचकुन्द में कोई परिवर्तन दिखाई नहीं दिया। घबरा कर मणि ने दूसरे डाक्टर को दिखाने के लिए अपना निश्चय प्रकट किया।

'यह होगा कैसे? मेरे पास क्या पैसा गड़ा रखा है?'

'पैसा तो जहां से भी हो आयेगा ही; आज मैं एक डाक्टर बुला लाती हूं।' मणि ने कहा।

वृद्ध ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मणि ने साहसवश यह बात कह तो दी थी परन्तु अपने मन में वह विचार करने लगी कि रुपये का प्रबन्ध कहां से और किस प्रकार किया जाय। मुचकुन्द की पास बुक देखने से मालूम हुआ कि रंगून

से लौटने पर तीन सौ रुपया उसने बैंक से निकाल लिया था और अब केवल नाममात्र की रकम बैंक में रह गयी थी। चन्दूलाल के यहाँ रुपये के लिए जाना आत्माभिमानी मणि को नहीं रुचा और पंड्याजी केवल दस रुपये लेकर घर से चले थे इसलिए उनके पास कुछ था ही नहीं। इस दशा में घर का खर्च चलाने के लिए अपने वेतन का रुपया लिए बिना छुटकारा नहीं दिखाई देता था। फीस के लिए रुपया कहाँ से आये ?

'एक परिचित से कुछ रुपये उधार लेकर मणि ने डाक्टर की फीस देने का प्रबन्ध किया। डाक्टर आया और मुचकुन्द को अच्छी तरह देखभाल कर उसने सिर हिलाया और उपचारों का एक पुर्जा बना कर दे दिया। डाक्टर ने जाते समय पंड्याजी और मणि को अपने पास बुला कर पूछा—

'आप बीमार के पिता हैं ?'

'जी हाँ।'

'और यह उनकी···।'

'मैं उनकी बहन होती हूँ।'

'लगता है कि यह साधारण ज्वर नहीं है। इनके कान के पीछे कुछ सूजन मालूम होती है। कुछ कहा नहीं जा सकता। अभी समय है अगर कुछ और बढ़ा तो आपरेशन करना पड़ेगा।'

मणि को ऐसा मालूम पड़ने लगा कि हृदय की धड़कन ही बन्द हो जायगी। बड़े परिश्रम से साहस बटोर कर उसने पूछा—डाक्टर साहब, कुछ जान पर तो खतरा नहीं है न ?

अभी यह कैसे कहा जा सकता है। यह सूजन अच्छी तरह मालूम होने लगे तब कुछ बताया जा सकता है। अभी घबराने का कोई कारण नहीं है।' कह कर चला गया।

'मणि !' पागु पंड्या ने सहसा मणि की ओर घूम कर कहा। मणि चुपचाप उनकी ओर देखती रही। 'मैं तो मुचकुन्द को कल गाँव ही ले जाता हूँ।'

'क्यों ?'

'यह खर्च उठाना मेरी शक्ति के बाहर है ? आज ही तुमने डाक्टर को दस

रुपए दिए, परन्तु रोज-रोज यह खर्च कौन करेगा ? इससे तो मेरा गाँव का वैद्य ही लाख गुना अच्छा है।'

'परन्तु पंड्याजी ! मुचकुन्द भाई यात्रा कैसे कर सकेंगे ?'

'यह तो व्यर्थ की बातें हैं। मैं तो निर्धन आदमी हूँ और घर से बुलाहट भी आई है—मेरा लड़का अलग बीमार पड़ा है। कहाँ-कहाँ देखूं ? और भाग्य में जो लिखा है वह क्या किसी के टाले टल सकता है ?'

'पंड्याजी ! मैं आपकी कठिनाई समझती हूं ! परन्तु आप ऐसा क्यों कर रहे है ? बम्बई जैसे बड़े डाक्टर और कहाँ मिल सकेंगे ? आप घबरा क्यों रहे हैं ? आप बेहिचक घर जायें, जब तक मैं यहाँ हूँ। आप किसी बात की चिन्ता न करें।'

वृद्ध देखता ही रह गया। यह स्त्री जिसे वह दुत्कार कर एक बार निकाल भी चुका था वही उसके पुत्र के लिए जो महान् प्रेम दरसा रही थी उसे देख कर उसकी आँखें डबडबा आईं। चार दिन के अनुभव से वृद्ध का सम्पूर्ण रोष मणि पर से जाता रहा। मणि के आने के पश्चात् घर में एक नवीन वातावरण की रचना हो गई थी। शांत वायु बहने लगा था। इस परिवर्तन को वह प्रत्यक्ष देख रहा था।

'बेटी !' वृद्ध ने गद्गद् कण्ठ से कहा—'तू बहुत साहसी है। परन्तु तू अकेली क्या करेगी ? रुपया कहाँ से लावेगी ?'

'पंड्याजी ! इसकी चिन्ता आप न करें। मुझ में सब कुछ करने की शक्ति है। अगर आपरेशन हुआ तब शायद पैसे की कमी पड़े। प्रतिदिन का खर्च तो मैं अपने मासिक वेतन से चला लूंगी, मैंने दो-एक बालिकाओं को पढ़ाने का प्रबन्ध भी कर लिया है।'

पंड्याजी बोले नहीं, उनकी आँखों में से टपटप आंसू गिरने लगे।

'काका ! क्या सेठ चन्दूलाल कुछ सहायता नहीं करेंगे ?'

'अरे वह क्या करेगा ? पिछले मास का पूरा वेतन देते समय तो उसकी छाती फट गई थी। यद्यपि वह मेरा सम्बन्धी है, फिर भी यदि मैं मर जाऊँ तब भी उसके पास जाने का नाम नहीं लूंगा। इसी से कहता हूँ कि मुचकुन्द को गाँव ही ले जाना अधिक अच्छा है।'

'नहीं, नहीं, पंड्याजी ! यह तो असम्भव है । अभी आप ही गाँव जाएँ वहाँ आप अगर हो सके तो रुपये का प्रबन्ध करने का प्रत्यन कीजियेगा और यथाशक्ति मैं भी यहाँ कोशिश करूँगी ।

'क्या कल चला जाऊँ ?'

'जी हाँ, आनन्द से !

'क्या काशी बहू यहीं रहेगी ?'

'जी हाँ क्या हर्ज है !'

इस बीच में बीमार मुचकुन्द बिछौने पर पड़ा-पड़ा बड़बड़ा रहा था । कभी-कभी वह बेहोश हो जाता था । कुछ देर तक होश में आकर बातें करता और कभी रोता था, सदैव मणि को सामने पाकर कुछ अधिक शांत रहता था परन्तु काशी को देखकर उत्तेजित हो उठता था । पाप और पुण्य के बीच झोंका खाती हुई विवेक बुद्धि के समान शांति और उत्तेजना के बीच मुचकुन्द का निर्बल मन डगमगा रहा था ।

मणि इस कठिन अवस्था में मार्ग ढूंढ़ निकालने के लिए तत्पर हो गई थी । रणक्षेत्र में उतरने वाले योद्धा के समान उसका खून खौल रहा था और उसकी बुद्धि नई-नई युक्तियाँ सोच रही थी । बीमारी से पीड़ित मुचकुन्द का मुख उसे साहस और शौर्य प्रदान करता था ।

दूसरे दिन पागु पंड्या चले गये और मणि ने घर का पूरा प्रबन्ध अपने हाथ में ले लिया । उसी दिन काशी ने अपने पिता को एक विस्तारपूर्ण पत्र लिखवाया, जिसमें बम्बई से अपने को बुला लेने का भी आग्रह किया था । उसे मणि सौत के समान लगती थी जिससे वह भीतर ही भीतर ईर्ष्या से बिलख-बिलख कर रोया करती ।

: १२ :

दोपहर से एकाएक मुचकुन्द चिल्लाने लगा । उसके कान के पीछे की सूजन बढ़ती जा रही थी । उसके माथे में कठिन पीड़ा हो रही थी । मणि काशी को

उसकी परिचर्या सौंपकर डाक्टर को बुलाने गई।

जब मणि डाक्टर को लेकर आई उस समय मुचकुन्द की स्थिति बहुत ही नाजुक थी। उसे अच्छी तरह देखकर और आपरेशन करने की आवश्यकता प्रकट कर पुलटिस बाँधने का निर्देष दे डाक्टर साहब चले गये।

मुचकुन्द की अव्यवस्थित संकटपूर्ण स्थिति देखकर मणि ने काशी से एक बार बात करना आवश्यक समझा। मणि ने मुचकुन्द को शांत किया, फिर काशी से दो बात करने के लिए चली।

'देखो बहन ! बिना आवश्यकता मुचकुन्द भाई के पास मत जाया करो।'

'मैं जाऊँगी, इसमें तेरा क्या जाता है ?'

'मेरा क्या जाना है ? जो जाएगा वह तेरा। तुझे पता नहीं है कि मुचकुन्द भाई की तबियत कितनी खराब है ? तुझे देखकर वे कितने आपे से बाहर हो उठते हैं ? किसी दिन इसका परिणाम बहुत ही खराब होगा।'

'खराब परिणाम ! दुष्टा ! पापिनी ! यह सब तेरे ही पापों का फल है......' गन्दे आक्षेप करते हुए काशी ने कहा।

मणि को भी क्रोध आ गया। काशी जोर-जोर से बोल रही थी। मुचकुन्द के सम्मानार्थ एक बार उसने काशी की बातें सह ली थीं किन्तु इस समय ऐसा असम्भव था। इन शब्दों के बीमार के कान में पड़ने पर रोग बढ़ जाने की सम्भावना थी।

मणि का शरीर क्रोध से कांपने लगा। उसकी आंखों से आग निकलने लगी। क्रुद्ध शेरनी के समान छलांग मारकर काशी के दोनों कान पकड़कर उसने जोर से मल दिये और उसके चीखने की चेष्टा से पूर्व ही एक हाथ से उसका मुँह अपनी हथेली से दबा दिया।

'चुप ! तुझे पता नहीं कि तेरी इस गाली-गलौज से मुचकुन्द भाई पर क्या बीतेगा ? मूर्ख अपना स्वार्थ भी नहीं समझती ? बस चुप रह ! नहीं तो कल सवेरे ही रांड होकर बैठ जायगी। जब तक नहीं बोलती तभी तक !'

ऐसा क्रोध मणि करेगी इसका काशी को स्वप्न में भी विचार नहीं था। वह अभी छोटी थी, अनुभवहीन थी और मणि की अपेक्षा शारीरिक बल में भी बहुत कम थी। फिर भी वह लड़ने के लिए तैयार हुई, किन्तु मणि ने उसे

दीवार में दबा दिया ।

'देख, चीर डालूँगी यदि तूने भाई मुचकुन्द के सामने जाकर जबान खोली तो !' कहकर काशी के दोनों हाथ पकड़कर उसे फिर दीवार में दबा दिया । 'यदि तूने मेरा कहा नहीं किया तो याद रख, हाथ-पैर बांध कर यहीं रख छोड़ूँगी ।'

काशी डर गई, उसका सब क्रोध हवा हो गया । वह रो पड़ी । 'मैं अपने पति के साथ बोलूँ भी नहीं ?'

'तू तो मूर्ख है । मुचकुन्द भाई की बीमारी भयंकर है । यदि बच गये तो किसके लिए ? तेरे ही लिए या किसी दूसरे के लिए ? तू क्या देख नहीं रही है कि तुझे देखते ही उनका दिमाग फिर जाता है ?'

मणि यह कह कर बाहर चली आई और काशी अकेली वहाँ बैठकर आँसू बहाती रही । जो कुछ मणि ने कहा वह उसे सच मालूम हुआ । जब कभी वह पति के पास जाती तो उनकी उत्तेजना बढ़ जाती थी फिर भी उन्हें देखे बिना, उनके साथ दो बातें किए बिना रहा कैसे जाता ! जो भी हों वे उसके पति हैं । काशी ने देखा कि जैसा अत्याचार और अन्याय मुझ पर हो रहा है वैसा आज तक किसी पर न हुआ होगा ।

: १३ :

दो सौ रुपये एक बहुत साधारण रकम मालूम पड़ती है । कोई भी धनवान महीने में दो सौ रुपये का सिगार पी डालता है । दूसरा दो सौ रुपये का पेट्रोल अपनी मोटर में फूंक डालता है, तीसरा अपनी स्त्री के लिए साड़ी खरीदने में इतना रुपया व्यय कर देता है । वही दो सौ रुपये प्राप्त करने के लिए मणि की दशा पगली जैसी हो रही थी । मुचकुन्द की परिचर्या करते समय, पाठशाला में पढ़ाते समय, रात में कुछ ही घंटे की निद्रा में भी सदैव उसके मस्तिष्क में दो सौ रुपये ही बने रहते थे । रास्ते में जब कभी किसी के हाथ में रुपये की

थैली देखती तो वह धन उसका कैसे हो सकता है ऐसा व्यर्थ विचार उसके मन में आता। यदि कोई धनवान दिखाई पड़ता तो उससे कैसे रुपया मांगा जाय, उसकी युक्ति सोचती, डाक्टर को किसी प्रकार समझाकर मुफ्त आपरेशन कराने का उपाय ढूंढ़ती। परन्तु रास्ते चलने वाले अपने रास्ते चले जाते थे, धनवान अपनी अस्पर्श्यता की धाक दिखाकर परास्त करते थे और डाक्टर दुनिया को देखे हुए अनुभवी तथा लोभी थे।

डाक्टर ने आपरेशन की आवश्यकता बताई और केवल एक दिन या अधिक से अधिक दो दिन का समय दिया। अड़तालीस घंटे में दो सौ रुपये कहां से लाए ? दो सौ पाई भी मिलना मणि के लिए कठिन था। अन्त में आत्माभिमान को तिलांजली देकर सेठ चन्दूलाल के यहाँ जाने का ही उसने निश्चय किया।

सेठ चन्दूलाल चतुर व्यापारी थे। मणि और मुचकुन्द दोनों ने उसे मूर्ख बनाया है ऐसा विचार करके अत्यधिक झल्लाये हुए थे। उसने कुछ भी सहायता देने से साफ इन्कार कर दिया। भग्न हृदय हो मणि घर लौट आई। रोने की बहुत ही इच्छा हुई, किन्तु ऐसा करने से कहीं बचाखुचा साहस भी न जाता रहे इस डर से अपने मुंह पर तमाचा मार कर नित्य के नैमित्तिक कार्य करने लगी। घंटे पर घंटे निकलते चले जा रहे थे; परन्तु दो सौ रुपये में से एक पाई भी मिलने का कोई सुराग दिखाई न देता था।

उसकी दृष्टि अपने मामूली गहने पर गई। काशी के पास भी कुछ जेवर थे किन्तु उससे मांगा कैसे जाय ? रोगी बिछौने पर पड़ा हुआ पीड़ा से छटपटा रहा था। उसके लिए इहलोक और परलोक में अधिक अन्तर नहीं था। परलोक का द्वार उसके लिए खुला हुआ था जिसे शायद दो सौ रुपया ही बन्द कर सकता था। किन्तु वह आये तो कहाँ से ?

मणि ने बहुत विचार किया परन्तु फल कुछ भी नहीं हुआ। सन्ध्या समय की पुलटिस से भयानक बना हुआ मुचकुन्द का चेहरा वह देख रही थी। उसकी आँखों में से टपटप आंसू गिरने लगे। संसार की विजनता उसे हृदय-भेदक लगी। इस सुशिक्षित, सज्जन युवक को बचाने वाला संसार में कोई नहीं था—सिर्फ दर-दर मारी-मारी फिरने वाली, त्याज्य, अनीति के मार्ग पर चलने वाली, दुष्टा

समझी जानेवाली, संस्कार-भ्रष्ट एक विधवा ही थी। विधि का यह वैचित्र्य देखकर मणि को जरा हंसी आ गई।

सहसा उसने सिर उठाकर ऊपर देखा। उसके मस्तिष्क में एकाएक एक विचार आया जिससे चेहरा फक हो गया। उसके कपाल पर सिकुड़न पड़ गई, उसके दांत कटकटाने लगे। वह किसी भयंकर संकल्प को निश्चय रूप देती हुई प्रतीत हुई।

उठकर उसने कपड़े बदले और काशी को घर की रखवाली का भार सौंप कर शीघ्रता पूर्वक कांदेवाड़ी की ओर चली। उसका सब अंग कांप रहा था, परन्तु उसके चेहरे पर दृढ़ता थी और उसके होंठ एक पर एक बैठे हुए थे। वह तुंगभद्रा के घर के पास आकर रुक गई। उसके चेहरे का रंग उड़ता जा रहा था। उसने आसपास चारों ओर नजर दौड़ाई और किसी के दिखाई न पड़ने पर भीतर गई।

मणि पहले चौकीदार के पास गई। उसने उसे तुरन्त पहचान लिया; कार्यपटु चौकीदार उसे पहचान कर भी न पहचानने का ढोंग रचने लगा। वह मणि को तुरन्त ही तुंगभद्रा के पास ले गया। तुंगभद्रा बैठी हुई अपने झुर्री पड़े हुए चेहरे पर पाउडर व रंग भरकर उसे हरा-भरा बनाने का प्रयत्न कर रही थी।

मणि को देखकर खुशी से फूली नहीं समाई।

'ओहो बेटी! तू आ गई। तेरे बिना देख तो सूखी जा रही थी। तू व्यर्थ ही चली गई थी।'

'तुंगभद्रा!' जरा कठोरता से मणि ने कहा, 'इस ढोंग की आवश्यकता नहीं है। तू मुझे फांसना चाहती थी और मैं उस जाल से निकल भागी। जानती हो मुझे तुम्हारा धंधा नहीं करना है।'

'तब आई क्यों है?'

'एक काम है।'

'क्या?'

'मुझे दो सौ रुपये की आवश्यकता है। क्या तुम मुझे दे सकोगी?'

'मैं क्या महाजनी की दुकान या बैंक खोलकर बैठी हूं?'

'क्यों क्या वसूल होने की आशा नहीं है ?'

तुंगभद्रा तिरस्कार से हँसी।

'क्यों, हँसती क्यों हो ?' मणि ने पूछा।

'दो सौ रुपये के लिए तो तू मेरे पास आई है, तब तेरे पास होगा ही क्या ?'

'मैं पाठशाला में पढ़ाती हूँ। मुझे इस समय दो सौ रुपये की सख्त जरूरत आ पड़ी है। अगर विश्वास करो तो मैं महीन-महीने मासिक वेतन से धीरे-धीरे तुम्हारे सब रुपये चुका दूंगी।'

'हा-हा-हा !' तुंगभद्रा जोर से हँसी, 'इसी प्रकार यदि मैं रुपया बांटती फिरूँ तो दो ही दिन में दिवाला निकालकर बैठ जाऊँ।'

'देखो, मेरे द्वारा तुमने कितना पैदा किया होगा ?' मणि ने समझाने का यत्न किया।

'यदि तू यहाँ से भाग न जाती तो मैं कितना कमाती ?'

'तब तुम नहीं दोगी ?'

'नहीं।'

'एक काम करूँ तो ? मेरा कण्ठ बड़ा सुरीला है, तुमने एक बार ऐसा कहा भी था।'

'हाँ !'

'मैंने अपने स्वर को और भी सुरीला बना लिया है, यदि तुम इतना रुपया दो तो प्रतिदिन आकर गा जाया करूँगी। प्रतिदिन का दस रुपये के हिसाब से मेरा कर्ज जमा करती जाना।'

तुंगभद्रा के मुँह में पानी आ गया। मणि की मोहक आवाज भला किसे आकर्षित नहीं कर सकती ? मणि के भाग जाने के पश्चात् एक-दो युवतियों को उसने रखा भी था किन्तु मणि की आवाज जैसा आकर्षण उनमें से किसी में भी नहीं था।

'नहीं जी, यह भला मुझ से कैसे हो सकता है ? तेरा गाना न जाने कैसा होगा ?'

मणि ऐसे सीधे छली जाने वाली नहीं थी, 'अच्छी बात है जैसी तुम्हारी इच्छा। मैं किसी दूसरी को तलाश कर लूंगी।' यह कह कर वह जाने के लिए

उठने लगी।

'नहीं, नहीं, बैठो, बैठो, अब तो हम और तुम सम्बन्धी हैं।'

'ना, बिलकुल नहीं! मुझे रुपये की आवश्यकता है और तुम्हें मेरे सुरीले कण्ठ की आवश्यकता है, बस इतना ही।'

'ऐसा! तब मैं तीन रुपया प्रतिदिन के हिसाब से दूंगी।'

'पाँच से कम तो मैं लूंगी ही नहीं। चली तब!' कह कर मणि फिर उठने लगी।

'अच्छा, अच्छा रुपया कब चाहिये?' मन में प्रसन्न होती हुई तुंगभद्रा ने मणि को बाँध लेने की इच्छा से जल्दी करते हुए कहा।

'अभी, अभी। यदि कहो तो लिखकर दे दूं, लाओ रुपया।'

मणि हर्षित हुई। मुचकुन्द बस बच जाय। तुच्छ से भी तुच्छ, अधम से भी अधम काम करने में उसे जरा संकोच नहीं था।

'जमादार!' तुंगभद्रा ने आवाज दी। चौकीदार के ऊपर आने पर उसने कहा—'जाकर देखो रेवती के पास कोई है तो नहीं?'

'जी!' कह कर जमादार चला गया और थोड़ी ही देर में लौट आया। उसके लौटकर आने तक कोई कुछ नहीं बोला।

'वहाँ गम्भीरलाल सेठ बैठे हुए हैं।' जमादार ने जवाब दिया।

मणि यह नाम सुनकर चौंक उठी। उसने सुना था कि गम्भीरलाल किसी विशेष काम पर बम्बई में नियुक्त हुआ है। हृदय में बहुत दिनों से विस्मृत बेताला सुर फिर सुनाई पड़ने लगा। किन्तु उसने विचार किया कि गम्भीरलाल नाम के बहुत से व्यक्ति हो सकते हैं। यह उसके जीवन को भ्रष्ट करने वाला गम्भीरलाल ही है, इसका क्या भरोसा?

'किसी दूसरे का क्या काम है!'

'तुम्हारे पत्र पर साक्षी कौन करेगा!'

मणि नीचे देखने लगी। वह अपने को बेच रही है; ऐसा उसे लगा। केवल अपनी कल्पना-शक्ति को उत्तेजित कर मुचकुन्द का पीड़ा से पीला हुआ विकृत मुख अपने सामने रखकर, अपना साहस संचित रखने का प्रयत्न वह बराबर किया करती थी।

'तुंगभद्रा ! परन्तु एक शर्त मेरी भी तुम्हें स्वीकार करनी पड़ेगी।'

'क्या ?'

'मैं मुंह पर बुर्का डालकर गाऊँगी।'

'क्या पागल हो गई हो ? बिना मुंह देखे भला गाने में कहीं रस आयेगा ?'

'तब मुझे कुछ नहीं करना है।'

'अच्छा, अच्छा, जिस प्रकार तुम्हारी इच्छा हो उसी प्रकार गाना।'

मणि ने अनुबंध पत्र लिखकर उस पर हस्ताक्षर कर दिए।

'चलो मेरे साथ !' कह कर तुंगभद्रा मणि को दूसरी मंजिल में ले गई।

मणि की दृष्टि कमरे में पड़ी और तुरन्त वहाँ से भाग जाने की इच्छा हुई। सामने ही मसनद का सहारा लगाए हुए रायसाहब बैठे थे ! मणि ने देखा कि अब पीछे हटना निरर्थक है। गम्भीरलाल ने उसे देखकर पहचान लिया था जिससे उनका भी चेहरा उतर गया था।

'कौन तुम ? यहाँ पर ? आश्चर्य-चकित होकर गम्भीरलाल ने पूछा।

मणि के पैर के नीचे से मिट्टी निकल गई, पर दूसरे ही क्षण वह कुछ स्वस्थ-चित्त हो गई और गम्भीरलाल के प्रति उसकी तिरस्कारवृत्ति पुनः जाग्रत हो उठी।

'जी हाँ ! और आप इस स्थिति में ?' तिरस्कारपूर्ण स्वर में मणि ने कटाक्ष किया—'हम लोग भी बड़े ही अच्छे-अच्छे अवसरों पर मिलते हैं।'

'देखो भाई !' तुंगभद्रा बीच में बाधा देकर बोल उठी, 'मेरे यहाँ एक नियम है, चाहे जैसे भी परिचित जान-पहचानी हो, परन्तु यहाँ उन्हें एक-दूसरे से अनजान ही बनना पड़ेगा। लीजिये ! इस पर जरा हस्ताक्षर कर दीजिये।'

मणि के यहाँ आने का कारण जानने की उत्सुकता गम्भीरलाल में इतनी बढ़ गई थी कि उसने मणि का प्रतिज्ञा-पत्र जल्दी से लेकर पढ़ा परन्तु साक्षी करने से इनकार कर दिया। 'मुझे कोर्ट में पैर नहीं घसीटना है।'

'आप इतने परेशान क्यों हो रहे हैं ? आपको कोर्ट में जाना नहीं होगा।' तुंगभद्रा ने कहा।

गम्भीरलाल ने सिर हिलाया। 'यह नहीं हो सकता, यदि ऐसा ही विश्वास है तब साक्षी की ही क्या जरूरत है ? ऐसे प्रतिज्ञा-पत्रों पर गवाही की आव-

श्यकता ही नहीं हुआ करती है।'

तुंगभद्रा गम्भीरलाल को क्रुद्ध करना नहीं चाहती थी। साथ ही उसने देखा कि ये दोनों पुराने परिचित हैं जिससे बात बढ़ाने से परिणाम हानिकार होने का अन्देशा है। मणि को दो सौ रुपये देकर विदा कर दिया।

: १४ :

जब मणि तुंगभद्रा के मकान से वाहर निकली तब पीछे से किसी ने उसे पुकारा। चौंककर उसने पीछे मुड़ कर देखा। उसके पीछे गम्भीरलाल खड़े थे।

'मणि ! तुम्हारी यह दशा देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है।'

'तुम्हें भी एक बजारू वेश्या के यहाँ देखकर मुझे बड़ा दुःख होता है।'

'क्यों ?' गम्भीरलाल ने पूछा।

'इस संसार में जहाँ तुम्हारे जैसे काले नाग बसते हैं, वहाँ मेरी जैसी अनाथ स्त्री का दुःखी होना स्वाभाविक ही है।'

'बीती बातों को फिर से उभाराने से क्या लाभ है ? मणि, इतनी तुच्छ रकम के लिए तुझे यहाँ की ठोकरें खानी पड़ रही हैं ?'

मणि ने बात का उत्तर नहीं दिया।

'तुम्हें आवश्यकता हो तो दो सौ रुपये मैं दिये देता हूँ, तुंगभद्रा का रुपया लौटाकर अपना अनुबंध वापस ले आओ।' गम्भीरलाल ने बड़ी ही सादगी से कहा। यह सुनकर मणि का खून उबल उठा। मानो गम्भीरलाल ने उसे इधर-उधर घूमने वाली वेश्या समझ रखा था और दो सौ रुपये पर उसे अब खरीदना चाहता था।

'तुम्हारे पैसे से मुझे क्या प्रयोजन है ?'

रायसाहब हँस पड़े, 'यदि तुमने मेरा कहना माना होता तो तुंगभद्रा के पास दो सौ रुपये के लिए नहीं आना पड़ता।'

'क्या तुम्हें खबर है कि तुम्हारी दौलत की अपेक्षा तुंगभद्रा की कौड़ी मेरे लिये अधिक अच्छी है ?'

'वह कैसे ?'

वह तो तुम्हारी आँखें ही बता रही हैं ? मुझे दो सौ रुपये पर अपना शरीर बेचना नहीं है न ?'

'तब यहाँ डेढ़ महीना क्या करोगी ? इतना अनुभव प्राप्त करने के पश्चात् भी तू जैसी की तैसी बनी रह गई। अब भी समझ से काम लो ! मेरे साथ चलो। तुंगभद्रा का रुपया लौटा दो। क्या रास्ते चलने वाले ऐरेगैरों से भी मैं गया गुजरा हूँ ?'

'रायसाहब ! चाहे मैं जैसी हूँ और चाहे जैसी भी हो जाऊँ; किन्तु मैं तो तुम्हारे मुँह पर थूकने भी नहीं आऊँगी। तुम अपने रास्ते जाओ और मुझे अपने रास्ते जाने दो, नहीं तो तुम्हारे लिए अच्छा नहीं होगा।'

गम्भीरलाल मणि को अच्छी तरह पहचानते थे। क्रुद्ध हो जाने पर वह उनकी दुर्गति करने की पूरी शक्ति रखती थी, और दुर्गति होने पर गम्भीरलाल की इज्जत में बट्टा लगे बिना नहीं रह सकता था। गम्भीरलाल अच्छी तरह जानता था कि लोगों पर उसका दबदबा केवल उसकी इज्जत के कारण ही बना हुआ है।

'जैसी तुम्हारी इच्छा !' कहकर गम्भीरलाल एक भाड़े की गाड़ी करके वहाँ से चले गये। रायसाहब घर की ओर चल तो दिए, किन्तु भीतर से उनका मन तड़फड़ाने लगा। एक बार पुनः स्वयं निराश्रय स्थिति में, दुःख से भटकती हुई अप्सरा के समान तेजस्वी विधवा बाला को देखा, उसने उसकी तेजस्विता द्वारा प्रेरित प्रचण्ड उर्मियों का अनुभव किया; उसने उस बाला को ललचाया, उसे भला बुरा कहा, उसे फँसाया। उसने उस सुकुमार बाला को समाज-सुधारकों के हाथ में पड़कर मछली की भाँति तड़पते हुए भी देखा, पुनः उसके आवेशपूर्ण, रोब से भरे हुए वाक्य कानों में गूँज उठे। अन्त में उस बाला को दो सौ रुपये पर अपना स्त्रीत्व बेचते हुए देखकर गम्भीरलाल काँप उठे। अपनी इज्जत, रोबदाब के लिए उनकी ही स्वच्छंद विषय-वासना की भोग बनी हुई बाला को कैसी अधम से अधम अवस्था में ढकेल दिया ! क्या इसका परिणाम उन्हें भोगना नहीं पड़ेगा ?

उनके हृदय की अशान्ति बढ़ती ही गई। वे घर गये, किन्तु किसी प्रकार

चैन नहीं पड़ा। इस अशान्ति को शान्त करने का उन्हें एक मार्ग सूझा। बक्स में से दो सौ रुपये निकाल कर वे तुरन्त ही तुंगभद्रा के यहाँ पहुँचे।

: १५ :

सवेरे डाक्टर के यहाँ जाकर आपरेशन का समय मणि निश्चय कर आई। तीसरे पहर मूर्च्छित मुचकुन्द को डाक्टर के आदमी उठाकर हास्पिटल ले गये। काशी और मणि दोनों फुक्का फाड़कर रो पड़ीं। फिर क्या मुचकुन्द लौटकर घर आयेगा ? काशी को लगा मानो उसका वैधव्य ही प्रारम्भ हो गया, विधवा मणि को ऐसा मालूम पड़ा मानो वह फिर विधवा हो गई है। सूना घर खाने को दौड़ता था। दोनों पत्नियाँ—संसार द्वारा बनाई हुई और हृदय से वरण की हुई, अपना द्वेष और ईर्ष्या दूर कर एक साथ रोईं और दोनों के आँसू एक-दूसरे से मिलकर एक हो गए।

संध्या की डाक से तुंगभद्रा को लिखकर दिया हुआ प्रतिज्ञा पत्र-मणि को मिल गया, साथ ही तुंगभद्रा का एक पत्र भी था जिसमें उसने मणि को वह दो सौ रुपया उपहार स्वरूप स्वीकार करने के लिए लिखा था। मणि को पत्र पाकर अत्यन्त आश्चर्य हुआ तुंगभद्रा ऐसी उदारता कर सकती है, इसकी उसे स्वप्न में भी धारणा नहीं थी। इस उदारता में उसे कुछ रहस्य छिपा हुआ प्रतीत हुआ पर मुचकुन्द की चिन्ता के कारण उस भेद के सम्बन्ध में विचार करने के लिए उसके पास अभी समय नहीं था।

उस दिन की घटना की शृंखला अभी टूटी नहीं थी। रात्रि में वह सोने की तैयारी कर ही रही थी कि इतने में किसी ने दरवाजा खटखटाया। इस समय अब कौन होगा, यह समझ न पड़ने से मणि जरा घबराई।

दरवाजा खोलते ही सामने मोघाराम को खड़ा देखकर वह चौंक पड़ी और बोली 'कौन मोघाराम ? आओ, आओ !'

गरीब बिचारा कैद से छुटकारा पाते ही सीधा यहीं आया था। बंदीगृह में

उसके चेहरे पर झुर्रियां पड़ गई थीं और उसका शरीर व्याधिग्रस्त-सा लग रहा था।

'बहन मणि ! मैं क्या कहूँ ?' मोघाराम की आँखों से आँसू गिरने लगे, 'बहन मैं तुम्हारे उपकार का बदला किसी जन्म में भी नहीं चुका सकूँगा। यदि तुमने रुपया न दिया होता तो क्या मैं कभी छूट सकता था ? आखिर हाईकोर्ट ने न्याय किया और मुझे निर्दोष ठहरा कर छोड़ ही दिया।'

'आपने मेरे लिए क्या नहीं किया ?' कहकर मणि ने पहले मोघाराम को भोजन कराया; फिर उन दोनों में बहुत देर तक बातें होती रहीं। मोघाराम कैद से छूटने के बाद मारुति से मिला था जिससे मणि की उदारता का समाचार और उसका बम्बई का पता उसे प्राप्त हुआ। कृतज्ञ वृद्ध तुरंत बम्बई आया और उसका मकान जल्दी न मिलने से ढूंढ़ता हुआ इतनी देर बाद पहुँचा था।

मणि ने सुरेखा का हालचाल पूछा और मोघाराम को तुरन्त अपनी भांजी के यहाँ जाकर उसे लाने का आदेश दिया। मणि और मोघाराम दोनों ने एक दूसरे से आप बीती कही और ऐसी विकट स्थिति में एक साथ ही रहने का निश्चय किया। मोघाराम की निराशा में भी आशा की किरण फूटीं। उसने कोई नोकरी कर यथाशक्ति मणि की सहायता करने का अपना निश्चय प्रकट किया। रात अधिक बीत जाने पर, आशा और भय के बीच जरा हँसते हुए दोनों सो गये।

सवेरे काशी का भाई आ पहुँचा, मणि को देखकर उसने नाक-भौं चढ़ाया। बड़े ही विवश दुःखी हृदय से उसने मणि और मोघाराम के साथ अस्पताल जाना स्वीकार किया। काशी भी उनके साथ गई। जिस समय ये लोग वहाँ पहुँचे, मुचकुन्द अचेत था।

: १६ :

इधर मोघाराम सुरेखा को लेने गया और उधर काशी को उसका भाई लिवा कर ले गया। मणि अकेली रह गई। तुंगभद्रा ने उसका प्रतिज्ञा-पत्र

क्यों लौटाया, इसका पता लगाने का विचार कर वह तुंगभद्रा से मिली भी किन्तु उसने कोई सन्तोषजनक उत्तर नहीं दिया। उसके समान वेश्या जो जमाना देखते-देखते बुड्ढी हो गई थी, इतनी उदारता दिखाये, यह बात मणि के मन में नहीं बैठ सकी। गम्भीरलाल पर भी उसका संदेह गया किन्तु उससे मिला कैसे जाय ? आखिर मुचकुन्द के स्वस्थ हो जाने तक खोजबीन स्थगित रखने का ही उसने निश्चय किया।

तीसरे दिन मणि की चिन्ता और बढ़ गई। मोघाराम का तार आया कि सुरेखा बीमार है। तार में यह भी उसने पूछा था कि ऐसी स्थिति में उसे बम्बई ले आये कि नहीं ? मुचकुन्द को छोड़कर सुरेखा के पास जाय अथवा यात्रा के कष्ट एवं उससे होने वाले रोग वृद्धि की परवाह न कर सुरेखा को बुला ले ? इस विकट समस्या ने मणि को और भी चिन्तित तथा व्यग्र बना दिया। बम्बई जैसे डाक्टर गाँव में नहीं मिलेंगे यह विचार कर अन्त में उसने सुरेखा को लेकर बम्बई चले आने के लिये मोघाराम को तार दे ही दिया।

अपनी पुत्री को देखने के लिए मणि छटपटा रही थी। स्वप्न में अनेकों बार सुरेखा को उसने देखा था, उसके सुकुमार और नन्हें शरीर का आलिंगन किया था। उसके गुलाब सदृश छोटे, रसिक मुख को चूमा था। उसे खिलाया-पिलाया और हँसाया था। जब वह रोएगी तब कैसी लगेगी ? वह जब हंसेगी और उसकी नवीन आई हुई दंतरियाँ चमक उठेंगी, उस समय वह कैसी लगेगी ? ये सभी बातें दो दिनों में ही यथार्थ में परिणित हो जायेंगी, ऐसा उसे विश्वास होने लगा।

मोघाराम आया और उसके आते ही हतभाग्य मणि का नवीन दुःख-पूर्ण नाटक प्रारम्भ हो गया। मोघाराम जिस कन्या को लाया उसकी सुरेखा वह नहीं थी सुकुमार, पुष्प के समान कोमल सुरेखा न थी बल्कि रोग से चिड़चिड़े मिजाज की काली पड़ी हुई सतत रोने वाली दैव की मारी हुई शरीर का एक ढांचा मात्र थी। उसे देखती ही मणि कांप उठी। हवाई किले सभी उसके टूट गये। पुत्री बिना वह तड़प रही थी। अब पुत्री आने पर उसे देखकर वह और भी तड़पने लगी।

लालसाओं को दूर हटा कर मन को संतुलित कर पुत्री को उसने अपनी

गोद में लिया। बालिका रो-रोकर ऊधम मचाने लगी। मणि ने अपने खिन्न हृदय को दबा दिया। आँख में आने वाले आँसुओं को भी रोक लिया और सुरेखा को लेकर वह डाक्टर के पास चली। डाक्टर ने उसे देखकर नाम मात्र की आशा देते हुए अपना सिर हिला दिया।

पाप के परिणामस्वरूप वह पुत्री मणि से उसके पाप का पूरा-पूरा बदला लेने लगी।

: १७ :

हस्पताल से रक्तहीन, निर्बल मुचकुन्द मणि के नवीन घर में आ गया। उसके मस्तिष्क का संतुलन ठीक नहीं था। उसकी आँखे ठहरती न थीं। ज्वर प्रतिदिन आता था। अधिक देर तक बोल भी नहीं सकता था। मिजाज चिड़-चिड़ा हो गया था और हाथ-पैर पटका करता था। यह घर किसका है? काशी कहाँ गई? पिताजी कहाँ गये? घर का खर्च कौन चलाता है? घर में यह 'मोघाराम' बुड्ढा कौन है? किसी छोटे लड़के की रुलाई क्यों सुनाई पड़ती है? इन प्रश्नों का निराकरण करने का वह कभी-कभी प्रयत्न करता, पर उसका सिर चक्कर खाने लगता था, आँखें दुःखने लगतीं; जिससे बाध्य होकर वह सो जाता था।

एक दिन मणि उसके पास बैठी दवा दे रही थी कि सुरेखा रोने लगी! बीच का दरवाजा खुला हुआ था। मुचकुन्द की भौंहें चढ़ गईं।

'यह कौन चिल्ला रहा है?'

मणि के होश उड़ गये। उसने कहा—'भाई! यह कोई पड़ोसी का बच्चा होगा, जरा शान्त रहो।

'पड़ोसी?' कहकर मुचकुन्द ने चिल्लाना चाहा किन्तु निर्बलता के कारण उसके मुँह से आवाज नहीं निकली। क्रोध से वह काँप उठा और दवा का प्याला उसने अपने हाथ से दूर फेंक दिया। चिन्ताग्रस्त मणि ने उसे सह लिया और केवल झूठी हँसी से हँस भर दी।

'भाई ! इस प्रकार चिल्लाने से क्या लाभ ? देखो, ऐसा करने से कोई लाभ नहीं होगा।'

'मरा मैं और मरे सब संसार !' क्रोध से खोखली बनी हुई आवाज में मुचकुन्द ने कहा, 'मुझे मेरे घर पहुँचा दो।'

माँ के सदृश अगाध स्नेह से उसे उठने से रोकने के लिए मणि उसके पास गई और धीरे से बोली—'यह घर आपका ही है।'

मुचकुन्द दाँत पीसने लगा। उसका हृदय क्रोधाग्नि से उछलने लगा। थोड़ी देर बाद वह घबड़ाया—'मेरे घर में ऐसा कमरा कब था ? मेरे पिता कहाँ गए ? मेरी काशी कहाँ चली गई ?'

यह शब्द सुनकर मणि ने इस प्रकार अपना सिर नीचा कर लिया मानो उसके सिर पर सौ जूते पड़े हों। अपनी आँखों से ढलकते आँसुओं को बड़ी कठिनता से रोकते हुए उसने अपनी हँसी जारी रखी।

'आपकी काशी अभी आ जायगी। ऐसा क्रोध करोगे तो जाकर डाक्टर से कह दूँगी।'

'डाक्टर गया जहन्नुम में। नीच यह सब तेरी ही कारसाजी है।'

'बहुत ठीक ! परन्तु क्या आप चुप नहीं रहेंगे !' जरा नजर कड़ी कर मणि ने कहा।

'हे भगवान, हे राम !' रोगी बड़बड़ाया, 'मेरा भी कैसा भाग्य है ! मैं अपंग, निराधार हो गया हूँ इसी से !' कहकर मुचकुन्द रो पड़ा। मणि उसके पास जाकर बैठ गई।

'भाई ! यह कर क्या रहे हो ? न तो आप अपंग हैं और न निराधार ! अलबत्ता इस तरह व्यर्थ बातें करोगे तो बीमारी अवश्य ही अधिक बढ़ जायगी।'

'मणि बहन !' मुचकुन्द का क्रोध रोने से कम हो गया, 'क्षमा करो, मैं बहुत कमजोर हो गया हूँ, इससे तो मर जाना कहीं अच्छा है।'

'बस, ऐसी बातें नहीं बोलनी चाहिएँ, अब सो जाइये।'

'बहन ! यह वृद्ध घर में कौन है ?'

'भाई ! यह सब पंचायत इस समय जाने दो, पीछे सब बता दूँगी।'

'परन्तु उसे तुम मेरे पास आने मत देना।'

'बहुत अच्छा!'

'तुम रात में कहाँ जाती हो?'

'ट्यूशन पढ़ाने, अब संतोष हुआ? सो जाइये।' कहकर मणि ने तकिया ठीक से रख दिया और थकावट से मुचकुन्द सो गया।

मणि उठी और अपने माथे पर हाथ रखा। शारीरिक और मानसिक पीड़ा से उसका माथा दुख रहा था। एक शीशे के सामने जाकर सिर की लटें ठीक कीं, मन को प्रफुल्लित करने के लिए एक भजन गाते हुए दूसरे कमरे में चली गई।

वहाँ मोघाराम धीरे-धीरे सुरेखा को झुला रहा था। सुरेखा के लिए यम-राज की बुलाहट आ रही थी और मणि जितना भी लगे उतना रुपया पैसा खर्च कर उसे बचाने का प्रयत्न कर रही थी। मणि झूले के पास बैठ गई और उसे उठाकर कलेजे से उसने चिपका लिया। मोघाराम चुपचाप यह देख रहा था

सुरेखा का चुम्बन लेते समय मणि का कलेजा मुंह को आने लगा। आँसुओं की कुछ बूंदें कपोलों पर लुढ़क पड़ीं।

'बहन! हिम्मत कभी नहीं हारनी चाहिये।'

'काका! काका! क्या होने वाला है?'

'कुछ भी नहीं! ऊपर चार हाथ वाला प्रभु बैठा है। उसे सबकी चिन्ता है। मुचकुन्द भाई क्या कह रहे थे?'

'क्या कहूँ? बीमारी ने उन्हें चिड़चिड़ा बना दिया है। शक्ति आने पर सब ठीक हो जायगा। काका! सुरेखा को लो। मैं तैयार हो जाऊँ, नहीं तो देर हो जायगी।'

मोघाराम ने चुपचाप बालिका को ले लिया और मणि कपड़े बदलने के लिए चली गई।

दो घण्टे बाद मुचकन्द की निद्रा भंग हुई। उसने धीरे से मणि का नाम लेकर पुकारा परन्तु उत्तर नहीं मिला। कमरे में एक छोटा सा दीपक जल रहा था और बगल के कमरे में से चरड़-चरड़ झूलने की आवाज आ रही थी।

अकेला पड़ने पर मुचकन्द पुनः विचार करने लगा। उसे विश्वास हो गया कि मणि कुछ उससे छिपा रही है। नहीं तो यह नया कमरा, यह मुलायम बिछौना कहाँ से आया? मणि कह रही थी कि काशी और पाणु पंड्या अच्छी तरह हैं, परन्तु पत्र लिखने पर भी वे आते क्यों नहीं? मणि ने एक बार कहा था कि सेठ चन्दूलाल ने डाक्टर की फीस का रुपया दिया है तब उनके यहाँ से कोई हालचाल पूछने के लिए क्यों नहीं आता? अवश्य ही मणि की कुछ चालाकी है। क्या चालाकी है यह उसकी बुद्धि समझने में असमर्थ थी।

इस प्रकार वह बहुत देर तक विचार करता रहा, उसे समय का ध्यान नहीं रहा। एकदम घड़ी में ग्यारह बजे! मणि को उसने फिर आवाज दी। कुछ उत्तर नहीं मिला। प्रतिदिन मणि रात में कहाँ जाती है? मुचकन्द को मणि का पूर्व जीवन याद आया। ऐसी स्त्री क्या नहीं कर सकती? एकदम एक विचार आया—सभी उलझनें दूर होती हुई मालूम हुई। 'अब मालूम हुआ कि यह घर किसका है।' मुचकन्द बड़बड़ाया, 'अवश्य उस वृद्ध का है! और मणि···?···हाँ···उसकी रखेली बन गई है···व्यभिचारिणी···नारकीय। अब तेरा सब भेद खुल गया।'

मुचकन्द हँसा। इसीलिए, वह जवाब नहीं देती। कुलटा! यह विचार आते ही उसके रोंगटे खड़े हो गये। ऐसे पाप स्थल पर अधिक ठहरना उसे उचित नहीं जँचा। उसने जाने का विचार किया। इस स्थान में रहकर जीने की अपेक्षा किसी और स्थान पर रहकर मरना उसे अधिक अच्छा लगा।

मुचकन्द दाँत पीसते हुए उठा और पास ही में रखे हुए एक गरम कोट को उठाकर उसने पहन लिया। सिर में एक मफलर बाँधा। चारपाई पकड़कर बड़ी कठिनता से नीचे उतरकर वह खड़ा होने लगा परन्तु बड़ी कमजोरी मालूम हुई। होंठ दबाकर उसने स्वस्थ होने और बल प्राप्त करने का प्रयत्न किया। 'मर जाना ही अच्छा है···आज ही···मरण···कल···अद्यैव या मरणमस्तु युगान्तरे वा—यह किसका लिखा हुआ है? भर्तृहरि। उसके समान व्यक्ति ने भी ऐसा कष्ट न देखा होगा!' कहकर वह बलपूर्वक खड़ा हो गया और दरवाजे की ओर चला।

खुले हुए दरवाजे में से बगल वाले कमरे में उसने देखा। वह वृद्ध और

मणि एक-दूसरे के सामने बैठे हुए थे। 'धिक्कार है !' उसने चिल्लाकर कहना चाहा। उसकी जीभ लड़खड़ा गई। पैर काँप उठा और वह जमीन पर धड़ाम से गिर गया।

सुरेखा को हिचकी आ रही थी। मोघाराम और मणि बैठे हुए उसका कष्ट देखकर द्रवित हो रहे थे। इतने में मणि की दृष्टि प्रेतवत्, दरवाजे के बीच खड़े हुए मुचकन्द पर पड़ी। मणि एकदम सुरेखा को मोघाराम की गोद में देकर दौड़ी; परन्तु उसके पहुँचने के पूर्व ही वह पृथ्वी पर गिर चुका था।

डाक्टर ने उसे खड़े होने की सख्त मनाही कर दी थी। खड़े होने के परिश्रम से मुचकन्द के घाव के कुछ टाँके टूट गये जिससे सिर से खून भी बहने लगा। मोघाराम और मणि ने उसे पकड़ कर चारपाई पर लिटाया। फिर मोघाराम डाक्टर को बुलाने लगा।

: १८ :

मुचकन्द की तबियत और भी बिगड़ गई। दो दिन तो वह बिलकल ही बेसुध रहा। चौथे दिन कहीं जाकर वह पूर्ववत् जैसा स्वस्थ हुआ। डाक्टर ने स्पष्ट कह दिया था कि अगर फिर ऐसा हुआ तो बचना कठिन है। इसलिए पल भर भी मणि उसे छोड़कर कहीं हटती भी न थी। मोघाराम ने स्वयं कई बार बैठने के लिए कहा। इस भय से कि कहीं उसका मिजाज फिर न खराब हो जाय। वह स्वयं ही बैठी रहती थी। वह मुचकन्द के स्वभाव से भली भाँति परिचित हो गई थी, इसलिए किसी भी परिस्थिति में वह उसे शान्त कर सकती थी। सुरेखा और मुचकन्द दोनों के बीच में खींचातानी होती, पर उसमें विजय मुचकन्द की ही होती थी और मणि को विवश होकर मुचकन्द के पास ही बैठा रहना पड़ता था।

मणि चिन्ता व जागरण से दिनों-दिन अस्वस्थ होती जा रही थी। चौथे दिन संध्या समय मुचकुन्द की तबीयत कुछ अच्छी मालूम पड़ी लेकिन जरा-सा आराम मिलते ही उसका मस्तिष्क पुनः रोगी बन गया और पहले के प्रश्न प्रेतवत् आकर खड़े हो गये। दूसरे ही दिन ये प्रेत अपना प्रताप दिखाने लगे।

मुचकुन्द मणि को वाग्बाणों से बींधने लगा।

मणि को सबसे अधिक भय इस बात का था कि कहीं मुचकुन्द फिर न उठ बैठे। डाक्टर ने कहा था कि दो दिन बाद यदि वह उठे तो कोई दुष्परिणाम होने की सम्भावना नहीं है। इससे मणि सब प्रकार का कष्ट दो दिन के लिए सहने के लिए तैयार थी और इसके बिना छुटकारा भी नहीं था। किन्तु ये दो दिन मणि को पहाड़ के समान प्रतीत हो रहे थे। पागल और रुग्ण की जीभ कौन रोक सकता है ? मुचकुन्द की जीभ निरंकुश बन गई थी।

'मुझे क्या ? तू तो पिशाचिन है, मनुष्यों का खून पीने के लिए जन्मी है। पूर्व जन्म का न जाने कौन-सा पाप मेरा उदय हुआ जो तुझ से मेरी भेंट हुई ? मुझे क्यों व्यर्थ जलाती है ? तू अपने रास्ते जा, देख वह तेरा बूढ़ा तेरी बाट जोहता होगा। तुझे क्या ? तू किसी की हुई है जो मेरी ही होगी ? कौन जाने तूने कैसे-कैसे अधर्म कर्म किये होंगे ?···मुझे इस नरक में लाकर पटक दिया ! कुलटा ! मेरी पढ़ाई चौपट की, नौकरी से छुड़ाया, पिता से छुड़ाया, हृदय को चकनाचूर कर दिया। इस पर भी तुझे सन्तोष नहीं हुआ, तूने अपना पापाचार दिखाने के लिए मुझे यहाँ ला रखा।···हे प्रभु मौत दे ! संसार में इन्द्रायण के फल कितने होते हैं ? प्रभु ने यदि मुझे सत्ता दी होती तो तेरा सुन्दर मुंह तेरे जैसा बना देता···कमीनी ! मेरी पत्नी कहाँ है ? वह गरीब चाहे जैसी भी हो लेकिन है तो वह पतिपरायणा पतिव्रता ! तूने ही उसे कहीं भेज दिया है। यदि तू न आई होती तो वह अवश्य मेरे घर पर रहती, अपने आर्य संस्कार का सुख मैं अनुभव करता। तूने क्या का क्या कर दिया ?···घर को कैसा महल-सा सरस बना दिया है। यह मेरे चारपाई के पास पुष्प ! अहा हा ! सेठ चन्दूलाल मालूम होता है जो वेतन देते हैं उसी से मेरी गरीब बेचारी मणि मौज उड़ाती है। शाबाश ।

इसी प्रकार जाग्रतावस्था में मुचकन्द की जीभ कतरनी के समान चलती रहती थी। उसके एक-एक शब्द मणि के हृदय को तीर के समान बेधते थे। मणि को अपमान से रोना आता, वहाँ से भाग जाने की इच्छा होती; किन्तु उसे विश्वास था कि मेरे हटते ही मुचकन्द खड़ा होने का अवश्य प्रयत्न करेगा जिससे उसकी स्थिति फिर भयंकर हो जायगी। मौन धारण कर, मुंह बन्द

बनावटी हँसी बनाए रखकर वह वहाँ बैठी रहती थी और सब प्रकार के प्रहार को शान्तिपूर्वक सहन करती थी।

मुचकन्द के जाग्रत रहने पर मणि क्षण भर के लिए भी वहाँ से हटकर दूसरे कमरे में नहीं जा सकती थी। परिणामस्वरूप सुरेखा के पास मणि शायद ही कभी जाकर बैठ पाती थी। दूसरे दिन मोघाराम ने कहा—'बहन ! आज तू अपनी पुत्री के पास ही बैठ ! इसका समय अब बिलकुल निकट आ गया है।'

'काका ! मैं सब कुछ जानती हूँ।' मणि ने रोकर कहा—'पर मैं करूँ क्या ? सुरेखा को मरने दूँ या मुचकन्द को ? जीवितावस्था में भी कन्या को सुखी नहीं कर सकी और मृत्यु के समय भी मैं उसके पास नहीं रह सकती ! मेरे समान अभागिन भी आपने देखी है ?'

'बेटी ! हिम्मत रख, इस प्रकार क्यों कायर के समान हिम्मत हार रही है ?'

'काका ! क्या करूँ ? सभी बातों की एक सीमा होती है। यह तो अति हो गई। दोनों में से एक भी अच्छा होने पर मेरी ओर आँख उठाकर भी नहीं देखेगा किन्तु पड़े-पड़े तो मुझे बेमौत मार रहे हैं।' कहकर मणि जोर से रो पड़ी और इसी प्रकार बहुत देर तक रोती रही। इतने ही में मुचकन्द जाग गया।

'मणि ! कहाँ गई ? तुझे क्या परवाह है कि तू यहाँ बैठी रहे ? तू किसी की हुई है कि मेरी ही होगी ?' मुचकन्द ने फिर दुहराया, 'नारी प्रत्यक्ष राक्षसी···।'

दूसरे कमरे से आने वाली मुचकन्द की आवाज कान में पड़ते ही मणि उठी और तुरंत आँसू पोंछकर वहाँ जाने लगी। इधर सुरेखा का रुदन प्रारम्भ हुआ—माँ माँ···माँ !'

'बेटी ! तू यहाँ बैठ। मैं मुचकन्द के पास जाता हूँ।'

'नहीं काका, नहीं ! वह अभी उठ बैठेंगे, मुझे ही जाने दो।' कहकर मणि मुचकन्द के पास चली गई।

मुचकन्द अपना वाग्बाण छोड़ने लगा। उसे शांत करने में आध घंटा लग गया। इतने ही में दरवाजे पर मोघाराम आकर खड़ा हो गया।

'बेटी ! जरा इधर आ तो।'

'ले ! तेरा सगा बुला रहा है। जा···उठ। व्यर्थ क्यों मेरे प्राण ले रही है ?'

'मैं तो लूंगी ही, और भी कुछ कहना है ?' रोष से मणि ने उत्तर दिया, 'काका। अभी कैसे आऊं ?'

'अरे अब तो आ—वह दम तोड़ रही है।' मोघाराम ने घबराहट से कहा।

'हाँ, जा उठ ! बिलल्ल आखिरी समय आ गया है दम तोड़ रही है। ठहर, जरा मुझे बैठ जाने दे।' कहकर मुचकन्द उठने के लिए जोर करने लगा। मणि ने बलपूर्वक उसका हाथ पकड़ कर दबा दिया। उसकी छाती फटी जा रही थी, आँख के नीचे अँधेरा छा रहा था। उसने देखा कि सुरेखा साँस तोड़ने की तैयारी कर रही है परन्तु मुचकुन्द को छोड़कर उसके पास जाये कैसे ?

मणि के सामने मुचकुन्द का जोर नहीं चला, अतः घूमकर वह मणि के हाथ में दाँत काटने लगा।

'लो, काट लो; अच्छी तरह काट लो !' किचकिचाकर मणि उसके सामने अपना हाथ बढ़ाते हुए बोली—'अभी भी कुछ बाकी रह गया है ?'

'बेटी, ले, यह चली !' मोघाराम ने अश्रुपूर्ण आवाज में कहा।

'जाने दीजिये, जो हो जाय वह ठीक है। अरे बाप रे !' कहकर मणि चिल्ला उठी। मुचकन्द ने उसका हाथ काट खाया था और उसमें से खून बह रहा था।

मणि के कान में मोघाराम द्वारा धीरे-धीरे उच्चारित 'राम' 'राम' का शब्द सुनाई पड़ा। उसने अपनी आँखें बन्द कर लीं। उसकी आँखों में से झर-झर आँसू गिरने लगे।

'रो ले ! अच्छी तरह रो ! बहुत अच्छा हुआ। मेरे चित्त को किसी प्रकार जरा शांति तो मिली।' मुचकन्द बड़बड़ाया—'चुड़ैल कहीं की !'

आध घंटे में बड़बड़ाहट कम होने पर मुचकन्द सो गया, तब उसे छोड़कर मणि दूसरे कमरे में गई। सुरेखा तो इहलोक से सिधार चुकी थी और उसका

छोटा-सा शरीर लकड़ी जैसा हो गया था। मणि उसे गोद में लेकर छाती पीट-पीट कर रोने लगी।

: १६ :

मुचकुन्द दूसरे दिन जरा शान्त रहा। या तो उसकी तबियत कुछ अधिक अच्छी थी या मणि का मलीन मुख और सूजी हुई आँखें देखकर उसमें दया का अंकुर फूट गया था जिससे आज मणि पर उसने दया की। अलबत्ता सन्ध्या समय मणि को आंसू बहाते हुए देख कर वह बोल ही उठा—'रो ले ! अच्छी तरह 'रो ले ! हां, अब चित्त को कुछ शांति मिली !'

यह शब्द सुनकर मणि को अपना दुःख और सुरेखा फिर याद आ गई। गला फाड़कर वह रोने वाली ही थी; परन्तु कुछ सोचकर बड़ी कठिनता से धैर्य धारण कर उसने अपने को रोका।

रात्रि में जब वह जागा तो मणि को मोघाराम के साथ दूसरे कमरे में बातचीत करते हुए उसने सुना। उसे बड़ा अचम्भा हुआ; बहुत दिन बाद आज मणि को घर में रात्रि के समय देख कर वह विचार करने लगा।

रोग से पीड़ित मनुष्य पशु हो जाता है। उसकी इच्छाएँ पशु के समान अल्पजीवी बन जाती हैं। उसकी वासनाएँ प्रबल हो जाती हैं। वह अपनी दुर्बलता में समस्त संसार पर क्रुद्ध रहता है। अपनी सेवा-शुश्रूषा करने वालों की परेशानी में ही उसे आनन्द मिलता है। जरा-जरा सी बात में अप्रसन्न होता है अथवा रोता है। संस्कार-जनित नियमित स्वभाव ऐसे अवसरों पर नष्ट हो जाते हैं और जानवर की नस्ल से अवतरित मनुष्य ऐसे अवसरों पर अपने पूर्वजों के स्वभाव को ग्रहण कर लेता है। मुचकुन्द रोग से निर्बल और चिड़-चिड़े स्वभाव वाला हो गया था और बराबर एक ही व्यक्ति—मणि—को देखने से उसका पशु-क्रोध उसी पर निकलता था। मणि बिना एक क्षण काम भी न चलता था और उसे देखते ही वह आपे में भी न रहता।

इस समय पशु जैसी श्रवण-शक्ति से कान लगाकर वह उनकी बातचीत सुनने लगा।

'काका, यह दासता कब मिटेगी ?'

'दासता !' मुचकुन्द मन ही मन बड़बड़ाया, 'मेरी सेवा करना दासता है ? देखो कुलटा को। मेरे मालिक से पैसा लेकर मौज उड़ाती है और ऊपर से रोब भी गाँठती है।'

'बेटी !' मोघाराम के बोलने का शब्द सुनाई दिया, 'घबराती क्यों है, दो-एक दिन में यह चंगा हुआ कि तुम्हें छुटकारा मिला।'

'देखा ! इसी का नाम नमकहरामी है। गली-गली मारी-मारी फिरने वाली इस भिखारिन को मैंने रखा और इससे इतना भी नहीं हो सकता !' मुचकुन्द बड़बड़ाया।

'कौन जाने कब छुटकारा मिलेगा ?' 'सब मर जायँगे लेकिन मुझे मौत कहाँ ?' दुःखी मणि के मुँह से यह असह्य वेदनापूर्ण उद्गार निकल पड़ा।

'मेरी मृत्यु की कामना कर रही है ! हरामज़ादी ! ठीक है मैं तो जीवित रहूँगा, घबरा मत ! मुझे एक बार जरा अच्छा तो हो जाने दे।' कह कर मुचकुन्द दाँत पीसने लगा।

इसके बाद कुछ सुनाई नहीं दिया, केवल सिसकने की आवाज सुनाई दी। आज मुचकुन्द को एक बात और नई मालूम पड़ी, उस छोटे बालक की रुलाई आज नहीं सुनाई दे रही थी। मुचकुन्द को यह बहुत ही विचित्र लगा।

दूसरे दिन सवेरे अपनी हालत उसे पहिले दिन की अपेक्षा और भी अधिक अच्छी मालूम हुई। मणि की अनुपस्थिति में वह उठकर बिछौने पर बैठ गया; पर उसका सिर आज पहिले की तरह घूम नहीं रहा था। शारीरिक शक्ति कुछ बढ़ने से वह कुछ अधिक सुचारु रूप से विचार कर सका। उसके सभी विचार मणि की दिशा में ही जा रहे थे। रात में मणि और मोघाराम की जो कुछ बातचीत उसने सुनी थी उसने उसकी क्रोधाग्नि में आहुति के समान काम किया जिससे उसके क्रोध ने उग्रतर रूप धारण कर लिया।

मुचकुन्द की बातें धधकते हुए अँगारे के समान जलाती थीं। अचूक शब्द, गूढ़ पर मर्मभेदक कटाक्ष, कलेजे को कँपा देने वाली उपमाएँ—इन सब का उपयोग अविचारपूर्वक वह करने लगा। मणि त्रस्त हो उठी—दूसरे कमरे में मोघाराम का रोम-रोम खड़ा हो गया।

इसी प्रकार शाम हो गई। सावन-भादों की वर्षा के समान आंसू गिराती हुई मणि अदृष्ट हुई। मुचकुन्द ने भी देखा कि जहाँ कहीं भी मणि प्रतिदिन जाती थी वहाँ वह चली गई। वह गई कहाँ ? यह वृद्ध कौन है ? वह बालक कौन है ? सतत उठने वाले प्रश्नों का निर्णय एक बार कर लेने का उसने निश्चय किया। घर में सर्वत्र शांति विराज रही थी, तब क्यों न उठ कर जरा घूम-फिर कर सब प्रश्नों का पता लगा ले ?

धीरे से वह उठ कर बैठ गया। नीचे पैर रख कर और चारपाई पकड़ कर वह खड़ा हो गया। उसका पैर काँपा पर अधिक निर्बलता नहीं मालूम हुई। हाथ छोड़ देने पर भी वह गिरा नहीं। हिम्मत बँधी। धीरे-धीरे दूसरे कमरे की ओर वह जाने लगा। पूरा घर निर्जन, सुनसान-सा था।

दूसरे कमरे में उसने मोघाराम को एक कोने में बैठ कर संध्या करते हुए देखा। मुचकुन्द हँसा। वह वृद्ध मणि का मित्र है। अतः इसे भी खिझाने से आनन्द मिलेगा ; उसके मस्तिष्क में ऐसा विचार उत्पन्न हुआ। वह दीवार के सहारे उसके पास गया। मोघाराम आँखें बन्द कर गायत्री का जप कर रहा था। किसी के पैर की आहट सुनकर उसका ध्यान भंग हो गया। पीछे घूमकर देखने लगा और मुचकुन्द को देखकर वह चौंक उठा। मुचकुन्द के मुंह पर जैसी हँसी होती है वैसी ही हँसी थी। वह मोघाराम को छूने के लिए आगे बढ़ता चला आ रहा था।

'ऊँ हुँ हुँ हुँ !' मोघाराम ने मना करते हुए कहा।

'अरे ऊँहुँ वाला !' तिरस्कार से हँसते हुए मुचकुन्द ने कहा—'इतना घबराता क्यों है ? क्या मैं उस कुलटा से भी गया बीता हूँ ?' कहता हुआ वह और भी पास आ गया।

'अरे मूर्ख ! पीछे लौट जा, नहीं तो अभी अपनी जान से हाथ धो बैठेगा। कुछ ज्ञान है या नहीं ?...अरेरे...खबरदार ! जो तूने मुझे छुआ तो समझ रखना।'

मोघाराम को छूकर मुचकुन्द ठहाका मारकर हँसा।

किसी यज्ञ के भंग हो जाने से क्रोधवश हुए मुनि के समान मोघाराम कूद कर खड़ा हो गया, उसके हाथ की गौमुखी काँपने लगी।

'हरामखोर !' मोघाराम ने दाँत पीसते हुए कहा ; किन्तु वह मणि का दास था । उसकी इच्छा पूर्ण करने के लिए अपने प्राण तक अर्पण करने के लिए तैयार था और उसी के लिहाज से आज तक मुचकुन्द के प्रति वह अपना रोष प्रदर्शित न कर सका था । इस समय मुचकुन्द के सीमोल्लंघन पर मोघाराम अपने क्रोध को वश में नहीं रख सका ।

'तेरी वह गई कहाँ ?' मुचकुन्द ने उपहासपूर्ण हँसी से पूछा ।

'अरे ठहर तेरी और तेरा वाला ?' कहते हुए गोमुखी फेंककर मुचकुन्द का हाथ पकड़ कर दूसरे कमरे की ओर उसे घसीटकर ले जाते हुए वह बोला—'जब तक नहीं बोलता तभी तक, पर यह ध्यान रख मैं मणि बहन नहीं हूँ जो तेरी बकझक सुनता रहूँगा । समझ या गया नहीं ? चल चुपचाप बिछौने पर सो जा, नहीं तो···!' उसने जबरदस्ती मुचकुन्द को बिछौने पर बैठा दिया ।

'वह जाती कहाँ है, यह बताओ ? मेरे मालिक के पैसे से खूब मौज उड़ाने को मिलता है । क्यों ?'

मोघाराम दाँत पीसने लगा । यदि मुचकुन्द बीमार न होता, एवं मणि का डर न होता तो उसने मुचकुन्द को अवश्य पीट दिया होता ।

'अरे मूर्ख ! जरा अपनी जीभ सँभालकर बोल । मैं तेरी एक भी बात न सहूँगा । खा-पीकर बेचारी की जान ले रहा है और ऊपर से रौब भी झाड़ता है !'

'यह भी ठीक है ! मुफ्त का खाना और मस्जिद में···।'

'चल बस चुप भर रहना कहे देता हूँ । क्या करूँ मणि बहन तेरे पीछे जान देती है, नहीं तो मैं अभी तेरा कचूमर निकाल देता । अपने पूर्व-जन्म का कोई पुण्य समझ जो मणि से तेरी भेंट हो गई, नहीं तो छटपटा कर कभी का मर गया होता ।'

मुचकुन्द का चेहरा तिरस्कार से विकृत हो गया, 'पैसा···!'

मोघाराम क्रोध से चिल्ला उठा—'पैसा, तेरा पैसा, भिखारी ! तू मनुष्य है या पशु ? वह बेचारी जो कुछ कहती है उसी को सच मानकर तू फूला नहीं समाता है ! यह सब खर्च तेरा बाप ही तो मानो भेज देता है ?'

'बाप नहीं तो और कौन भेजता है ? तू या तेरी मणि ?'

'तेरा बाप नहीं, तेरा सेठ नहीं, मैं भी नहीं बल्कि मणि बहन लाती है ।

कृतघ्न ! तेरी अपेक्षा तो एक कुत्ता अधिक समझदार होगा। यह बिछौना, यह डाक्टर, यह दूध सब कौन पूरा करता है ? तेरा सेठ ? मूर्ख बीमार पड़ते ही तेरा बाप भाग गया, तेरी पत्नी चलती बनी, और तेरे सेठ ने तो आज तक मुंह भी नहीं दिखाया। यह तो परमेश्वर का उपकार मान कि तुझे मरिण बहन मिल गई जो अपना खून-पानी एक करके जहाँ-तहाँ से पैसा लाकर तेरी दवा-दारू करती है और तेरी बकवास सहकर भी अपने दुःख की परवाह न करके तेरी सेवा-सुश्रूषा करती है।'

मुचकुन्द स्तब्ध होकर देखने लगा।

मोघाराम कहता गया तुझे कुछ खबर भी है ? तेरे लिए बेचारी ने नौकरी छोड़ी ! वेश्या के घर जाकर गाना शुरू किया ! तेरे ही लिए इकलौती पुत्री को मर जाने दिया और मृत्यु के समय भी उसके पास तक नहीं रह सकी है। तू बड़ा धन्नासेठ का नाती है न ? आज कितने दिन हो गये ! तेरी सेवा करने से, तेरे लिए कमाकर पैसा लाने से और तेरे व्यंग्य-वचन सुनने से बेचारी को एक क्षण के लिए भी विश्राम करने का अवकाश नहीं मिलता। सूखकर कांटा हो गई। वह तो पागल है ; उसके स्थान पर यदि मैं होता तो दो तमाचे लगाकर एक दिन में तुझे सीधा कर देता।'

'मरिण गाने का धन्धा करती है ?'

'जी हाँ ; आपके लिए वह क्या-क्या करती है, यह केवल वही अभागी जानती है।'

'तब कोई मुझे क्यों नहीं बताता था ?' दबी जबान से मुचकुन्द बोला।

'आप फूल के समान कोमल जो हैं ! कहीं कुम्हला न जायें। इसी डर से।'

'यह जो रोती रहती थी वह उसकी सुरेखा थी ?'

'जी हाँ, याद है कि परसों सुरेखा मर रही थी ; उस समय भी जनाब ने उस बेचारी को उसके पास तक जाने नहीं दिया। मरते समय भी वह पुत्री का मुंह देख नहीं सकी। तुम मनुष्य नहीं-राक्षस हो राक्षस !'

'मेरा बाप कहाँ है ?'

'अपने गाँव पर—दो महीने हुए किसी ने उसका मुंह भी देखा है ?'

'और मेरी पत्नी ?'

'अपने नैहर। चलिये, अब आप चुपचाप सो जाइये। बहुत लपड़सपड़ करोगे तो दो-चार लगा दूंगा। न मालूम कहाँ से ऐसे भाड़े के टट्टू पैदा हो जाते हैं?' कहकर मोघाराम वहाँ से चला गया। जो कुछ उसे कहना था वह कह चुका था।

सिर पर चोट पड़ने से जैसे मनुष्य अचेत हो जाता है वैसे मोघाराम के शब्द-प्रहार से मुचकुन्द बेसुध हो गया—विचारशक्ति जाती रही। थोड़ी देर बाद इसी उधेड़-बुन में वह सो गया।

तीन-चार घंटे बाद उसकी नींद खुली; मोघाराम के शब्द तीर बन कर उसे बेधने लगे। उसने घबड़ाकर चारों ओर आँखें दौड़ाईं। दूर जमीन पर मणि पड़ी सो रही थी। दीपक धीमा-धीमा जल रहा था। मुचकुन्द थोड़ी देर तक उसकी ओर देखता रहा। निद्रा में भी मणि उसासें भर रही थी।

अपने शब्द, मणि की देवांगना सदृश सेवा, उसका महान् आत्म-त्याग, उसकी असाधारण सहनशीलता, यह सब स्मरण करके मुचकुन्द अपने आपको धिक्कारने लगा। कहाँ स्वार्थी आत्मसंतोष, कायर, विचार में जीवन व्यतीत करने वाला वह स्वयं और कहाँ महान् कर्त्तव्यपरायणता के शिखर पर पहुँची हुई वीर मणि? भला कहीं दोनों में तुलना हो सकती है।

ज्यों-ज्यों वह अधिक विचार करता गया त्यों-त्यों मणि के प्रति उसकी पूज्य भावना और कायरता पर घृणा बढ़ती गई।

क्यों मैंने उसे छोड़ दिया? क्यों नहीं उसकी चरण वन्दना करते हुए अपना समय व्यतीत किया? यह कायरता, यह अस्थिरता कहाँ से आई? वह अपने स्वाभव को, संसार को एवं समाज को दोष देने लगा।

उसने फिर मणि का मुख निहारा, मुख बिल्कुल पीला पड़ गया था। उसकी निद्रा निःश्वासपूर्ण थी। उसे दुःखी देखकर मुचकुन्द व्याकुल हो उठा। उठकर मणि से क्षमा-याचना करने की, उसके चरण पर माथा रख देने की उत्कट इच्छा हुई। उसने सोचा यह स्त्री है या देवी!

घण्टों इस प्रकार विचार में बीत गये। घड़ी में तीन बजा। मणि ने अँगड़ाई ली; मुचकुन्द को दवा देने का समय हो गया था। आँखें मीचती हुई मणि उठकर बैठ गई।

: २० :

मणि को उठते हुए देखकर मुचकुन्द ने अपनी आँखें—लज्जा से मणि क्या करती है यह देखने के लिए—आधी बन्द कर लीं। मणि ने उठकर दीपक तेज किया। मुचकुन्द ने बहुत दिन बाद आज ध्यानपूर्वक उसका चेहरा देखा। मोहकता के स्थान पर अब उसके मुंह पर उदासी आ गई थी। उसके चेहरे पर चिन्ता, दुःख और खिन्नता के चिन्ह स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। उसकी आँखों में, सूर्य के सदृश रश्मि फेंकने वाली तेजस्वी आँखों में—थकावट और दुःख का मिश्रण था। उसके सुदृढ़ भरे हुए वर्तुलाकार अंगों में गड्ढे पड़ गए थे। अतिशय थकावट के कारण एकाएक मणि के मुख से निकल जाने वाले 'हाय' शब्द को सुनकर मुचकुन्द का हृदय फटने लगा। उद्वेग से कलेजा उछलने लगा। इन सब दुर्दशाओं का कारण कौन ? स्वार्थी, शंकालु, क्रूर, स्वयं वह !

उठकर मणि ने टेबुल पर से दवा उठाई। उसे ग्लास में उँडेला और मुचकुन्द की चारपाई की ओर बढ़ी। मुचकुन्द के रोंगटे खड़े हो गये। उसका स्नेह, उसकी कार्यदक्षता और प्रेमपरायणता कैसी अनुपम और सराहनीय है ! क्षणभर अनिर्वचनीय, ग्लानिपूर्ण स्नेह से खड़ी रहकर मणि उसकी ओर देखती रही। मुचकुन्द के रग-रग में अग्नि व्याप गई। उसे अपना सिर अवर्ण्य तरंगों से, अपरिमाण शोकातिरेक से, अगाध प्रेम से दो टूक होता ज्ञात हुआ।

'भाई ! जागते हो ?' मणि ने पूछा। उसकी आवाज में कैसी मृदुता थी ! कैसा प्रेम और देख का मिश्रण।

मुचकुन्द न तो कोई उत्तर दे सका और न उसकी आँखें ही खुल सकीं। बिलकुल आधार रहित-सा उसने केवल अपना हाथ बढ़ा दिया; उसे हटाकर मणि चारपाई पर बैठ गई और नीचे झुकी। प्रतिदिन के समान आज भी मुचकुन्द मणि को अपने पास बैठते हुए देखकर काँप उठा; परन्तु आज उसका कम्पन भिन्न प्रकार का था।

'भाई जरा दवा पी लो !'

मुचकुन्द ने अपनी आँखें आधी खोल दीं, मणि उसका सिर उठाने का प्रयत्न करने लगी, और ग्लास उसके होठों के पास ले गई। मुचकुन्द घबड़ाहट में जरा ऊपर उठा। उसके सिर के पास मणि का सुकोमल हाथ था। उसकी आँखों के सामने प्रेमपूर्ण आँखें थीं। मुचकुन्द ने अनजान में अपना मुंह खोलकर

दवा पी किन्तु वह गले के नीचे नहीं उतरी। उसे मणि की आँखें भयभीत-सी प्रतीतहुईं। प्रतिदिन जिन गालियों की वह बौछार करता था उसी की वह प्रतीक्षा करती हुई सी मालूम हुई। अपने पर उत्पन्न तिरस्कार से मुचकुन्द ज्ञान-शून्य होकर केवल स्वर्ग की अप्सरा के समान मणि के अलौकिक मुख को देखता रहा।

सहसा उसकी रगें उमंग से फड़क उठीं। आँखें चमक उठीं। दवा ढुलक गई। इसकी उसने तनिक भी परवाह नहीं की; उसका यह रंग देखकर, सन्निपात का फिर दौरा आया है समझकर, मणि घबड़ा उठी। इस ओर भी उसने ध्यान नहीं दिया। घाव के फूट जाने की चिन्ता उसने नहीं की। अनुपम, अवर्णनीय भाव से उसने अपना हाथ मणि के कन्धे पर रखा क्या वह स्वयं ही रखा गया। मणि का मुँह थोड़ा और पास खींचा तथा उसने असह्य वेदनापूर्ण दृष्टि से अन्तर की आत्मकथा व्यक्त कर दी।

मणि घबड़ा उठी, नीचे झुके हुए प्रत्येक पल युग के समान उसे बीतने लगे।

मुचकुन्द से इस प्रकार अधिक देर तक बैठा नहीं जा सका। उसने अपना सिर तकिया पर रख दिया। उसी के हाथ के सहारे मणि और भी नीचे झुक पड़ी।

'मणि !,क्या मुझे क्षमा नहीं करोगी ?' मुचकुन्द ने भर्राये हुए स्वर में पूछा।

मणि ने क्या समझा क्या अनुभव किया, कौन जाने ? जन्म के पश्चात् अपने माता-पिता के उल्लासपूर्ण स्नेह की पराकाष्ठा से उसका साक्षात् नहीं हुआ था। मुचकुन्द का उत्तर उसकी सिसकियों ने दिया। न कोई बोला न कोई चाला। चारों ओर गोपीजनवल्लभ की अदृष्ट मधुर मुरली का मदप्रेरक आलाप गूँज रहा था उसने इन दोनों के हृदयों को एक लौकिक देश में पहुँचा दिया।

इसी प्रकार पाँच मिनट—दस मिनट व्यतीत हो गए। मणि ने सिर उठाकर देखा। मुचकुन्द ऊँघ रहा था। धीरे से उसका हाथ हटाकर वह खड़ी हो गई। बैठ जाने की इच्छा हुई; पर उसने इस इच्छा को दबा दिया। मुचकुन्द की चादर ठीक की—पर उसका एक कोना पकड़े रही—वह छूटा नहीं। थोड़ी देर बाद रजाई के उस छोर को हृदय से लगाकर उसके कान में कुछ संदेशा कहा और तब उसने उसे छोड़ दिया।

जीवन-साफल्य के गगनस्पर्शी शिखर पर वह पहुँच गई हो ऐसा उसे जान पड़ा।

चौथा भाग

: १ :

तीन सप्ताह शीघ्रता से बीत गये। मुचकुन्द रोग से मुक्त, पर सूखा और कपास जैसा सफेद, जमीन पर तकिया रख कर लेटा हुआ था। उसके हाथ में खुली हुई एक पुस्तक थी। सामने इसी तीन सप्ताह में चिन्ता से मुक्त होने पर कुछ स्वस्थ होकर तेजस्वी वनी हुई मणि कमर पर हाथ रखे हुए खड़ी थी। उसके मुख की सुन्दर गढ़न में अद्भुत विधाता ने गौरव और दृढ़ता की वृद्धि कर दी थी। बाहर की प्रचण्ड धूप का प्रतिबिंब पड़ने से, श्वेत वस्त्र से सुसज्जित मणि, अपने लालित्य, अपने स्वतन्त्र अनुपम खड़े रहने की विचार छटा से एक नवयौवना मदमाती रानी के समान लग रह रही थी।

पुस्तक बन्द कर मुचकुन्द ने उसकी ओर देखा। उसकी आँखों में पवित्र तेज, जैसा कि परम भक्त अथवा परम प्रणयी की आँखों में ही केवल देखने में आता है—दिखाई पड़ा।

यह तेज देखकर मणि के मधुर होंठ कठोर हो गये। उसकी आँखें चिन्ता ग्रस्त दिखाई दीं।

'मुचकुन्द, अब काशी का कब बुलाओगे?' ऊपर से बिजली गिरने से अथवा पास ही रखी हुई जड़ कुर्सी के हँस पड़ने से भी वह इतना नहीं घबराता जितना कि यह प्रश्न सुनकर घबरा उठा। उसने ऊपर सिर उठाकर देखा, हठात् ठंडा पड़ गया। वह आँखें फाड़-फाड़कर देखता ही रहा। दोनों ने कुछ दिन के लिए सांसारिक झंझटों की बातें करना छोड़ दिया था। आज मणि ने यह बात छेड़ी। मुचकुन्द ने भौंहें चढ़ाकर पूछा—'आज यह प्रश्न क्यों उठा? इसका

कारण ?'

'कारण साफ है अब आपको इसका विचार करना चाहिए।' खेदपूर्ण आवाज से मणि ने कहा, 'आप अब स्वस्थ हो चले। कालेज में अब आपको प्रोफेसर की जगह मिलने वाली है। काशी को बुलाना चाहिए।'

'और तुम ?'

'मैं ?' मणि ने दृढ़ता से घोषणा की 'मैं अपने रास्ते जाऊँगी अब मेरा तो कुछ काम दिखाई नहीं देता।' मणि ने दहला देने वाली हँसी हँसते हुए कहा।

बहुत देर तक मुचकुन्द देखता रहा; फिर बोला--'यह बेवक्त की हँसी कैसी ? मैं तो समझ रहा था कि हमने उसे भुला दिया है।'

'किसने कहा ? काशी कितनी दुःखी होती होगी इस पर आपने कभी विचार किया ?'

'इस सुखमय जीवन में तुम्हें वह कैसे याद आ गई ?'

'मैं सदैव उसे याद किया करती हूँ। मुझे अब ज्ञान हो गया है कि स्वच्छंदता का नाम सुखी जीवन नहीं है।'

'तब जीवन को दासता की जंजीरों में भी नहीं जकड़ा जा सकता।' मुचकुन्द ने कहा, 'इतने दिन मैं इसी समय पर विचार करता रहा हूँ।'

'क्या ?'

'यही कि जो दुर्बलता मेरे में थी वह कहां से आई और उसे कैसे दूर किया जाय ?'

'यह विचार आया कहाँ से ?'

'तुम्हें देखकर ! इतने दिनों तक, मेरा स्वभाव कहो—अथवा मेरा संस्कार कहो, मैं कायर था। अब मैंने मनुष्यत्व पाया है। इतने दिनों के विचार के उपरान्त मैंने अपना जीवन-सिद्धान्त निश्चित कर लिया है।'

'क्या ?'

'मैं अपने विचार के अनुसार ही रहूँगा। किसी की दासता स्वीकार नहीं करूँगा।

'अर्थात् आप अपने विचारानुसार काशी को मायके में सड़ने देंगे, क्यों ?'

'नहीं तो क्या तुम्हारे विचारानुसार मैं अपने स्वातंत्र्य को भी काशी को

अर्पण कर दूं ? मणि ! क्यों व्यर्थ की बातें करती हो ? तुम चाहे कहो अथवा न कहो — हम दोनों का जन्म एक-दूसरे के लिए हुआ है। एक साथ रहने से ही हम दोनों जीवित रह सकेंगे और विलग होने से मर जायेंगे। मुझे यह नहीं करना है। जीवन है तो उसे पानी के मोल बेचना नहीं है।'

'पहले मैं भी ऐसा ही सोचा करती थी; किन्तु यह मृगतृष्णा मात्र है।'

'कैसे ?'

'जीवन केवल सुख लूटने के लिए ही नहीं बल्कि दूसरों को सुख पहुंचाने के लिए भी है। काशी आपकी परिणीता पत्नी है। उसे दुःख देने से कभी सुख मिल सकता है ?'

मुचकुन्द हँस कर बोला—'पहले मैं इसे स्वीकार कर भी लेता, लेकिन अब नहीं।'

'क्यों ?'

'तुम क्या देख नहीं रही हो ? मेरी नसों में आर्यों का पवित्र खून बह रहा है। इसी खून की उग्रता ने अनेकों बार दिग्विजय की। पृथ्वी को क्षत्रिय-विहीन कर दिया। अनन्त काल तक विद्यमान रहने वाली संस्कृति उत्पन्न की। मैं क्या था, क्या हो गया, परशुराम, द्रोणाचार्य चाणक्य के वंशज की यह दुर्दशा ! आधार-रहित, निर्बल, कायर मैं क्यों हुआ ? इस पर भी तुमने कभी विचार किया ?'

मणि आश्चर्य से उसकी ओर देखती रही। अपना सिर हिला दिया।

जिस रात्रि में मोघाराम काका ने मुझे धिक्कारा—उसी रात्रि में मेरी मदांधता जाती रही, जिस रात्रि को हमने एक-दूसरे के हृदय को परखा— उसी रात्रि में इसकी खोज की।'

'क्या ?'

'ऐसे तेजपूर्ण बीज में से ऐसा निर्बल फल क्यों उत्पन्न हुआ ?'

'क्यों हुआ ?'

'काशी जैसी स्त्रियों ने बनाया मणि ! मैं इस समय चेतनाशून्य, बेसुध नहीं हूँ। घबराओ नहीं। पर्याप्त विचार कर मैं इसी निश्चय पर पहुँचा हूँ। हजारों वर्षों से इसी प्रकार का बेमेल, अयोग्य स्त्री-पुरुष का जोड़ा मिला-मिलाकर हमारा

यह सत्यानाश किया गया है। काशी जैसी स्त्रियाँ ही मुझ जैसे भिखारी उत्पन्न करती हैं। किसलिए···? समस्त सृष्टि में आँखें घुमाकर देखो; जहाँ सौंदर्य, शौर्य; प्रताप पूर्ण विकसित दिखाई देता है उस स्थल को देखो। गहन वन में वनराज की भव्यता और प्राण-भेदक नाद सिंहनी ढूंढ़ती है, सरोवर के जल-तरंग में तैरने वाली हंसिनी विशुद्ध शुभ्र वर्ण पंख वाले और सुन्दर गले वाले हंस को वरण करती है; जिस देश में सत्ता है, विचार स्वातंत्र्य है वहाँ प्रत्यक्ष शोध करती हुई अभिमानी दृष्टि पर नरसिंह चढ़ते हैं। परन्तु इस हमारे गरीब देश में ज्योतिषियों की लालसा पर, गर्वान्धों के घमंड पर, बुड्ढी स्त्रियों के प्रबंध से वर-वधू का जोड़ा मिलाया जाता है। इसके पश्चात् मेरे जैसा कपूत उत्पन्न होकर देश की नस्ल का सत्यानाश करे तो इसमेंनवीनता ही क्या है ? जिस क्षण से हमारे यहाँ से स्वयम्वर प्रथा उठ गई उसी क्षण से हमारे सांसारिक जीवन का सत्यानाश प्रारम्भ हो गया। मणि ! मेरा जन्म काशी के लिए नहीं हुआ है और न तुम्हारा ही जन्म इस प्रकार भयंकर एकान्त में जीवन व्यतीत करने के लिए हुआ है।'

मणि अब तक आधा मुँह खोले हुए मुचकुन्द का भाषण सुन रही थी। उसका अन्तिम शब्द सुनते ही उसका मुँह बन्द हो गया। उसके ललाट पर सिकुड़न पड़ गई।

'मुचकुन्द भाई, आप क्या कह रहे हैं इसकी कुछ खबर है ! यदि आपके विचारानुसार सब लोग करने लगें···' उसने बहुत ही खेदमय स्वर में कहा—'तो संसार और समाज की क्या दशा हो ? आपका भाषा-सौंदर्य निकाल देने पर, एक अधम पतित विषय एक कामांध ने जो कुछ मुझ से कुछ दिन पहले कहा था, वही रह जाता है। उस समय वह अर्थ सच्चा लगा था; किन्तु आज अनुभव से वह झूठा प्रमाणित हो रहा है। क्या संसार से सच्चरित्रता और नीति का लोप हो जाय ?'

'ऐसा कौन-सा अनुभव हुआ ?' बिना सोचे ही मुचकुन्द के मुँह से स्वतः निकल गया।

'मैं कौन हूँ, यह क्यों भूल जाते हो ?' रुद्ध कण्ठ से मणि ने पूछा, 'मैं बाल-

विधवा हूँ। संसार ने कोमल वय में मुझे अपने पद और मर्यादा से च्युत कर दिया। जो कुछ आज आप कह रहे हैं उसी अभिप्राय को व्यक्त करके एक पापी ने मुझे लुभाया। मैं उसके बहकावे में आ गई। परिणाम में मैं अपना अस्तित्व ही खो बैठी होती। यह तो पूर्व जन्म के कुछ पुण्य से आपसे भेंट हो गई जिससे मुझे मनुष्यत्व प्राप्त हो गया।'

'मणि ! कामांधता भिन्न वस्तु है। मैं तो विश्व के महान् आकर्षण की बात करता हूँ—प्रेम का गूढ़ महात्म्य स्पष्ट करना चाहता हूँ।'

'सभी क्या मुचकुन्द हैं ? सामान्य और संस्कारहीन मनुष्य, इन दोनों में क्या अन्तर दिखाई देगा ? और इसके परिणाम की ओर भी क्या दृष्टिपात किया है ? काशी को दुःखी कर हम दोनों मौज उड़ावें यही या और कुछ ?'

'नहीं, बल्कि दो सुशिक्षित जीवों के जीवन की सफलता सिद्ध कर अपने भविष्य के जीवन को विकसित करना है।'

'पर आपके सिद्धान्त तो शारीरिक सुख और विकास की बातें ही करते हैं।'

'नहीं, मैंने सिंह और हंस की उपमा अवश्य दी है परन्तु जिस प्रकार पशु से मनुष्य अधिक सुन्दर और बुद्धिमान् है वैसे ही उसे केवल शरीर ही आकृष्ट नहीं कर सकता बल्कि शिक्षा और बुद्धि की भी उसको आवश्यकता पड़ेगी। नहीं तो एक-दूसरे पर विजय कैसे प्राप्त कर सकेंगे ?'

'आपके कथन का यह परिणाम निकलता है कि दुनिया में जहाँ चाहे भ्रमण करें और अपनी इच्छित जोड़ी को पकड़ लावें। यदि यह बात सच हो तो कल ही विलायत जाकर एक हृष्ट-पुष्ट वाघिन जैसी मैडम ला रखने से ही सभी नियम पूरे हो जायेंगे। मुझे तो मालूम पड़ता है अभी आपका मानसिक सन्निपात दूर नहीं हुआ है।' मणि ने हँसकर कहा।

मुचकुन्द ने भी हँसकर उत्तर दिया—'तू उलटा समझ रही है मणि ! मेरी धारणा यदि विवाह-संस्कार और शक्ति बढ़ाने का ही साधन हो और यदि वह साधन समान संस्कार और शक्ति धारण करने वाले स्त्री-पुरुष में जो स्वाभाविक आकर्षण है, उसी के संयोग से फलीभूत हो तो भिन्न-भिन्न संस्कार

वाले स्त्री-पुरुष के संयोग से उत्पन्न दुःख और अधोगति संसार से नष्टप्राय हो जाये। हजारों वर्षों से वंश-परम्परागत संस्कारिता नष्ट हो जाने पर क्या दशा होगी ? धर्मे नष्टे जायते वर्णसंकरः !'

उलझन में मणि ने सिर हिला दिया, 'वाद-विवाद में आपको मैं जीत नहीं सकती, परन्तु मैं आपके विचार स्वीकार नहीं करूंगी। सभी यदि आपके मत के हो जायें तो नवयौवना सुन्दरियों को देखते ही सब पागल होकर उनके पीछे दौड़ने लगें।'

'अभी भी तुमने नहीं समझा। शारीरिक मोह क्षणिक है, व्यक्ति का मोह जीवन में एक ही बार आता है और फिर वह सदा बना रहता है।'

'और यदि ऐसा कोई व्यक्ति न मिले तो—पर स्त्री हों तो···।'

'न मिले तो अनगिनती फलों से पृथ्वी भरी पड़ी हुई है। अस्पर्श्य सुन्दरी के लिए जीवन पर्यन्त सन्यासी बनकर रहना कहीं अच्छा है। या तो सृष्टि का साम्राज्य या संन्यास यह मेरे पूर्वज आर्यों का सिद्धान्त है।'

'यदि मैं रहना स्वीकार न करूं तो भी आप काशी को न बुलावेंगे, क्यों ? तब आपने विवाह क्यों किया ?"

'मूर्ख था इसलिए। पर अब वैसा नहीं हूं। भूख प्यास से मृगपति मर जाय पर कभी वह तृण नहीं खा सकता—तब मेरी सिहनी···।'

'सिहनी गई घर ! अपनी कहावत अपने पास रहने दीजिये !' मणि ने बीच में ही बात काटी।

'तब क्या करूं ?'

'काशी को बुलाइये।'

मुचकुन्द ने सिर हिलाकर कहा—'मेरा कहना उलटे घड़े पर पानी वाली वाली कहावत ही रही ?'

'ऐसा ही समझ लीजिए।'

'अच्छी तरह विचार करो, दो दिन बाद फिर बात करूंगा। यदि मुझसे पूछा जाय तो इसी प्रकार यदि प्रभु रहने दें तो स्वर्ग की भी क्या आवश्यकता है ?'

मणि की आँखें चमक उठीं, 'क्या मेरे मन में ऐसे विचार उत्पन्न नहीं होते ? पर कर्त्तव्यविहीन स्वर्ग ! वह किस काम का ?'

: २ :

उसी दिन साँझ के समय मोघाराम किसी काम से बाहर चले गये थे। आज मणि की दासता का अंतिम दिवस था। दूसरे दिन वह तुंगभद्रा की नौकरी छोड़ने वाली थी। जिस कार्य के लिए उसने वेश्या की नौकरी की थी वह कार्य सफल हो गया था। मुचकुन्द पूर्ण आरोग्य हो गया था। अब भोग विलास अथवा अपने सुख के लिए पाँच रुपये प्रतिदिन पर अपना गला बेचने के लिए वह तैयार नहीं थी। मणि विचार में मग्न खड़ी थी। पीछे से मुचकुन्द ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया जिससे वह चौंक पड़ी।

'मणि ! तुमने निश्चय किया ?'

'क्या निश्चय करूं ? मेरे मस्तिष्क में से काशी नहीं जाती। हमें कोई निश्चय झटपट कर लेना चाहिए।'

'निश्चय क्या ?' कंधा दबाते हुए उसने कहा—'हम एक साथ रहेंगे और क्या !'

मणि ने सिर हिलाकर अपनी अस्वीकृति प्रकट की।

'तू अपने हृदय की बात प्रकट क्यों नहीं करती ?'

'मैं क्या कहती हूँ ? जैसा आप कह रहे हैं वैसा आचरण बहुत ही निन्दित होगा। आपको भले ही सृष्टिकर्त्ता द्वारा रचित मैं आपकी अर्धांङ्गिनी मालूम पड़ती होऊँ पर संसार द्वारा दी हुई दूसरी ही है।'

'इसमें तुमने नवीन कौनसी बात कही है ?'

'सब कुछ। आप मुझे साथ रखना चाहते हैं परन्तु आपने अपनी आँख की चमक, अपने हृदय की धड़कन पर भी ध्यान दिया है ? जैसा आप कह रहे

थे वैसे शुद्ध और सावित्क प्रेम से मुझे रख सकेंगे ?' मुचकुन्द ने कुछ उत्तर नहीं दिया। मणि आगे कहने लगी, 'नहीं देखिए स्नेह की सरिता में तैरना अच्छा है, पर ज्ञान खो बैठने पर अवश्य डूब जाना पड़ेगा। आप मदोन्मत्त हैं, मैं भी हूँ मदमाती—परिणाम क्या होगा ? जो पतितावस्था प्राप्त करने से आपके कारण बची, वही पतिता फिर आपके ही द्वारा मुझे बनना होगा—किसी प्रकार भी इससे बच नहीं सकती। क्या ऐसी पतिता होने से आप मुझे बचा नहीं सकेंगे ?' करुणोत्पादक दीन स्वर से मणि बोली, 'जो कुछ आप कह रहे हैं वह सच है।'

'क्या ?'

'प्रभु ने हम दोनों को एक दूसरे के लिए ही उत्पन्न किया है। यदि आज हम दोनों का विवाह हुआ होता तो कितना आनन्दमय जीवन होता ?'

'इसी से मैं कह रहा हूँ मणि ! इसी से कहता हूँ !'

'मैं भी इसी से कहती हूँ। ऐसी सरस युगल मूर्ति—ऐसे रसिक, समझदार वर-कन्या की विषय-वासना को समाज की वेदी पर बलि चढ़ा दिया जाय ? यह विचार मेरे मन में बैठता नहीं बल्कि उसे दग्ध कर रहा है।'

'अपने विचार प्रकट करने की तुम्हारी रीति ही कुछ विचित्र है !'

'जी हाँ ! अनन्त काल की सीमा पर पहुँचने तक हम अर्द्धांग बने रहेंगे—किस बात में ? विषम-तृप्ति में ? मुचकुन्द आपकी विद्वत्ता और मेरे अनुभवों का क्या यही अन्तिम परिणाम होगा कि संसार की दृष्टि में, मैं पतिता समझी जाऊँ और आप लंपट गिने जायें ? ऐसा विचार भी भीषण है ! भयंकर है !' काँपती हुई आवाज में मणि बोली।

'तब किया क्या जाय ? मणि ! विलग होकर रहा कैसे जायगा ?'

'एक मार्ग है।'

'क्या ?'

'विकट है—पर है। मैं आपके साथ रहूँगी आपकी सेवा करूँगा—जब तक काशी जीवित रहेगी तब तक, शुद्ध और सात्त्विक प्रेम से।'

'मैं भी तो यही कहता हूँ।'

'नहीं, आप जाकर काशी को ले आवें।'

मुचकुन्द चौंका—'काशी !'

'आप अपने आदर्श का पालन करें, मैं अपना आदर्श पालन करूँगी। मुचकुन्द ! मैंने लम्पटों को, बड़े-बड़े ढोंगी महाराजों को, सुधारकों को देखा है—मैं आपको सबसे निराला देखना चाहती हूँ।'

'किस प्रकार ?'

'अपने त्याग से, अपनी स्वाधीनता से निराला, पवित्र और अपूर्व बनाकर। मैं आपके मनुष्य-स्वरूप को चाहती हूँ। क्या देववत् पूजा करने नहीं दोगे ? बस इतना कर दो। इस अभाव को सहन कर, मेरी उपस्थिति में ही काशी को पत्नी-परायण स्वामी का सुख अर्पित करो। वह बेचारी मूर्ख है, फिर भी है तो मनुष्य।''

मुचकुन्द ने एक गहरी साँस ली। उसने सिर उठाकर देखा। उसकी आँखें चमक उठीं। उसने दाँत पीसकर मणि के दोनों हाथ पकड़ लिए। मणि भी समझ गई—सचेत हो गई—उसकी आँखों में, चेहरे पर भव्यता छा गई।

'मुचकुन्द ! आखिर यही निर्णय रहा ! तो लो मैं खड़ी हूँ—आपकी सेवा में हाजिर हूँ; एक बात याद रखना कल सवेरे एक दूसरे के सामने अथवा मृत भावना के सामने देखने योग्य हम दोनों ही नहीं रह जायेंगे।'

मणि की सात्विक, तेजस्वी आवाज गूंज उठी। क्षण भर भयंकर शान्ति विराजमान रही। मणि निश्चल गौरव की अवतार बनी खड़ी रही।

मुचकुन्द ने मणि का हाथ छोड़ दिया। उसकी आँखें डबडबा आईं। वह बैठ गया।

'मणि ? तू ईश्वर का अवतार है।' वह बोला। उसकी मदांधता ज्वर के समान उतर गई थी। मणि उसके पास बैठ गई और अवर्णनीय स्नेह से उसका हाथ अपने हाथ में लेकर दबाते हुए बोली—'मुचकुन्द उस दिन आपने कहा था आज मैं कहती हूँ, 'इसी प्रकार यदि प्रभु रहने दें तो स्वर्ग की भी इच्छा इसके सामने तुच्छ है !'

'तब ?'

दूसरे दिन मुचकुन्द काशी को लेने के लिए गाँव चला गया।

उपसंहार

बम्बई के एक छोटे पर स्वच्छ, हवादार फ्लैट में मुचकुन्द, मोघाराम, मणि और काशी सब एक साथ रहने लगे। काशी का मणि के प्रति द्वेष क्रमशः कम होते-होते समाप्त हो गया।

मुचकुन्द और मणि अब साथ-साथ रहते थे। एक-दूसरे के हृदय में निवास करते थे—फिर भी उनमें कोसों का अन्तर था। एक साथ हँसना, उठना-बैठना, विचार-विनिमय करना, कभी-कभी एक दूसरे के हाथ को स्पर्श करना—इतना ही उनके जीवन का आनन्द था। वे सुखी दिखाई देते थे। तरंगें शांत पड़ गई थीं, उनके जीवन में करुण-रस का स्वर बजना प्रारम्भ हो गया था।

चार वर्ष बाद एकाएक काशी बीमार पड़ी। फिर उठी नहीं; परलोक सिधार गई। मुचकुन्द और मणि दोनों रोए, पर साथ ही उन्हें सुख-स्वप्न दिखाई पड़ने लगे; कर्त्तव्यपरायणता का तप फलीभूत हुआ।

मणि और मुचकुन्द का विवाह हो गया। लोगों ने विधवा-विवाह के विरुद्ध बहुत विरोध खड़ा किया। पुराने विचार वाले मोघाराम ने दोनों को आशीर्वाद दिया। उसने दोनों के जीवन को देखा था, दोनों का मूल्य समझा था। दोनों को वह अपने मन में प्रभु का अवतार मानता था।

कितनी ही मणियाँ, कितने ही मुचकुन्द असमान जोड़े के कारण समाज द्वारा लादे हुए अत्याचार को सहन करते हुए, नरक के समान संसार में कटु अनुभव करते हुए जीवन व्यतीत करते हैं। इसमें दोष किसका ? यह किसका अभिशाप है ?
